भूविज्ञान

कक्षा 11

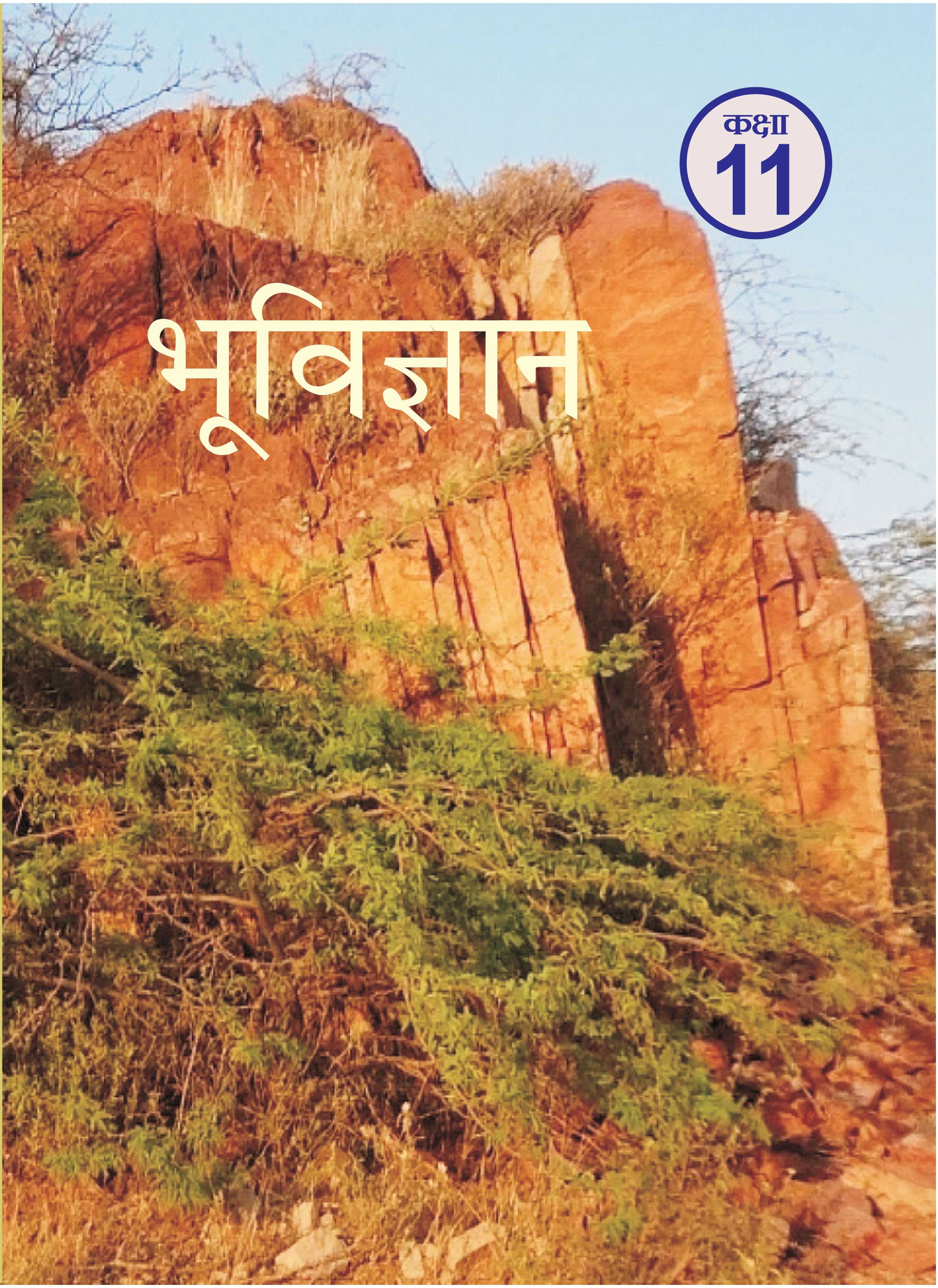

भूविज्ञान
कक्षा 11

भूविज्ञान

कक्षा 11

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर

पाठ्य पुस्तक निर्माण समिति

पुस्तक – भूविज्ञान कक्षा–11

संयोजक :– डॉ. प्रकाश कटारिया, सेवानिवृत्त आचार्य
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

लेखकगण :–

1. डॉ. प्रकाश कटारिया, सेवानिवृत्त आचार्य
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

2. डॉ. एम. एल. नागोरी, आचार्य
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

3. डॉ. सुरजा राम जाखड़, सह–आचार्य
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

4. डॉ. कमलकांत शर्मा, व्याख्याता
राजकीय महाविद्यालय, सिरोही

5. डॉ. रितेश पुरोहित, व्याख्याता
राजकीय महाविद्यालय, सिरोही

6. डॉ. अरूण व्यास, व्याख्याता
राजकीय बांगड़ महाविद्यालय डीडवाना, नागौर

प्रस्तावना

यह पुस्तक माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर द्वारा स्वीकृत नए पाठ्यक्रम अनुसार कक्षा 11 के लिए भूविज्ञान विषय को समझने एवं सृजनात्मक ज्ञानार्जन हेतु लिखी गई है। विषय पर हिन्दी में पाठ्यपुस्तकें अत्यन्त कम उपलब्ध होने से विद्यार्थियों को पाठ्य–सामग्री हेतु कोई असुविधा न हो इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए पुस्तक का लेखन विषय की प्रारंभिक जानकारी देने के साथ सरल तरीके से करने का प्रयास किया गया है।

भूविज्ञान विषय स्कूल पाठ्यक्रमों में पहले सम्मिलित नहीं था अब इसे जोड़ा गया है जो कि दूरदृष्टि युक्त एवं स्वागत योग्य निर्णय है। यह विषय शैलों, खनिजों एवं प्राकृतिक शक्तियों को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का कार्य करेगा। मानव विकास के साथ आधारभूत ढांचागत विकास कार्यों, तथा कृषि एवं उद्योगों को कच्ची सामग्री भी खनिजों से ही मिलती है।

भूविज्ञान विषय के परिचय के साथ पृथ्वी की उत्पत्ति, प्राकृतिक शक्तियों के कार्य, क्रिस्टलों, खनिजों, शैलों, जीवाश्मों, भूजल, अभियांत्रिक भूविज्ञान आदि की जानकारियों का विवरण नौ अध्यायों में दिया गया है। विषय जानकारी की दृष्टि से वस्तुनिष्ठात्मक, अतिलघुत्तरात्मक, लघुत्तरात्मक एवं निबन्धात्मक प्रश्नों का समावेश अध्यायों के अन्त में किया गया है।

पाठ्य पुस्तक में तकनीकी शब्दों का समावेश हिन्दी भाषा की मानक शब्दावली के आधार पर किया गया है। पाठ्यक्रम की निरन्तरता को बनाये रखने का प्रयास किया गया है। पुस्तक लेखन में कठिन वैज्ञानिक शब्दों को हिन्दी के साथ अंग्रेजी में भी यथास्थान पर दिया गया है। पुस्तक को समृद्ध बनाने हेतु शोध–पत्रों एवं पाठ्य–सामग्री का उपयोग किया गया है जिसके लिए उनके लेखकों के प्रति हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं। आशा है छात्रों एवं शिक्षकों की विषय सम्बन्धी आवश्यकताएँ इस पुस्तक से पूरी हो सकेगी।

भरसक प्रयासों के बावजूद विषय–वस्तु में कुछ त्रुटियाँ अवश्य रह गयी होगी जिनके निवारण के लिए लेखकों, शिक्षकों, छात्रों एवं अन्य विद्वानों के सुझाव आमंत्रित हैं।

– संयोजक एवं लेखकगण

विषय सूची

सैद्धान्तिक

1.	भूविज्ञान – एक परिचय (Geology – An Introduction)	1–6
2.	भौतिक भू–विज्ञान एवं भू–आकृति विज्ञान (Physical Geology and Geomorphology)	7–29
3.	खनिज एवं क्रिस्टल विज्ञान (Mineralogy and Crystallography)	30–44
4.	शैल विज्ञान (Petrology)	45–56
5.	स्तरिकी (Stratigraphy)	57–62
6.	जीवाश्म विज्ञान (Palaeontology)	63–88
7.	संरचनात्मक भू–विज्ञान (Structural Geology)	89–94
8.	आर्थिक भू–विज्ञान, खनिज अन्वेषण एवं खनन (Economic Geology, Mineral Exploration and Mining)	95–108
9.	व्यावहारिक भू–विज्ञान (Applied Geology)	109–122

प्रायोगिक भू–विज्ञान

1.	खनिजों के हस्त नमूनों का अध्ययन	123–124
2.	राजस्थान के मानचित्र में आर्थिक खनिजों का वितरण	125
3.	जीवाश्मों के नामांकित चित्र	126–129
4.	चार्ट एवं मॉडल की सहायता से भू–आकृति अवयवों का अध्ययन	130
5.	शैलों के हस्त नमूनों का अध्ययन	131–132
6.	सत्र का प्रायोगिक रिकॉर्ड	–
7.	मौखिकी	–

अध्याय – 1

भूविज्ञान – एक परिचय
(Geology – An Introduction)

भूविज्ञान

विज्ञान की शाखा जिसमें पृथ्वी की उत्पति, संरचना तथा इसके संघटन एवं शैलों द्वारा व्यक्त इसके इतिहास की विवेचना की जाती है, वह भूविज्ञान कहलाता है। अंग्रेजी शब्दावली में भूविज्ञान को Geology कहते है। ग्रीक के दो शब्द 'Geo' व 'Logos' से इसका नामकरण हुआ है, इनका अर्थ क्रमशः 'पृथ्वी' (भू) व 'विज्ञान' है। अतः पृथ्वी से सम्बन्धित विज्ञान को भूविज्ञान कहते है।

भूविज्ञान विषय के अंतर्गत पृथ्वी की आयु, खनिजों, जीवाश्मों, शैलों एवं पृथ्वी में कार्यशील बाहरी व आन्तरिक शक्तियों तथा उनके प्रभाव के साथ सौरमंडल सम्बन्धी जानकारियों का अध्ययन किया जाता है।

भूविज्ञान की शाखाएं

विस्तृत भूवैज्ञानिक विवेचनाओं का सरल स्वरूप में अध्ययन हेतु भूविज्ञान को निम्नलिखित प्रमुख शाखाओं में विभक्त किया गया है –

1. ऐतिहासिक भूविज्ञान (Historical Geology) या स्तरित शैल विज्ञान (Stratigraphy)
2. भौतिक भूविज्ञान (Physical Geology)
3. आर्थिक भूविज्ञान (Economic Geology)
4. संरचनात्मक भूविज्ञान (Structural Geology)
5. खनिज विज्ञान या खनिजिकी (Mineralogy)
6. खनन भू विज्ञान (Mining Geology)
7. भू आकृति विज्ञान (Geomorphology)
8. शैल विज्ञान या शैलिकी (Petrology)
9. जीवाश्म विज्ञान या जीवाश्मिकी (Palaeontology)
10. व्यावहारिक भूविज्ञान (Applied Geology)

ऐतिहासिक भूविज्ञान या स्तरित शैल विज्ञान

भूविज्ञान की इस शाखा के अन्तर्गत शैल–स्तरों का अध्ययन, उनकी निक्षेपण–स्थिति, आयु, स्वरूप, वितरण आदि की दृष्टि से किया जाता है। पृथ्वी के सम्पूर्ण भूवैज्ञानिक इतिहास का विवरण पृथ्वी के बाह्य भाग भूपर्पटी (Crust) पर मौजूद विभिन्न शैल स्तरों के अनुक्रमिक विन्यास व उनमें मौजूद जीवाश्मों के अध्ययन से किया जाता है। ऐतिहासिक भूविज्ञान के अन्तर्गत भूविज्ञान के सिद्धान्तों का उपयोग करते हुए पृथ्वी के इतिहास की पुनर्रचना कर उसे समझने की कोशिश की गई है। रेड़ियोधर्मी विधियों (Radioactive Methods) द्वारा काल निर्धारण में महत्वपूर्ण जानकारियां उपलब्ध हुई है।

भौतिक भूविज्ञान

भूविज्ञान की इस शाखा के तहत पृथ्वी को संघटित करने वाले पदार्थों की प्रकृति, उनके गुणों एवं समस्त भूमंडल पर पदार्थों के वितरण तथा उन्हें निर्मित, परिवर्तित, परिवाहित एवं विरूपित करने वाले प्रक्रमों और दृश्यभूमि के विकास की विवेचना की जाती है।

पृथ्वी की उत्पति, आयु, संरचना एवं भूधरातल पर पवन, नदी, महासागर, समुद्र, झील, भूमिगत जल, हिमनद, ज्वालामुखी इत्यादि विभिन्न कारकों द्वारा होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन भौतिक भूविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है।

आर्थिक भूविज्ञान

भूविज्ञान की इस शाखा में पृथ्वी में पाए जाने वाले पदार्थों जैसे विभिन्न प्रकार के खनिजों, अयस्कों, शैलों तथा भौम जल आदि के व्यावहारिक उपयोगों का एवं इंजीनियरी में भूविज्ञान के अनुप्रयोग का निर्वचन करती है। आर्थिक भूविज्ञान में भू वैज्ञानिक अध्ययन के आर्थिक दृष्टिकोण के मद्देनजर पृथ्वी पर उपलब्ध विभिन्न उपयोगी आर्थिक महत्व के खनिजों एवं शैलों की उत्पति,

गुणधर्म व साहचर्य, इनके प्राप्ति वाले स्थानों, निर्माण व खनन विधियों का अध्ययन किया जाता है।

संरचनात्मक भूविज्ञान

भूविज्ञान की इस शाखा में शैलों में विरूपणकारी बलों द्वारा होने वाले परिवर्तन अथवा उनसे प्रतिफलित संरचनाओं का अध्ययन किया जाता है। संरचनात्मक भूविज्ञान के अन्तर्गत विरूपण के कारण भूपर्पटी पर निर्मित होने वाली संरचनाओं यथा वलन (Fold), भ्रंश (Fault), संधि (Joint) इत्यादि का अध्ययन किया जाता है।

खनिज विज्ञान या खनिजिकी

भूविज्ञान की इस शाखा में खनिजों के बारे में विशेषतया उनके उद्गम, संघटन, रासायनिक, भौतिक तथा प्रकाशीय गुणधर्मो एवं उपयोगों और इनके प्राप्ति स्थानों, पारस्परिक साहचर्य सम्बन्धी अध्ययन किया जाता है। खनिजों के क्रिस्टल सम्बन्धी ज्ञान **क्रिस्टलिकी** या **क्रिस्टल विज्ञान** कहलाता है जो कि खनिज विज्ञान का ही अंग है।

खनन भूविज्ञान

भूविज्ञान की इस शाखा के तहत अयस्क–निक्षेपों के दोहन, खनन एवं खनन से सम्बंधित समस्याओं और भू वैज्ञानिक प्रक्रमों के खनन के साथ सम्बन्धों की विवेचना की जाती है। इसमें खनिज निक्षेपों की खोज एवं सम्भावनाओं का पता लगाने सम्बन्ध ाी जानकारी का अध्ययन करते है।

भूआकृति विज्ञान

पृथ्वी के स्थलाकृतिक लक्षणों (रूपों) तथा इनकों उत्पन्न करने वाले साधनों तथा उनके विकास की पद्धतियों का अध्ययन भूआकृति विज्ञान कहलाता है। इसमें पृथ्वी का धरातल तथा इस पर मिलने वाली स्थलाकृतियों या उच्चावच की उत्पति एवं स्वरूप का क्रमबद्ध विकास तथा वर्तमान रूप का अध्ययन किया जाता है। भूगर्भिक क्रियाओं एवं प्रक्रियाओं के फलस्वरूप अन्तर्जात बलों के कारण इन स्थलाकृतियों का निर्माण होता है। अतः भूआकृति विज्ञान भू विज्ञान की एक शाखा है।

शैल विज्ञान या शैलिकी

भूविज्ञान की इस शाखा में शैलों की उत्पति, प्राप्ति, संरचना, इनके इतिहास, रासायनिक संघटन तथा वर्गीकरण की विवेचना की जाती है। शैलिकी में शैलों के मिलने की अवस्थाओं और इनके उद्भव तथा भूवैज्ञानिक प्रक्रमों और इतिहास से इनके पारस्परिक सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है। शैलिकी की व्यापकता में शैल–वर्णना (Petrography) तथा शैल–जनन (Petrogenesis) दोनों ही निहित है।

जीवाश्म विज्ञान या जीवाश्मिकी

भूविज्ञान की इस शाखा में अतीत भूवैज्ञानिक कल्पों के पादप और प्राणी जीवन का अध्ययन, पृथ्वी में मिलने वाले जीवाश्मों के आधार पर किया जाता है। पुरातन काल के प्राणियों व वनस्पतियों के अवशेषों जिन्हें जीवाश्म कहते है, का क्रमबद्ध अध्ययन जीवाश्म विज्ञान है।

व्यावहारिक भूविज्ञान

भूविज्ञान की इस शाखा में वे सभी क्षेत्र सम्मिलित है जिनमें भूवैज्ञानिक ज्ञान का अनुप्रयोग किया जाता है। भूविज्ञान के व्यावहारिक पक्ष से सम्बन्धित इस महत्वपूर्ण शाखा में खनन भूविज्ञान के साथ इंजीनियरी भूविज्ञान (Engineering Geology) , भौम जल विज्ञान (Ground Water Geology), समुद्र –विज्ञान (Oceanography) , भू–भौतिकी (Geophysics) , भू–रसायन (Geochemistry) इत्यादि सम्मिलित है।

विज्ञान के अन्य शाखाओं से सम्बन्ध

21वीं शताब्दी में विज्ञान की तरक्की के साथ मानव ने अपनी भौतिक सुख सुविधाओं में बढ़ोतरी करते हुए अपनी जीवन शैली को समृद्धशाली बना दिया है। पृथ्वी के बारे में जानकारी जुटाने से लेकर इसके प्राकृतिक संसाधनों का दोहन व उपयोग तक की यात्रा भूविज्ञान के विज्ञान की अन्य शाखाओं से सम्बन्ध की महत्वता को प्रतिपादित करते है।

पृथ्वी की संरचना को समझने में भौतिक विज्ञान, इसके संघटन के अध्ययन में रसायन विज्ञान तथा इस पर मौजूद जीव, जन्तु व पादप के विकास को समझने में जीव विज्ञान एवं पृथ्वी की उत्पति व सौरमंडल में इसकी उपस्थिति की जानकारी में खगोल विज्ञान (Astronomy) व भू–गणित (Geodesy) की भूमिकाएं महत्वपूर्ण है। भूविज्ञान विषय के मौसम विज्ञान (Meteorology) के साथ सम्बन्ध पुरा जलवायु विज्ञान व जल विज्ञान, जलवायु विज्ञान (Climatology) के साथ सम्बन्ध मृदा विज्ञान व अवसादी शैल विज्ञान एवं भौतिक रसायन (Physical Chemistry) के साथ सम्बन्ध क्रिस्टल विज्ञान, खनिज विज्ञान व शैलिकी शाखाओं द्वारा जुड़ें हुए है। भू भौतिकी (Geophysics) व भू रसायन (Geochemistry) विषयों के साथ भूविज्ञान के सम्बन्ध से पृथ्वी की जटिलता को समझने में आसानी हुई है। जीवाश्म विज्ञान के सम्बन्ध से जीव विज्ञान में विकास यात्रा का अध्ययन सम्भव हुआ है। भूआकृति विज्ञान व पुरा भूगोल द्वारा भूगोल विषय के विभिन्न पहलुओं को समझना आसान हुआ है। सुदूर संवेदी तकनीक व आकाशीय चित्रों तथा उपग्रहीय चित्रों के अध्ययन का विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग, रेडियोधर्मी खनिजों के रेडियो डेटिंग में तथा आण्विक ईंधन के रूप में उपयोगिता एवं भूजल विज्ञान व इंजीनियरी भूविज्ञान के अध्ययन में भी भूविज्ञान

की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। आधुनिक सुख सुविधाओं व ऊर्जा के क्षेत्र में हम पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है, अतः खनिजों एवं शैलों के अन्वेषण, खनन व उपयोग में भूविज्ञान विषय के अन्य विज्ञान विषयों के साथ सम्बन्ध महत्वपूर्ण है।

भूवैज्ञानिक समय–सारणी (Geological Time Scale)

पृथ्वी की उत्पति लगभग चार अरब साठ करोड़ वर्ष पूर्व हुई तथा पृथ्वी पर सर्वाधिक पुरानी शैलों की आयु तीन अरब अस्सी करोड़ वर्ष आंकी गई है। इस लम्बी समयावधि से लेकर वर्तमान तक विभिन्न आग्नेय, अवसादी व कायान्तरित शैलों के निर्माण की प्रक्रिया अनवरत जारी है एवं इस पूरे भूवैज्ञानिक कालानुक्रम को भूवैज्ञानिक समय सारणी द्वारा समझा जा सकता है (तालिका क्रमांक–1.1)। विश्व के विभिन्न शैल समूहों का विस्तृत अध्ययन करते हुए इन्हें अश्म स्तरण (Lithostratigraphy), जैव स्तरण (Biostratigraphy), कालानुक्रम स्तरण (Chronostratigraphy) तथा भू वैज्ञानिक (Geological) समय के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।

अश्म स्तरण क्रम में नामकरण भौगोलिक या शैल के आधार पर किया जाता है तथा इसमें सबसे छोटी इकाई संस्तर (Bed) व बढ़ते क्रम में समुदाय (Member), समूह (Formation), संघ (Group) तथा सबसे बड़ी इकाई महासंघ (Supergroup) होती है। जैव स्तरण क्रम में नामकरण शैल में उपस्थित जीवाश्म की जाति एवं वंश के आधार पर किया जाता है। संस्तर के समक्ष जैव स्तरण क्रम में सबसे छोटी इकाई लघुत्तम संस्तर स्थिति (Zonule), समुदाय के समक्ष उपकटिबंध (Sub Zone) तथा समूह के समक्ष संस्तर स्थिति / कटिबंध (Zone) नामावलियां प्रयुक्त होती है।

भूवैज्ञानिक समयचक्र तथा कालानुक्रम स्तरण के आधार पर शैल समूहों का विभाजन निम्न प्रकार किया जाता है–

समय इकाई (Time Units)	**शैल समूह इकाई** (Rock Units)
महाकल्प (Era)	महासंघ (Supergroup)
कल्प (Period)	समूह (System) / संघ (Group)
युग (Epoch)	श्रेणी (Series)
काल (Age)	समुदाय (Stage)

विभिन्न प्रकार की तथा विभिन्न क्षेत्रों की समस्त शैलों का अध्ययन कर इनको वैज्ञानिक रूप से वर्गीकृत कर भूवैज्ञानिक

तालिका क्रमांक 1.1 – भूवैज्ञानिक समय सारणी (Geological Time Scale)

महाकल्प	कल्प	युग	अवधि (करोड़ वर्षों में)	आयु (करोड़ वर्षों में)	अभिलाक्षणिक जीवन
नूतन जीवी महाकल्प (CENOZOIC ERA)	**चतुर्थ** (Quarternary)	अभिनव (Recent or Holocene)	0.001	0.001 से वर्तमान	आधुनिक मानव एवं प्राणी समूह
		अत्यन्त नूतन (Pleistocene)	0.299	0.3 से 0.001	मानव की उत्पति
	तृतीयक (Tertiary)	अति नूतन (Pliocene)	0.9	1.2 से 0.30	स्तनधारी प्राणी
		मध्य नूतन (Miocene)	1.3	2.5 से 1.20	पक्षी, पुष्पी पादप, मोलस्का, ऑर्थोपॉड का बाहुल्य
		अल्प नूतन (Oligocene)	1.5	4.0 से 2.50	
		आदि नूतन (Eocene)	2.0	6.0 से 4.0	
		पुरा नूतन (Palaeocene)	1.0	7.0 से 6.0	

मध्य जीवी महाकल्प (MESOZOIC ERA)		क्रिटेशस (Cretaceous)	6.5	13.5 से 7.0	सरीसृप, फर्न, साइकेड चीड़ आदि अमोनाइट का विलोप
	द्वितीयक (Secondary)	जुरैसिक (Jurassic)	4.5	18.0 से 13.50	डायनासोर व अमोनाइट का बाहुल्य, प्रथम पक्षी का प्रादुर्भाव, समुद्री अर्चिन व पुष्पी पादप
		ट्राइऐसिक (Triassic)	4.5	22.5 से 18.0	अमोनाइट, सरीसृप, जल–स्थलचर का आधिक्य। फोरामिनिफेरा, प्रवाल और ब्रेकियोपॉड थोड़ी मात्रा में।
पुरा जीवी महाकल्प (PALAEOZOIC ERA)		परमियन (Permian)	4.5	27.0 से 22.50	ट्राइलोबाइट का विलोप, जल–स्थलचर, कीट, वनस्पति की प्रचुरता
		कार्बनी (Carboniferous)	8.0	35.0 से 27.0	प्रथम सरीसृप, फोरामिनिफेरा, क्राइनाइड का चरमोत्कर्ष
		डिवोनी (Devonian)	5.0	40.0 से 35.0	प्रवाल व ब्रेकियोपॉड का आधिक्य, स्पंज की स्थानीय बहुतायत। ट्राइलोबाइट ह्रासोन्मुख, प्रथम जल–स्थलचर और फुफ्फुस मीन (मछली)
	प्राथमिक (Primary)	सिल्यूरियन (Silurian)	4.0	44.0 से 40.0	ग्रेप्टोलाइट का विलोप, प्रथम मीन और कदाचित प्रथम वनस्पति का प्रादुर्भाव
		आर्डोविशन (Ordovician)	6.0	50.0 से 44.0	ट्राइलोबाइट और ग्रेप्टोलाइट की बहुतायत। फोरामिनिफेरा, प्रवाल व ब्रायोजोआ का उत्थान। सेफेलोपॉड का चरमोत्कर्ष
		कैम्ब्रियन (Cambrian)	10.0	60.0 से 50.0	ट्राइलोबाइट की बहुतायत। अनेक प्रकार के कोमल–देही कृमि। बेक्रियोपॉड
कैम्ब्रियन पूर्व महाकल्प (PRECAMBRIAN ERA)		प्राग्जीवी (Proterozoic)	190.0	250.0 से 60.0	शैवाल, स्पंज, कोमल–देही प्राणी व वनस्पति।
		आद्य (Archaean)	$\simeq$ 150.00	$\simeq$ 400 से 250	जीवन रहित कार्बनयुक्त शैल

समय सारणी के अनुसार जिस क्रम से वे निर्मित हुए है, उसी क्रम में व्यवस्थित करने में स्तरित शैल विज्ञान के सिद्धान्त काम में लिये जाते है। इसमें सहसम्बन्ध (Correlation) के अलावा अध्यारोपण क्रम (Order of Superposition), शैलकीय व रासायनिक लक्षण, जीवाश्म अंश, स्तर विन्यास की सततता, विषम विन्यास, कायान्तरण की मात्रा, आग्नेय अन्तर्वेधों से संबंध, संरचनात्मक एवं विवर्तनिक विक्षोभ, पश्चजात धातु अवसादों से सम्बन्ध तथा रेडियो धर्मिता से आयु निर्धारण इत्यादि प्रमुख कारक है।

सहसंबंध के सिद्धान्त तथा समय इकाईयों व शैल समूह इकाईयों के आधार पर भूवैज्ञानिक समय सारणी बनाई गई है। पूरे भूवैज्ञानिक इतिहास को चार महाकल्पों में बांटा गया है। महाकल्प की आयु करोड़ वर्षों में आंकी गई है। भूवैज्ञानिक समय सारणी तालिका क्रमांक – 1.1 में बताई गई है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- पृथ्वी से सम्बन्धित विज्ञान ''भूविज्ञान'' कहलाता है। इसके अन्तर्गत पृथ्वी की आयु, खनिजों, जीवाश्मों, शैलों एवं पृथ्वी में कार्यशील बाह्य एवं आन्तरिक शक्तियों सम्बन्धी जानकारियों का अध्ययन किया जाता है।
- भूविज्ञान को विभिन्न शाखाओं में विभक्त किया गया है। पृथ्वी से सम्बन्धित विभिन्न जानकारियों, इसके प्राकृतिक संसाधनों की खोज, दोहन व उपयोग में भूविज्ञान विषय के विज्ञान की अन्य शाखाओं से सम्बन्ध महत्वपूर्ण है।
- पृथ्वी की आयु चार अरब साठ करोड़ वर्ष आंकी गई है।
- पृथ्वी पर सर्वाधिक पुरानी शैलों की आयु करीब चार अरब वर्ष है।
- शैल निर्माण की अनवरत प्रक्रिया तथा भूवैज्ञानिक कालानुक्रम को ''भूवैज्ञानिक समय सारणी'' से समझाया जा सकता है।
- सहसंबंध के सिद्धान्त, समय इकाईयों तथा शैल समूह इकाईयों के आधार पर भूवैज्ञानिक समय सारणी बनाई गई है।
- भूवैज्ञानिक कालानुक्रम को चार महाकल्पों यथा आद्यमहाकल्प, पुराजीवी महाकल्प, मध्य जीव महाकल्प तथा नूतन जीव महाकल्प में बांटा गया है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. पृथ्वी के बाह्य भाग को कहते है –
   (अ) भूपर्पटी (ब) प्रावार
   (स) क्रोड (द) इनमें से कोई नहीं
2. वलन, भ्रंश, संधि इत्यादि का अध्ययन भूविज्ञान की निम्न में से कौनसी शाखा में किया जाता है –
   (अ) भौतिक भूविज्ञान (ब) खनिजिकी
   (स) संरचनात्मक भूविज्ञान (द) शैलिकी
3. आद्य (Archaean) कल्प की आयु निम्न में से है –
   (अ) 250–400 करोड़ वर्ष (ब) 200–300 करोड़ वर्ष
   (स) 100–150 करोड़ वर्ष (द) इनमें से कोई नहीं
4. डायनासोर का निम्न में से किस युग में बाहुल्य था –
   (अ) केम्ब्रियन (ब) डिवोनी
   (स) जुरैसिक (द) आदि नूतन
5. मानव की उत्पति किस कल्प में हुई –
   (अ) प्राथमिक (ब) द्वितीयक
   (स) तृतीयक (द) चतुर्थ

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न (20 शब्दों में)

1. भूविज्ञान की परिभाषा लिखिए।
2. पृथ्वी की आयु बताईए।
3. पृथ्वी पर सर्वाधिक पुरानी शैलों की आयु बताइए।
4. भूविज्ञान का विज्ञान की किन–किन अन्य शाखाओं से सम्बन्ध है?
5. व्यावहारिक भूविज्ञान में किन क्षेत्रों को सम्मिलित किया गया है?
6. अश्म स्तरण क्रम में किस आधार पर नामकरण किया जाता है?
7. अश्म स्तरण क्रम में सबसे छोटी इकाई क्या है?
8. अश्म स्तरण क्रम में सबसे बड़ी इकाई क्या है?
9. जैव स्तरण क्रम में किस आधार पर नामकरण किया जाता है?
10. जैव स्तरण क्रम में सबसे छोटी इकाई क्या है?
11. भूवैज्ञानिक इतिहास को कितने महाकल्पों में बांटा गया है?
12. ग्रेप्टोलाइट का विलोप किस युग में हुआ?
13. ट्राइलोबाइट का विलोप किस युग में हुआ?
14. अमोनाइट का विलोप किस युग में हुआ?
15. डायनासोर किस महाकल्प में पृथ्वी पर मौजूद थे?

लघुत्तरात्मक प्रश्न (250 शब्दों में)

1. भूविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र पर लघु टिप्पणी लिखिए।
2. स्तरित शैल विज्ञान क्या है?
3. भौतिक भूविज्ञान की व्याख्या कीजिए।
4. आर्थिक भूविज्ञान के महत्व को समझाइए।

5. संरचनात्मक भूविज्ञान को परिभाषित कीजिए।
6. खनिजिकी क्या है?
7. खनन क्या है?
8. भूआकृति विज्ञान को परिभाषित कीजिए।
9. शैलिकी क्या है?
10. जीवाश्म किसे कहते है?
11. जीवाश्म विज्ञान को परिभाषित कीजिए।
12. भूविज्ञान के विज्ञान की अन्य शाखाओं से सम्बन्ध क्यों आवश्यक है?
13. भूवैज्ञानिक समय सारणी में किन आधारो पर विभिन्न शैल समूहों को वर्गीकृत किया गया है?
14. समय इकाई के घटक क्या है?
15. शैल समूह इकाई के घटक क्या है?

निबंधात्मक प्रश्न

1. भूविज्ञान की उपयोगिता पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
2. भूविज्ञान की विभिन्न शाखाओं तथा इसके विज्ञान की अन्य शाखाओं से सम्बन्ध पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
3. पृथ्वी पर स्थित विभिन्न शैलों के कालानुक्रम तथा जीव जंतुओं व पादपों के विकास को भूवैज्ञानिक समय सारणी द्वारा समझाने की विवेचना कीजिए।
4. भूवैज्ञानिक समय सारणी लिखिए।

उत्तरमालाः 1 (अ), 2 (स), 3 (अ), 4 (स), 5 (द)

अध्याय – 2

भौतिक भूविज्ञान एवं भू आकृति विज्ञान
(Physical Geology and Geomorphology)

सौर मंडल

मानव को सौर मंडल के अस्तित्व को समझने में हजारों वर्ष लगे। पूर्व में विचारधारा रही कि पृथ्वी ब्रह्माण्ड का स्थिर केन्द्र है अर्थात "भूकेन्द्रीय" (Geocentric) विचारधारा प्रचलन में रही। ईस्वी सन् 950 में भारतीय गणितज्ञ आर्यभट्ट ने "सूर्य केन्द्रीय" (Heliocentric) विचारधारा को जन्म दिया परन्तु इस सिद्धांत के प्रतिपादन का श्रेय सन् 1490 में कोपरनिकस को मिला। सन् 1609 में गेलिलीयो ने दूरबीन (Telescope) का अविष्कार किया व "सूर्य केन्द्रीय" सिद्धांत को प्रमाणित किया। इस सिद्धांत के अनुसार सौर मंडल के केन्द्र में सूर्य स्थित है तथा जिसके चारों ओर सौर मंडल के अन्य सभी सदस्य परिक्रमा करते हैं।

सौर मंडल में सूर्य और अन्य खगोलीय पिंड शामिल है जो इस मंडल में एक दूसरे से गुरूत्वाकर्षण बल द्वारा बंधे हुए हैं। सूर्य एक विशाल तारा है तथा इसके चारों ओर परिक्रमा करते अपेक्षाकृत छोटे आकार के आठ ग्रहों, बौने ग्रहों, प्राकृतिक उपग्रहों, क्षुद्रग्रहों, उल्काएं, धूमकेतुओं और खगोलीय धूल के समूह को ग्रहीय मण्डल कहते हैं। सूर्य व उसके ग्रहीय मण्डल से मिलकर ही सौर मण्डल बना है। इसके केन्द्र में सूर्य है और सबसे बाहरी सीमा पर वरूण ग्रह (Neptune) है। वरूण से परे यम (Pluto) बौने ग्रहों के अलावा धूमकेतू (Comets) विद्यमान है। सूर्य जी–2 (G-2) श्रेणी का मुख्य अनुक्रम तारा है तथा प्रति सैकण्ड 60 करोड़ टन हाइड्रोजन को संलयित करके हीलियम बना देता है जिससे ऊर्जा का निर्माण होता है। सूर्य हमारे सौर मण्डल का सर्वाधिक बड़ा पिण्ड है जिसमें सौर मंडल का 99.86 फीसदी द्रव्यमान निहित है। सूर्य का व्यास लगभग 13 लाख 90 हजार किलोमीटर है, यह हमारी पृथ्वी से लगभग 109 गुना अधिक है।

सौर मंडल में सूर्य से उनकी दूरी के क्रम में आठ ग्रह है: बुध (Mercury), शुक्र (Venus), पृथ्वी (Earth), मंगल (Mars), बृहस्पति (Jupiter), शनि (Saturn), अरूण या वारूणी (Uranus) तथा वरूण (Neptune)।

बुध सौर मंडल का सूर्य से सर्वाधिक निकट स्थित तथा आकार में सबसे छोटा ग्रह है। यह सूर्य की एक परिक्रमा 88 दिन में करता है। **शुक्र** सूर्य से दूसरा ग्रह है तथा इसका घूर्णन काल 225 दिन का है। शुक्र का आकार व बनावट लगभग पृथ्वी जैसी होने के कारण इसे पृथ्वी की बहन कहा जाता है। **पृथ्वी** सूर्य से तीसरा ग्रह है तथा एकमात्र ग्रह है जिस पर जीवन मौजूद है। सूर्य से पृथ्वी की औसत दूरी लगभग 15 करोड़ किलोमीटर है जिसे एक खगोलीय इकाई या एकक (Astronomical Unit) कहते हैं। पृथ्वी को 'नीला ग्रह' भी कहते हैं। सौर मंडल में सूर्य से चौथा ग्रह **मंगल** है, इसकी आभा 'रक्तिम' होने के कारण इसे 'लाल ग्रह' भी कहा जाता है। मंगल ग्रह पर हमारे सौर मंडल का सर्वाधिक ऊंचा पर्वत "**ओलम्पस मोन्स**" (लेटिन माउण्ट ओलम्पस) करीब 22 किलोमीटर ऊंचाई का है जो पृथ्वी पर मौजूद सर्वाधिक ऊंचाई वाले पर्वत माउंट एवरेस्ट (ऊंचाई 8848 मीटर) से लगभग तीन गुना जितना ऊंचा है। मंगल ग्रह पर जीवन और पानी होने की संभावनाएं व्यक्त की जाती रही है तथा इसकी पुष्टि को लेकर चुनौतीपूर्ण शोध कार्य जारी है। मंगल के दो उपग्रह फोबास और डेमास है। बुध, शुक्र पृथ्वी व मंगल सौरमंडल में सूर्य से दूरी के आधार पर निकटतम व कनिष्ठ सदस्य है वही दूसरी ओर बृहस्पति, शनि, अरूण व वरूण दूरस्थ व वरिष्ठ सदस्य है। जमीन युक्त ग्रह स्थलीय ग्रह कहलाते है वहीं अधिकतर गैस युक्त ग्रह यथा बृहस्पति, शनि, अरूण व वरूण गैसीय ग्रह कहलाते हैं।

बृहस्पति सूर्य से पांचवां और सौर मंडल का सर्वाधिक बड़ा ग्रह है जिसका द्रव्यमान सौर मंडल के अन्य सात ग्रहों के कुल द्रव्यमान का ढ़ाई गुना है, इसके 12 उपग्रह है। शनि बृहस्पति के बाद दूसरा सबसे बड़ा उपग्रह है तथा इसके 60 से अधिक

उपग्रह है जिनमें सबसे बड़ा उपग्रह टाइटन है जो आकार में बुध ग्रह से भी बड़ा है। **अरूण** सौर मंडल का तीसरा सबसे बड़ा ग्रह है, ये पृथ्वी के आकार से 63 गुना अधिक बड़ा है परन्तु गैसीय ग्रह होने के कारण विशालकाय होने के बावजूद पृथ्वी से 14.5 गुना ही अधिक भारी है, इसके 5 उपग्रह हैं। **वरूण** हमारे सौर मंडल में सूर्य से आठवाँ ग्रह है, पृथ्वी के मुकाबले ये सूर्य से लगभग तीस गुना अधिक दूरी पर है। इसके 2 उपग्रह है। सभी ग्रहों का परिक्रमण पथ दीर्घवृत्ताकार है। यम को बौने ग्रह के रूप में वर्गीकृत किया जाने लगा है। सौर मंडल में मंगल तथा बृहस्पति ग्रहों के बीच क्षुद्र ग्रह घेरा (Asteroid Belt) क्षेत्र है जिसमें हजारों क्षुद्रग्रह है जो सूर्य की परिक्रमा कर रहे हैं (चित्र 2.1)। इनमें सेरेस, पालास, जूनो, वेस्टा तथा एस्ट्रीया की खोज 19वीं सदी में की गई। सौर मंडल में प्रचुर मात्रा में छोटे आकार के पिण्ड है जो पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण से तीव्र वेग से वायुमंडल में प्रविष्ठ करते हैं तथा घर्षण के फलस्वरूप प्रज्वलित हो जलकर विलिन हो जाते हैं एवं रात्रि में चमकते टूटते तारे की तरह दिखाई पड़ते हैं, इन्हें उल्का (Meteor) कहते हैं। कुछ बड़े पिण्ड पृथ्वी की धरातल पर प्रज्वलित अवस्था में आकर गिरते हैं, उल्कापिण्ड (Meteorite) कहलाते हैं। सौर मंडल में पत्थर, बर्फ, नीहारिका, गैस एवं धूल कणों के पुंज के रूप में अनेक धूमकेतू (Comets) हैं जो अतिदीर्घवृत्तीय परिक्रमण पथ में सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इनके चमकीले अग्र भाग को 'कोमा', मध्य भाग को 'नाभि या केन्द्रक' तथा पश्च भाग को 'पूंछ' कहते हैं। हैली, शूमेकर–लेवी 9, हेल–बॉप, डोनाटी, डेनियल तथा पेल्टियर कुछ प्रसिद्ध धूमकेतू है। शूमेकर–लेवी 9 वर्ष 1994 के जुलाई माह में बृहस्पति से टकराकर नष्ट हो गया था।

पृथ्वी की उत्पत्ति

सौर मंडल के विभिन्न सदस्यों के आंतरिक सम्बन्ध एवं इनके गुणधर्मों में सामंजस्य इसकी एकरूपता को प्रमाणित करते है, अतः पृथ्वी की उत्पत्ति को समझने में सौर मंडल की उत्पत्ति के प्रक्रम का समुचित समाधान खोजना होगा। सौर मंडल की उत्पत्ति के संबंध में दो विचारधाराओं यथा एकरूपतावादी या एकजनकीय परिकल्पनाओं तथा प्रलयवादी या द्विजनकीय परिकल्पनाओं में बांटा गया है। एकरूपतावादी परिकल्पनाओं में विकासवादी सिद्धांत के आधार पर एक ही प्रक्रम के अनुसार सौर मंडल की उत्पत्ति क्रमागत विकास के फलस्वरूप मानी गई है वहीं दूसरी ओर प्रलयवादी परिकल्पनाओं में सौर मंडल की उत्पत्ति अन्तरिक्ष में घटित प्रलयकारी घटना के कारण मानी गई है।

एकरूपतावादी परिकल्पनाएँ

काण्ट एवं लाप्लास की नीहारिका परिकल्पना– काण्ट (1775) तथा लाप्लास (1796) ने सौर मंडल की उत्पत्ति को समझाने के लिए नीहारिका परिकल्पना प्रस्तुत की। उन्होंनें

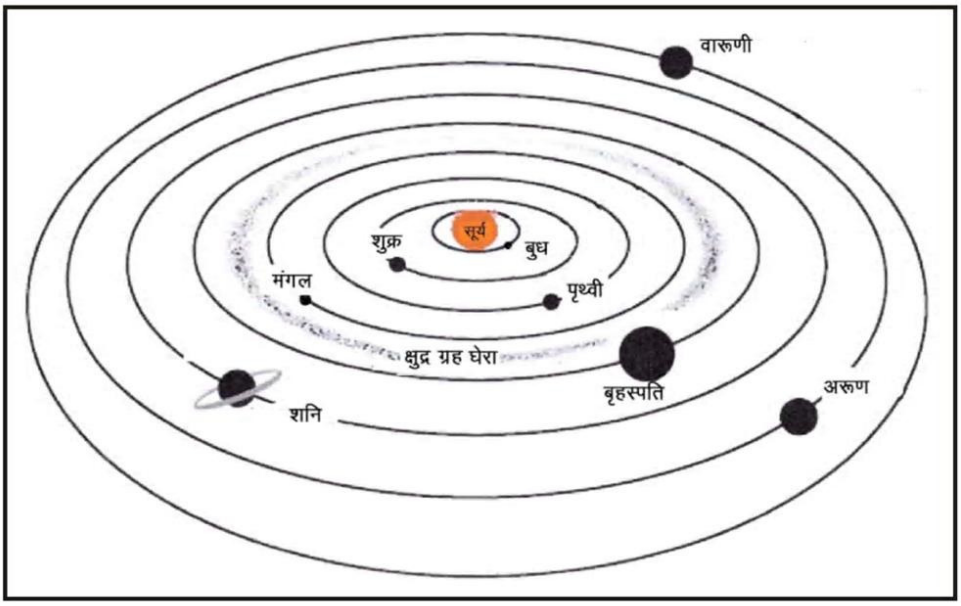

चित्र – 2.1 सौरमंडल में सूर्य और आठ ग्रह

अंतरिक्ष में घने गैसीय पदार्थों के पिंड के रूप में एक विशाल नीहारिका की कल्पना की, जिसे आद्य सूर्य माना गया। लाप्लास के अनुसार नीहारिका अपने अक्ष पर घूर्णनशील थी। परिकल्पना के अनुसार सामान्य गुरूत्वाकर्षण के प्रभाव से घूर्णनशील नीहारिका में क्रमशः संकुचन के कारण आयतन में कमी होने के फलस्वरूप इसके घूर्णन वेग में बढोतरी हुई फलतः नीहारिका में केन्द्र से परिधि की ओर कार्यरत अपकेन्द्री बल में वृद्धि होती गई व यह अभिकेन्द्री बल से अधिक हो गया। इस कारण गैसीय पदार्थों की कुछ मात्रा नीहारिका से अलग होकर इसके चारों ओर एक गैसीय वलय (**Ring**) के रूप में इकठ्ठा हुआ। कालान्तर में यह गैसीय पदार्थ सम्मिलित व संघनित होकर ठोस पिंड के रूप में ग्रह बन गया। इस प्रकार घूर्णनशील नीहारिका से एक के बाद एक गैसीय वलय बने व जिनके संघनन से विभिन्न ग्रहों का निर्माण हुआ। नीहारिका के शेष भाग के संघनन से सूर्य बना तथा इसी प्रकार से विभिन्न ग्रहों से कालान्तर में उपग्रहों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार विकासवादी सिद्धांत के अनुसार एक विशाल नीहारिका से सौर मंडल की उत्पत्ति होना बताया गया (चित्र 2.2)।

यह परिकल्पना सूर्य से दूरी के आधार पर निकटतम व कनिष्ठ, छोटे किन्तु भारी एवं दूरस्थ व वरिष्ठ, बड़े किन्तु हल्के ग्रहों में विभेदीकरण तथा कोणीय संवेग के वितरण को समझाने में खरी नहीं उतर पाई। क्लार्क एवं मैक्सवेल ने इस परिकल्पना के विपरित प्रमाणित किया कि नीहारिका से पृथक हुए गैसीय पदार्थों का वलय कभी भी सम्मिलित होकर ग्रहों का निर्माण नहीं कर सकता बल्कि गैसीय पदार्थों का अन्तरिक्ष में लीन होने की अधिक संभावना है। अतः यह नीहारिका–परिकल्पना निरर्थक व उपेक्षित मानी जाने लगी।

वाइजेकर की नीहारिका–मेघ परिकल्पना – वाइजेकर (1944) ने नीहारिका–मेघ परिकल्पना में बताया गया कि अन्तरिक्ष में भ्रमण करता हुआ सूर्य अपेक्षाकृत घने गैसीय पदार्थों एवं धूलकणों से निर्मित अन्तरातारकीय मेघ अतिविस्तीर्ण विसरित नीहारिका (**Diffused Nebula**) मे प्रविष्ठ हुआ।

सूर्य के चारों ओर इस विसरित नीहारिका के गैसीय पदार्थों का आवरण, गुरूत्वाकर्षण के कारण बन गया। यह सूर्य के घूर्णन की वजह से क्रमशः मन्द गति से घूमने वाली चक्रिका के रूप में परिवर्तित हो गया। चक्रिका का विस्तार सौरमंडल के मौजूदा विस्तार के समान माना गया। इस विशाल नीहारिका के आवरण के संघनन से क्रमशः ग्रहों की उत्पत्ति हुई।

हेन्स आल्फवेन की विद्युत–चुम्बकीय परिकल्पना– हेन्स आल्फवेन (1942) ने विद्युत–चुम्बकीय शक्तियों द्वारा सौर मंडल की उत्पत्ति को समझाने का प्रयास किया। इस परिकल्पना के अनुसार सूर्य अधिक वेग से घूर्णन करता हुआ नीहारिका मेघ में प्रविष्ट करता है जो प्रारम्भिक अवस्था में विद्युत उदासीन कणों से बना हुआ माना गया। आल्फवेन के अनुसार सूर्य के चारों ओर सौर मंडल के समान विशाल क्षेत्र में फैलाव लिया आवरण मंडल आयनित हो जाता है तथा इसमें चुम्बकीय शक्तियों के कारण,

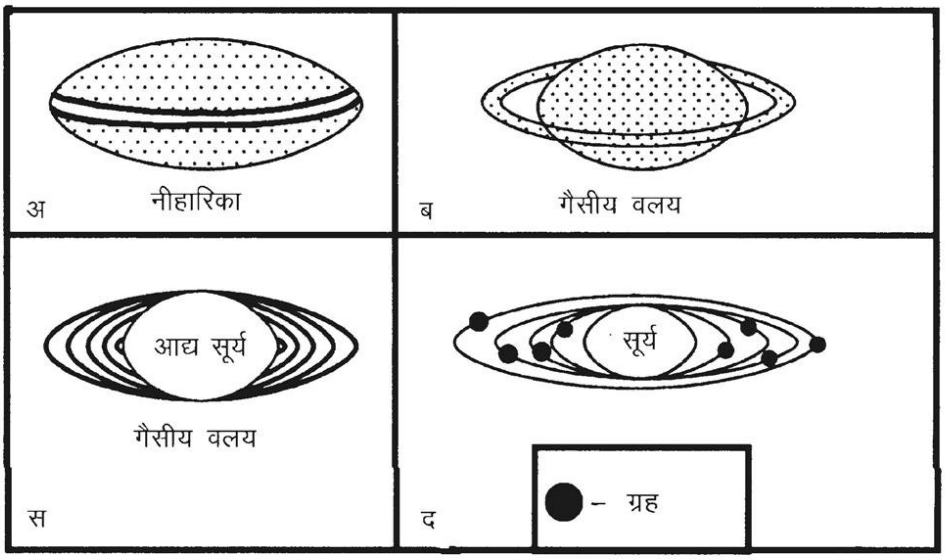

चित्र – 2.2 काण्ट एवं लाप्लास की निहारिका परिकल्पना

चुम्बकीय क्षेत्र में आवेशित कणों की गति के नियमानुसार पदार्थों की मात्रा सूर्य के विषुवतीय क्षेत्र में ही एकत्रित होती है। यह जमाव शनि एवं बृहस्पति ग्रहों की दूरी पर होता है तथा सूर्य के घूर्णन वेग के कारण ये सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करने लगते हैं। तत्पश्चात गैसीय एवं अन्य कण क्रमशः संघनित होकर वृहत ग्रहों की उत्पत्ति करते हैं । तथा इसी प्रकार ग्रहों की चुम्बकीय शक्ति के कारण उपग्रहों की उत्पत्ति हुई है।

कुइपर की नीहारिका–मेघ परिकल्पना– जी.पी. कुइपर (1951) ने वाइजेकर की परिकल्पना को रूपान्तरित करते हुए बताया कि नीहारिका मेघ के गैसीय पदार्थों तथा धूल कणों से बना हुआ विशाल चक्रीय आवरण टूटकर कई विक्षुब्ध भंवरों का रूप धारण करता है, ये भंवर सूर्य की दूरी के अनुसार वृहत होते जाते हैं तथा कई भंवर सम्मिलित होकर ''पूर्व–ग्रहों'' (Protoplanets) का निर्माण करते हैं एवं इन्हीं पूर्व–ग्रहों से विभिन्न ग्रहों की उत्पत्ति हुई है।

श्मिड्ट की उल्का पिण्ड परिकल्पना– श्मिड्ट की परिकल्पना के अनुसार भ्रमणशील सूर्य ने आकाश गंगा में उपस्थित नीहारिका–मेघ से गैसीय पदार्थ, धूल कण तथा उल्का पदार्थों को अपनी ओर आकर्षित किया जिससे सूर्य के चारों ओर विसरित कणों के झुण्ड का विशाल आवरण बन गया। सूर्य के आकर्षण बल तथा आकाश गंगा में भ्रमण की गति के कारण विसरित कणों के ये झुण्ड सूर्य के चारों ओर दीर्घवृत्ताकार कक्षा में घूमने लगे तथा सूर्य के प्रभाव के कारण ये विसरित झुण्ड विभेदित हो गये। गैसीय पदार्थ के ठोस कणों से अलग होकर छोटे तथा घने पिण्डों का निर्माण हुआ। सूर्य से अपेक्षाकृत दूरस्थ भागों में गैसीय पदार्थ के संघनन से हल्के पिण्ड निर्मित हुये तथा इन पिण्डों के सम्मिलित होने से विभिन्न ग्रहों की उत्पत्ति हुई और इन्हीं पिण्डों से ही धूमकेतू, उल्का पिण्ड इत्यादि भी निर्मित हुए।

प्रलयवादी परिकल्पनाएँ

बफन की टक्कर परिकल्पना– प्रलयवादी प्रक्रम द्वारा सौर मंडल की उत्पत्ति को समझाने की पहली परिकल्पना फ्रांस के वैज्ञानिक बफन ने प्रस्तुत की। इसमें उन्होंने प्रारम्भिक अवस्था में सूर्य को एक अति विशालकाय गैसीय पिण्ड या नीहारिका माना तथा किसी भ्रमणशील विशाल तारे एवं सूर्य की टक्कर के फलस्वरूप विशाल मात्रा में तारकीय पदार्थों का बिखराव हुआ। तारकीय पदार्थ की कुछ मात्रा विचरणशील तारे के साथ अन्तरिक्ष में विलीन हो गई तथा अन्य भाग सूर्य की ओर आकर्षित हो गया। इस भाग पर सूर्य एवं क्रमशः दूर जाते हुए तारे के आकर्षण का सम्मिलित प्रभाव पड़ा जिसके फलस्वरूप अन्ततः सूर्य की ओर आकर्षित ये पदार्थ दीर्घवृत्ताकार कक्षा में सूर्य की परिक्रमा करने लगे। इन्हीं तारकीय पदार्थों से सौर मंडल के अन्य सभी सदस्यों की उत्पत्ति मानी गई है।

चेम्बरलीन एवं मोल्टन की ग्रहाणु परिकल्पना– चेम्बरलीन एवं मोल्टन (1905) की परिकल्पना ''सौर ज्वाला'' आधारित है। सूर्य की सतह पर होने वाले गैसीय पदार्थों के उद्गार सौर ज्वाला (Solar Prominence) कहलाता है। इस परिकल्पना के अनुसार अति भूतकाल में गैसीय पदार्थों की विशाल मात्रा प्रचण्ड सौर ज्वाला के फलस्वरूप सूर्य की सतह से बहुत दूरी तक फैंकी गयी। इसी दौरान एक बड़ा तारा विचरण करते हुये सूर्य के निकट से गुजरा तथा सूर्य सतह से उद्गीर्ण गैसीय पदार्थों की यह मात्रा इस तारे की ओर आकृष्ट हो गई। भ्रमणशील तारा क्रमशः सूर्य से दूर होता गया तथा उसके आकर्षण का प्रभाव भी धीरे–धीरे कम होता गया। अन्ततः गैसीय पदार्थों की यह मात्रा सूर्य की ओर पुनः आकर्षित हो गई तथा सूर्य के चारों ओर दीर्घ वृत्ताकार कक्षा में परिक्रमा करने लगी। इसी गैसीय पदार्थों के संघनन से छोटे पिण्ड या ग्रहाणुओं की उत्पत्ति हुई तथा इन ग्रहाणुओं के सम्मिलित होने से ग्रहों की उत्पत्ति हुई एवं सूर्य के आकर्षण बल के कारण ग्रहों से उपग्रहों की उत्पत्ति हुई।

जीन्स एवं जेफ्रीज की ज्वारीय परिकल्पना– जीन्स एवं जेफ्रीज की ज्वारीय परिकल्पना चन्द्रमा के आकर्षण बल के फलस्वरूप समुद्र की सतह पर उठने वाले ज्वार के प्रक्रम पर आधारित है। इस परिकल्पना के अनुसार अन्तरिक्ष में भ्रमणशील एक अति विशाल तारा 'आदिसूर्य' के बहुत पास से गुजरा व अपने आकर्षण बल के कारण सूर्य की सतह पर विशाल ज्वार को उत्पन्न किया तथा बड़े परिमाण में गैसीय पदार्थ की मात्रा विशालकाय आगन्तुक तारे की ओर आकृष्ट हो गई। भ्रमणशील तारा क्रमशः सूर्य से दूर होता गया एवं उसके आकर्षण के कारण सूर्य की सतह से गैसीय पदार्थों की इस मात्रा का सम्बन्ध विच्छेद हो गया। विशाल तारा भ्रमण करते हुये पुनः अन्तरिक्ष में विलीन हो गया फलतः उसका आकर्षण शनै–शनै कम होते हुए अन्त में शून्य हो गया। गैसीय पदार्थों का पिण्ड पुनः सूर्य के आकर्षण क्षेत्र में लौट कर इसके चारों ओर दीर्घवृत्तीय कक्षा में परिक्रमा करने लगा। अस्थायी लम्बे आकार के गैसीय पिण्ड टूटकर कई भागों में विभक्त हुआ जो क्रमशः संघनित व सम्मिलित होकर ठोस पिण्ड के रूप में ग्रह कहलाए जो सूर्य के चारो ओर दीर्घवृत्तीय कक्षाओं में सूर्य की परिक्रमा करने लगे। सूर्य से निकटता होने पर सूर्य के आकर्षण बल के फलस्वरूप इनकी सतह से ज्वार के रूप में विच्छेदीत हुए पदार्थों से उपग्रहों की उत्पत्ति हुई। यह परिकल्पना ग्रहों के घूर्णन के कारण एवं कोणीय संवेग के वितरण को समझाने में सफल नहीं हो सकी (चित्र 2.3)।

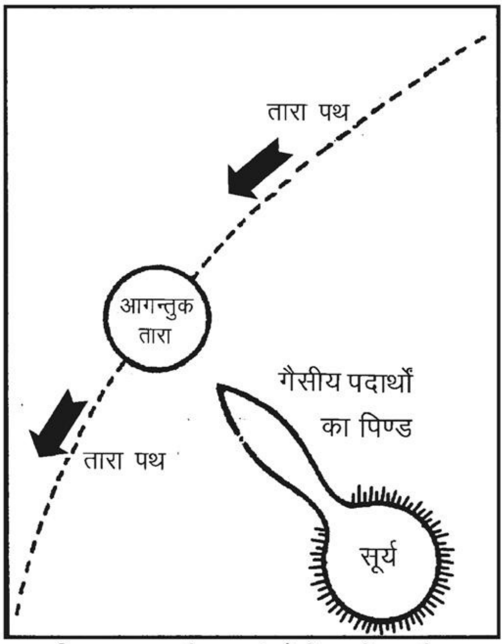

चित्र – 2.3 जीन्स एवं जेफ्रीज की ज्वारीय परिकल्पना

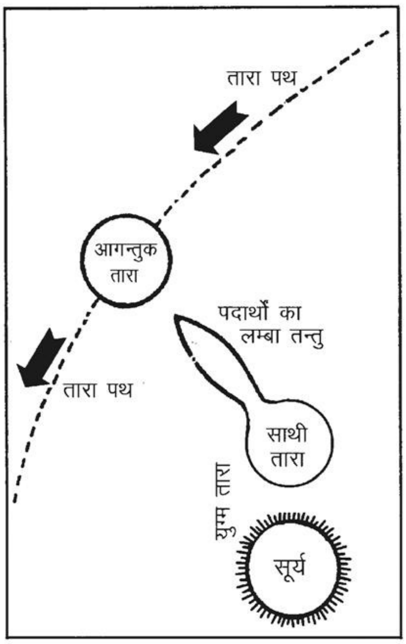

चित्र – 2.4 रसेल एवं लिटिलटन की युग्म तारा परिकल्पना

रसेल एवं लिटिलटन की युग्म तारा परिकल्पना– इस परिकल्पना में 'आदि सूर्य' को एक युग्म तारा के रूप में माना गया। इसमें एक सूर्य तथा दूसरा उसका साथी तारा माना गया। ज्वारीय परिकल्पना के अनुरूप ही एक विशाल तारा विचरण करते हुए सूर्य के साथी तारे के बहुत निकट से गुजरता है तथा ज्वारीय प्रभाव के फलस्वरूप साथी तारे की सतह से पदार्थों की मात्रा एक लम्बे तंतु के रूप में अलग हो जाती है परन्तु सूर्य पर भ्रमणशील तारे से अत्यधिक दूरी होने के कारण ज्वारीय प्रभाव नहीं पड़ता। भ्रमणशील तारे के साथ सूर्य का साथी तारा भी क्रमशः अन्तरिक्ष में विलुप्त हो गया परन्तु साथी तारे से अलग हुए पदार्थों का लम्बा तन्तु सूर्य की ओर आकर्षित होकर उसके चारों ओर दीर्घवृत्ताकार कक्षा में परिक्रमा करने लगा तथा इसी से विभिन्न ग्रहों की उत्पत्ति हुई और इन ग्रहों के ज्वारीय आकर्षण के फलस्वरूप ही उपग्रहों की उत्पत्ति हुई। यह परिकल्पना कोणीय संवेग की पुष्टि करती है (चित्र 2.4)।

रॉसगन की विखण्डन परिकल्पना– रॉसगन ने ज्वारीय परिकल्पना के अनुरूप ही सौर मंडल की उत्पत्ति को समझाते हुए युग्म तारे की उत्पत्ति के लिए विखण्डन प्रक्रिया को जिम्मेदार बताया। घूर्णनशील तारे में संकुचन बढ़ने के साथ इसके घूर्णन वेग में बढ़ोतरी होने के फलस्वरूप अन्ततः तारा विखण्डित होकर दो भागों में विभक्त हो कर युग्म तारे में बदल गया। रॉसगन के अनुसार विखण्डन की अवस्था के समय तारा अस्थायी था तथा उसी समय एक अन्य विशाल तारा बहुत निकट से गुजरा जिससे विखण्डित अस्थायी भाग पर ज्वारीय प्रभाव अधिक प्रबल हो गया। इसके बाद ज्वारीय परिकल्पना की ही तरह सौर मंडल की उत्पत्ति हुई।

बनर्जी की सिफिड परिकल्पना– ज्वारीय परिकल्पना के ही अनुरूप प्रो. ए.सी. बनर्जी (1942) ने सूर्य को एक विशाल परिवर्ती सिफिड के रूप में मानते हुए अपनी परिकल्पना प्रस्तुत की। इस प्रकार का तारा क्रमबद्ध लय से स्पंदन कर रहा था व किसी अन्य आगन्तुक तारे के ज्वारीय प्रभाव के कारण यह सिफिड अस्थायी हुआ तथा उससे पदार्थो की बड़ी मात्रा छिटक कर अलग हुई जिसके संघनन से सूर्य तथा अन्य ग्रहों की उत्पत्ति हुई।

फ्रेड हायल की नवतारा परिकल्पना– फ्रेड हायल (1945) ने भी अपनी परिकल्पना में 'आदि सूर्य' को युग्म तारा माना परन्तु इसमें एक सूर्य तथा दूसरा साथी एक नवतारा था। नवतारा (Nova) अकस्मात प्रज्वलित होकर कुछ समय के लिए

अत्यधिक चमकदार तारा बन जाता है तथा क्रमशः शान्त होकर पुनः निश्तेज हो जाता है। इसके अकस्मात विस्फोटन से प्रचुर मात्रा में अत्यधिक वेग से गैसीय पदार्थों का निष्कासन हुआ। निष्कासन के विपरित दिशा में प्रतिक्षेप वेग प्रतिपादित हुआ। इसी समय एक आगन्तुक तारा इस नवतारा के बहुत निकट से गुजरा, नवतारे के विस्फोटन व उसके प्रतिक्षेप–बल और आगन्तुक तारे के आकर्षण बल के कारण नवतारा अन्तरिक्ष में विलीन हो गया परन्तु गैसीय पदार्थ की बड़ी मात्रा सूर्य की ओर निष्कासित हुई व इसके आकर्षण क्षेत्र में होकर सूर्य के ही चारों ओर परिक्रमा करने लगी तथा इसी गैसीय पदार्थों की मात्रा से ग्रहों की उत्पत्ति हुई। फ्रेड हॉयल ग्रहों के घूर्णन व उपग्रहों की उत्पत्ति के कारण नहीं समझा पाए (चित्र 2.5)।

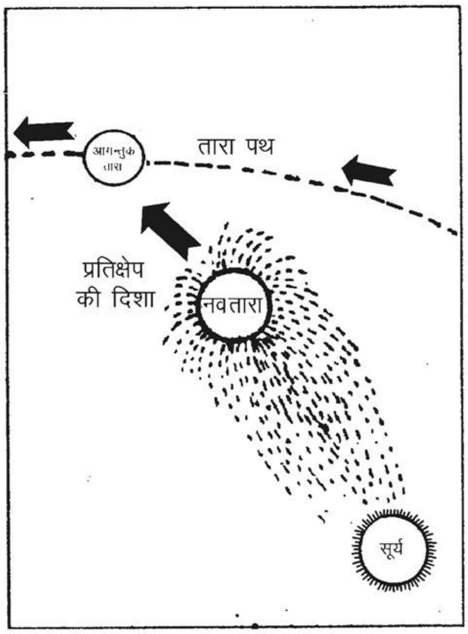

चित्र – 2.5 फ्रेड हायल की नवतारा परिकल्पना

सौर मंडल की उत्पत्ति को समझाने हेतु विभिन्न परिकल्पनाएं प्रस्तुत की गई परन्तु सौरमंडल की समस्त विशिष्टताओं को पूर्णतः कोई भी परिकल्पना सफलतापूर्वक नहीं समझा पाई है। एकरूपतावादी तथा प्रलयवादी आधारित विचारधाराओं को भिन्न–भिन्न समय में सौरमंडल की उत्पत्ति को समझाने हेतु प्रयास किये गए परन्तु यह माना गया है कि सौर मंडल की उत्पत्ति किसी एकरूपतावादी प्रक्रम के अनुसार ही हुई होगी।

पृथ्वी की आंतरिक संरचना

पृथ्वी की विभिन्न गहराईयों में भूकम्पों की उत्पत्ति होती है तथा पृथ्वी की आन्तरिक संरचना के बारे में जानकारी देने में भूकम्पीय तंरगों के अध्ययन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भूकम्प के दौरान पृथ्वी की विभिन्न गहराईयों में तीन तरह की भूकम्पीय तरंगे उत्पन्न होती है। इनमें से **प्राथमिक तरंग (Primary Wave)** तथा द्वितीयक तरंग **(Secondary Wave)** या क्रमशः P तथा S तरंग पृथ्वी के आन्तरिक भागों में ही संचारित होती है तथा पिण्डीय तरंगे (Body Waves) कहलाती है। तीसरी प्रकार की **दीर्घ तरंग या L तरंग;** सतही तरंग है एवं भू धरातल पर ही इसका संचरण होता है। इन भूकम्पीय तरंगों का संचरण पृथ्वी की आन्तरिक संरचना पर निर्भर करता है, अतः पृथ्वी की आन्तरिक संरचना को समझने में ये तरंगे महत्वपूर्ण साबित हुई है। प्राथमिक तरंगे गैस, द्रव व ठोस पदार्थों में समान रूप से संचरण करती है वहीं दूसरी ओर द्वितीयक तरंगे केवल ठोस पदार्थों में ही गमन करती है। इन दोनों तरंगो की गति तथा विभिन्न पदार्थों में इनकी संचरणशीलता विभिन्न होती है तथा पृथ्वी की गहराईयों की वृद्धि के साथ इनके वेग में भी वृद्धि होती है। विभिन्न शैलों के प्रत्यास्थ गुणों पर भी इनका वेग निर्भर करता है अतः तरंगों के वेग में आकस्मिक परिवर्तन भी होते हैं तथा ऐसे अकस्मात् परिवर्तन के तलों को असांतत्य तल (Plane of Discontinuity) कहा जाता है। भूकम्पीय तरंगों के वेग पृथ्वी के महाद्वीपीय थल भागों में मौजूद ग्रेनाइट शैलों के घनत्व एवं प्रत्यास्थ नियतांक के आधार पर ऊपरी स्तर में P तरंग का वेग 5.4 किलोमीटर प्रति सेकेण्ड तथा S तरंग का वेग 3.3 किलोमीटर प्रति सेकेण्ड इंगित करता है कि पृथ्वी के सबसे ऊपरी भाग भूपर्पटी का ऊपरी स्तर ग्रेनाइट शैलों से निर्मित है। सिलिका तथा एल्यूमिनियम की प्रचुरता वाले इस स्तर को सिएल (Sial) कहा जाता है। महाद्वीपीय थल के समतल भागों में ग्रेनाइट शैलों के स्तर की मोटाई 10 किलोमीटर है वहीं दूसरी ओर उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में यह स्तर 50 किलोमीटर मोटाई तक पाया जाता है। ग्रेनाइट स्तर के नीचे के स्तर में P तरंग का वेग बढकर 6.5 किलोमीटर प्रति सेकेण्ड तथा S तरंग का वेग बढकर 3.8 किलोमीटर प्रति सेकेण्ड हो जाता है जो अल्पसिलिक शैलों (बेसाल्ट) की उपस्थिति दर्शाता है। इस स्तर को सिलिका तथा मैग्नीशियम प्रचुरता युक्त होने के कारण सिमै (Sima) कहते हैं।

इस बेसाल्ट युक्त स्तर की मोटाई समतल मैदानी क्षेत्र के नीचे सामान्यत 30 किलोमीटर तथा पर्वतीय क्षेत्र के नीचे 10–15 किलोमीटर तक पायी जाती है एवं महासमुद्रों की तली में इसकी मोटाई अति नगण्य होती है। अतः ग्रेनाइट एवं बेसाल्टी शैलों के स्तर मिलकर पृथ्वी के बाहरी कवच भूपर्पटी कहलाता है। भूपर्पटी से नीचे गहराई में स्थित भागों में भूकम्पीय तरंगों के वेग में वृद्धि

होती है तथा इस स्तर के शैल अत्यल्प सिलिक यथा पेरिडोटाइट, इक्लोगाईट, पाइरॉक्सीनाइट तथा ड्यूनाइट है तथा इसे प्रावार (Mantle) कहते हैं। भूपर्पटी व प्रावार स्तरों के बीच भूकम्पीय तरंगो के वेग में अकस्मात् वृद्धि असांतत्य तल का द्योतक है तथा यूगोस्लावाकिया के वैज्ञानिक ए. मोहोरोविसिक ने इसकी खोज की अतः इसे मोहोरोविसिक असांतत्य तल (Mohorovicic Discontinuity) कहते हैं। भूकम्पीय तरंगों का अध्ययन पृथ्वी की 1200 किलोमीटर, 1700 किलोमीटर तथा 2400 किलोमीटर गहराईयों में भी असांतत्य तल पाये जाने का संकेत करता है। 1200 किलोमीटर से 2900 किलोमीटर की गहराई वाले भाग में P तरंगों का वेग बढता हुआ 13.6 किलोमीटर प्रति सेकेण्ड तथा S तरंग का वेग 7.3 किलोमीटर प्रति सेकेण्ड तक हो जाता है। 2900 किलोमीटर से अधिक गहाराई में S तरंगों का गमन नहीं होता है तथा P तरंगों का वेग अचानक घटकर 8.1 किलोमीटर प्रति सेकेण्ड हो जाता है। यह वेग परिवर्तन पृथ्वी की 2900 किलोमीटर गहराई पर एक अन्य असांतत्य तल का सूचक है। इसकी उपस्थिति को गुटनबर्ग तथा वीचर्ट ने प्रमाणित किया, इसे गुटेनबर्ग असंतति कहते हैं जो प्रावार तथा पृथ्वी के सबसे भीतरी भाग क्रोड (Core) के बीच स्थित है। इस असांतत्य तल के नीचे P तरंगो के वेग में पुनः वृद्धि होती है जो 8.1 किलोमीटर प्रति सैकेण्ड से बढ कर पृथ्वी के केन्द्र अर्थात 6371 किलोमीटर की गहराई पर 11.3 किलोमीटर प्रति सैकेण्ड हो जाती है। इस तरह भूकम्पीय तरंगों के अध्ययन से पृथ्वी की गहराई में 2900 किलोमीटर से लेकर 6371 किलोमीटर (पृथ्वी के केन्द्र) तक क्रोड होने की जानकारी मिलती है। भूकम्पीय तरंगो के अध्ययन के आधार पर पृथ्वी की आंतरिक संरचना को भूपर्पटी, प्रावार तथा क्रोड में बांटा गया है।

भूपर्पटी

पृथ्वी का ऊपरी आवरण भूपर्पटी कहलाता है यह मोहोरोविसिक असांतत्य तल तक स्थित है। ठोस शैलों से निर्मित भूपर्पटी का ऊपरी भाग कम घनत्व वाले सिलिकेट खनिजों युक्त अधिसिलिक शैलों (मुख्यतः ग्रेनाइट) का बना है, **सिएल (SiAl)** कहलाता है वहीं निचला भाग अधिक घनत्व पाले सिलिकेट खनिजों युक्त अतिअल्प सिलिक शैलों (पेरिडोटाइट) का बना है, **सिमै (SiMa)** कहलाता है। भूपर्पटी की अधिकतम मोटाई 60 किलोमीटर व माध्य मोटाई 33 किलोमीटर मानी गई है।

प्रावार

भूपर्पटी के नीचे मोहोरोविसिक असांतत्य तल से लेकर गुटेनबर्ग असांतत्य तल तक स्थित अर्थात भूसतह से 33 किलोमीटर से 2900 किलोमीटर तक की गहराई में फैला हुआ भाग प्रावार कहलाता है। इस ठोस भाग में गहराई के साथ घनत्व की वृद्धि होती है तथा इसमें स्थित शैलों में लोह मैग्नीशियम खनिजों की प्रमुखता है। अधिकतर भूकम्पों की उत्पत्ति इसी भाग में होती है।

क्रोड

प्रावार के बाद गुटेनबर्ग असांतत्य तल के नीचे अर्थात पृथ्वी की सतह से 2900 किलोमीटर नीचे से लेकर पृथ्वी के केन्द्र अर्थात 6371 किलोमीटर की गहराई तक का भाग क्रोड कहलाता है। यह मुख्यतः निकल तथा लोह (Ni, Fe) धातु के सम्मिश्रण से बना हुआ है अतः इसे निफे भी कहते हैं। S तरंगो के क्रोड में गमन नहीं करने से प्रावार के बाद 2900 किलोमीटर से लेकर 4580 किलोमीटर तक क्रोड के बाह्य भाग के द्रवरूपी होने के प्रमाण है परन्तु क्रोड के करीब 1790 किलोमीटर आंतरिक भाग के ठोस होने के संकेत P तरंगों के वेग में वृद्धि होने से मिलते है (चित्र 2.6)।

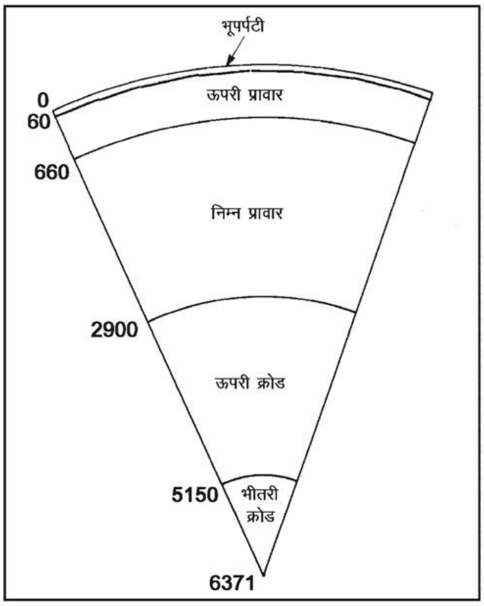

चित्र – 2.6 पृथ्वी की आन्तरिक संरचना

पृथ्वी की आकृति

पृथ्वी की आकृति एक गोलाभ (Spheroid) के समान मानी गई है। पृथ्वी के आकार को जीऑयड (Geoid) कहते हैं। जीऑयड (भूभाग) की सतह पर सभी जगह गुरूत्वाकर्षण बल सदैव ऊर्ध्वाधर होता है यही पृथ्वी के आकार की प्रमुख विशेषता है।

पृथ्वी की आयु

पृथ्वी की आयु निर्धारण में रेडियों ऐक्टिव या विघटननाभिक विधि के उपयोग से पृथ्वी की आयु 4 अरब 60 करोड़ वर्ष आंकलित की गई है। इस विधि के खोज से पूर्व पृथ्वी की आयु ज्ञात करने में पृथ्वी की शीतलन की दर, अवसादों के निक्षेपण की गति, महासागरों की लवणता के अनुसार तथा जीवाश्मीय प्रमाणों के अनुसार इत्यादि अन्य आधुनिक धारणाओं का उपयोग किया गया। प्राचीन धारणाओं में सन् ईस्वी के प्रायः एक हजार वर्ष पूर्व जोरास्टर ने पृथ्वी की आयु उस समय 12 हजार वर्ष बताई व इसके तीन हजार वर्ष ओर रहने की बात कही। 17 वीं शताब्दी में आयरलैण्ड के आर्क बिशप उश्हेर ने पृथ्वी की सृष्टि ईसा 4004 वर्ष पूर्व होना बताया अर्थात वर्तमान में पृथ्वी की आयु 6019 वर्ष की होती है। प्राचीन वैदिक व पौराणिक ग्रन्थों में भी पृथ्वी की आयु सम्बन्धी गणना की गई है। इस गणना के अनुसार 360 दिन का समय एक मानव वर्ष निर्धारित किया गया था तथा 360 मानव वर्ष का एक दैव वर्ष माना गया। इसके आधार पर चार युग के समय को एक महायुग मानकर सम्पूर्ण सृष्टि की अवधि का निर्धारण किया। इस गणना के आधार पर पृथ्वी की आयु 1 अरब, 97 करोड़, 29 लाख, 49 हजार, 69 मानव वर्ष आंकलित की गई।

पृथ्वी की आयु निर्धारण सम्बन्धी आधुनिक धारणाओं का वर्णन निम्न अनुसार है–

पृथ्वी की शीतलन की दर के अनुसार

लार्ड केल्विन (1897) ने पृथ्वी के ठोस पर्पटी के शुरूआती उच्च ताप का अनुमान लगाया व शीतलन की दर के आधार पर पृथ्वी की आयु 20–40 करोड़ वर्ष आकलित की। पृथ्वी के शीतलन की दर सर्वदा एक समान नहीं होने तथा भूपर्पटी में विद्यमान रेडियो एक्टिव तत्वों से उत्पन्न ताप के बारे में केल्विन को जानकारी नहीं थी अतः पृथ्वी की सही आयु का आकलन नहीं हो पाया।

अवसादों के निक्षेपण की गति के अनुसार

पृथ्वी पर निक्षेपित समस्त अवसादी शैलों की मोटाई तथा समुद्रों में अवसादन की गति का आकलन कर आर्किबाल्ड गीकि ने पृथ्वी की आयु 40 करोड़ वर्ष बताई। इसी विधि से अन्य वैज्ञानिकों यथा रीड ने 60 करोड़ वर्ष, गुडचाइल्ड ने 70 करोड़ वर्ष, सोलास ने 8 करोड़ वर्ष तथा शुचर्ट ने 50 करोड़. वर्ष भिन्न–भिन्न आयु आकलित की थी। सतत् अवसादन संभव नही रहा तथा अवसादन की दर भी सदैव एक समान नहीं रही एवं पूर्व में संचित अवसादों का अपरदन भी हुआ अतः अवसादी शैलों की कुल मोटाई का सही आकलन नहीं हो पाया जिसके फलस्वरूप इस विधि से भी पृथ्वी की आयु का सही आकलन संभव नहीं हो पाया।

महासागरों की लवणता के अनुसार

एडवर्ड हेली एवं जॉली ने महासागरों की लवणता के आधार पर पृथ्वी की आयु निर्धारण करने का प्रयास किया। महासागरों के जल में प्रारंभ में लवणता का अभाव था। समुद्र में नदियां अपने साथ मार्ग में आने वाले विभिन्न स्थानों में उपस्थित लवणों को जल में घोलकर साथ लेकर आती है तथा धीरे–धीरे हर वर्ष इकठ्ठे हुए लवणों की मात्रा सतत रूप से बढती जाती है। नदियां प्रति वर्ष करीब 40 करोड़ टन लवण समुद्र में जमा करती है। एफ. डब्ल्यू. क्लार्क (1923) ने समुद्रों के जल का आयतन (15×10^8घन मीटर), समुद्र के जल में उपस्थित लवण का प्रतिशत (3%), लवण का भार (4×10^{16}टन) तथा प्रतिवर्ष नदियों द्वारा समुद्र में जमा होने वाले लवण की मात्रा (4×10^8 टन) की गणना करते हुए पृथ्वी की आयु की गणना 10 करोड़ वर्ष ($4 \times 10^{16} / 4 \times 10^8$) आकलित की। समुद्रों में नदियों द्वारा लवण ले जाने की प्रक्रिया की शुरूआत होने से पूर्व जल वाष्प रूप में था और उसके जल में परिवर्तित होने में लगे समय का गणना में विचार नहीं किया गया तथा महासागरों में लवणता की वृद्धि दर भी सदैव एक समान नहीं रही अतः पृथ्वी की आयु का सही निर्धारण नहीं हो पाया।

जीवाश्मीय प्रमाणों के अनुसार

पृथ्वी पर प्रारंभिक जीव एक कोशिक व क्रमशः विकास के फलस्वरूप बहुकोशिक हुआ तथा समय के साथ जटिलता के रूपों में विकास क्रम के द्वारा लम्बी जैव विकास यात्रा तय कर मौजूदा जैव विविधता के स्वरूप में पहुँचा। पूर्व कैम्ब्रियन कल्प की शैलों में सुस्पष्ट जीवाश्मों का अभाव है परन्तु कैम्ब्रियन कल्प तथा उसके बाद के नवीन शैल समूहों में पर्याप्त मात्रा में जीवाश्म मिलते हैं जिनके अध्ययन से विकास क्रम की कड़ियों को जोड़कर जीवों की अधिकतम आयु निर्धारित करते हुए पृथ्वी की तुलनात्मक आयु निकाली गई है। जीव विकास की सम्पूर्ण अवधि करीब 300 करोड़ वर्ष आंकी जाती है तथा पृथ्वी की उत्पत्ति निश्चित तौर पर जीव उत्पत्ति से बहुत समय पूर्व हुई थी।

रेडियोंएक्टिव या विघटन नाभिक विधियों के अनुसार

पृथ्वी के भूपर्पटी की शैलों में रेडियोंएक्टिव तत्व मिलते हैं जिनका सतत् एवं स्वतः विघटन होता रहता है। ये तत्व अस्थायी होते हैं तथा निरंतर विघटित होते हैं। पृथ्वी की निरपेक्ष आयु ज्ञात करने में इनकी मदद उपयोगी साबित हुई है। इन तत्वों के स्वतः विघटन से एल्फा, बीटा तथा गामा किरणों के रूप में विकिरण निकलते हैं तथा मूल तत्व प्रति क्षण अन्य तत्वों में बदलते रहते हैं। रेडियोएक्टिव तत्वों का शेष उत्पाद सदैव सीसा (Lead) या इसके विभिन्न समस्थानिक (Isotopes) होते हैं। भूपर्पटी में यूरेनियम (U), रेडियम (Ra), थोरियम (Th), पोटेशियम (K) तथा इनके समस्थानिक मुख्यतः मिलते हैं। ये रेडियोंएक्टिव तत्व

समय के साथ स्वतः विघटित होते हैं तथा सीसा (Pb) एवं हीलियम (He) की उत्पत्ति होती है। रेडियोंएक्टिव तत्वों का तत्त्वान्तरण निम्नानुसार होता है–

$(U^{235} \longrightarrow Pb^{207}; U^{238} \longrightarrow Pb^{206}; Th^{232} \longrightarrow Pb^{208})$

रेडियोंएक्टिव तत्वों के विघटन की एक निश्चित गति होती है। रेडियोंएक्टिव तत्व के प्रत्येक परमाणु के नाभिक के अर्ध भाग के विघटन की अवधि अर्द्ध आयु (Half Life) कहलाती है। शैलों के अत्यन्त सावधानी से अतिसूक्ष्म विश्लेषण के अनुसार विघटनाभिकता से उत्पन्न सीसा एवं हीलियम की मात्रा तथा रेडियोएक्टिव तत्वों के अविघटित भागों की मात्रा ज्ञात की जा सकती है तथा इन्हीं तथ्यों के आधार पर शैलों की निरपेक्ष आयु आकलित की जाती है। शैलों की आयु निर्धारण में यूरेनियम–सीसा, पोटेशियम–आर्गन तथा रूबिडियम–स्ट्रांशियम विधियों का उपयोग किया जाता है। विशिष्ट रेडियोएक्टिव तत्वों के विघटन तत्व तथा अर्द्ध आयु की जानकारी तालिका क्रमांक–2.1 में दी गई है–

तालिका क्रमांक–2.1 रेडियोएक्टिव तत्वों के विघटन तत्व तथा इनकी अर्द्ध आयु

क्र.स.	जनक तत्व (Mother Element)	विघटन तत्व (Daughter Element)	अर्द्ध आयु (Half Life)
1.	U^{238}	Pb^{206} - 8 He^{4}	4.468×10^{9} वर्ष
2.	U^{235}	Pb^{207} - 7 He^{4}	0.704×10^{9} वर्ष
3.	Th^{232}	Pb^{208} - 6 He^{4}	1.405×10^{10} वर्ष
4.	Rb^{87}	Sr^{87}	4.92×10^{10} वर्ष
5.	K^{40}	Ar^{40} - Ca^{40}	1.27×10^{9} वर्ष
6.	C^{14}	N^{14}	5730 वर्ष

शैल नमूने की आयु का निर्धारण निम्न सूत्र द्वारा आकलित किया जाता है–

$$\text{शैल की आयु} = 3.323\ T \log_{10} \{1 + Nd / Np\}$$

यहाँ Nd = विघटन तत्व के परमाणुओं की संख्या,

Np = वर्तमान में जनक तत्व के परमाणुओं की संख्या तथा

T = जनक तत्व की अर्द्ध आयु है।

मॉस स्पेक्ट्रोमीटर के उपयोग से जनक तथा विघटन तत्वों की शैलों में उपस्थित मात्रा का सटीकता से मापन किया जाता है। जिरकॉन व स्फीन खनिजों में यूरेनियम–238, मस्कोवाइट, बायोटाइट, हार्नब्लेंड व ग्लूकोनाइट खनिजों में पोटेशियम 40 तथा मस्कोवाइट, बायोटाइट व माइक्रोक्लीन खनिजों में रूबिडियम 87 के मापन द्वारा शैलों की आयु की गणना (डेटिंग) की जाती है।

रेडियोएक्टिव विधि द्वारा पृथ्वी के प्राचीनतम शैलों की औसत आयु 350 करोड़ वर्ष आकलित की गई है तथा पृथ्वी की उत्पत्ति निश्चित तौर पर इन प्राचीन शैलों से कहीं अधिक समय पूर्व हुई होगी। उल्कापिण्डों से सीसे के अलगाव तथा इसकी रेडियोमेट्रिक डेटिंग से पृथ्वी की आयु 460 करोड़ वर्ष आंकी गई है।

महाद्वीपों एवं महासागरों का विवरण

महाद्वीप

पृथ्वी के प्रमुख सतही लक्षण महाद्वीप जमीन का विस्तृत फैलाव है जो पृथ्वी पर ही मौजूद अन्य प्रमुख लक्षण महासागरों से स्पष्ट रूप से अलग दिखाई देते हैं। स्पष्ट सीमाओं वाले धरती के विस्तृत क्षेत्र को महाद्वीप कहते हैं। पृथ्वी पर **सात महाद्वीप यथा एशिया, अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका, दक्षिण अमेरिका, यूरोप, आस्ट्रेलिया तथा अंटार्कटिका है (चित्र 2.7)।** पृथ्वी की कुल सतह के करीब एक चौथाई भाग तक इन महाद्वीपों का फैलाव है। सबसे बड़ा महाद्वीप एशिया करीब 4 करोड़ 40 लाख वर्ग किलोमीटर तक विस्तृत है जो पृथ्वी के कुल भू भाग का करीब 29.5 फीसदी है। क्षेत्रफल के हिसाब से एशिया के बाद दूसरे नम्बर पर अफ्रीका महाद्वीप है जिसका विस्तार 2 करोड़ 98 लाख वर्ग किलोमीटर तक है। यह पृथ्वी के भूभाग का 20 फीसदी है। अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका व दक्षिण अमेरिका महाद्वीपों की ज्यामितिय आकृति में एकरूपता दिखाई पड़ती है, ये तीनों महाद्वीप त्रिकोणाकार आकृति के हैं एवं इनकी नोक दक्षिण दिशा की ओर फैली हुई है। भारत प्रायद्वीप भी इनके साथ समरूपता प्रदर्शित करता है। अफ्रीका तथा दक्षिण अमेरिका महाद्वीपों के पृष्ठीय विन्यास तथा तटों में भी एकरूपता परिलक्षित होती है। सातों महाद्वीपों में दूरियों के बावजूद वनस्पति, पेड़–पौधे एवं जीव–जन्तुओं में भी काफी एकरूपता पायी जाती है। इनकी पुष्टि जीवाश्मों द्वारा भी होती है जो इन महाद्वीपों में पुराजलवायु समानता के भी संकेत करते हैं। इससे साबित होता है कि पूर्व काल में ये सभी महाद्वीप एक साथ थे तथा एक ही जलवायु कटिबन्ध में होने के कारण इनकी वनस्पति, पेड़–पौधे एवं जीव–जन्तुओं में एक समानता है। महाद्वीपों का यह सम्मिलित स्वरूप 'पेन्जिया' कहलाता है। कालान्तर में इसके विखण्डन व विस्थापन के फलस्वरूप ये महाद्वीप अपनी वर्तमान स्थिति में पहुँचे हैं।

एशिया

उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित एशिया, आकार और जनसंख्या की दृष्टि से विश्व का सबसे बड़ा महाद्वीप है। यह महाद्वीप भूमध्य सागर, अंध महासागर, आर्कटिक महासागर, प्रशान्त महासागर

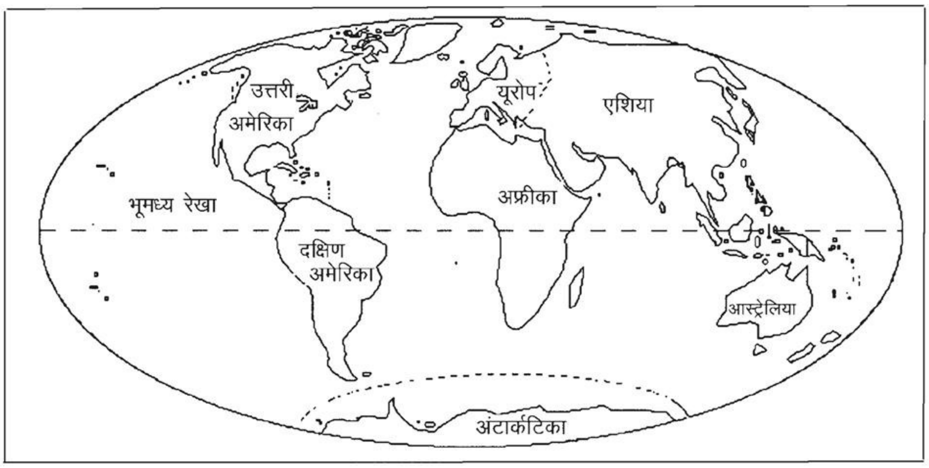

चित्र – 2.7 पृथ्वी पर महाद्वीपों का वितरण

एवं हिन्द महासागर से घिरा हुआ है। एशिया महाद्वीप अपने में कुछ विशाल रेगिस्तान, ऊंचे पर्वतो जिनमें सर्वाधिक ऊंची चोटी माउन्ट एवरेस्ट (8848 मीटर) शामिल है तथा कुछ सबसे लम्बी नदियों को समेटे हुए हैं। इसमें 47 देश सम्मिलित हैं।

अफ्रीका

विश्व की 15 फीसदी जनसंख्या धारक अफ्रीका महाद्वीप के उत्तर में भूमध्य सागर एवं यूरोप महाद्वीप, पश्चिम में अन्ध महासागर, पूर्व में अरब सागर तथा हिन्द महासागर है। महाद्वीप में विशाल मरूस्थल, अत्यन्त घने वन, विस्तृत घास के मैदान, बड़ी–बड़ी नदियां व झीलें हैं। मुख्य मध्याह्न रेखा (0^0) अफ्रीका महाद्वीप के घाना देश की राजधानी अक्रा शहर से होकर गुजरती है। इस महाद्वीप में सहारा मरूस्थल, किलिंमजारो पर्वत (5963 मीटर) तथा सुषुप्त ज्वालामुखी है तथा युगांडा, तंजानिया ओर केन्या की सीमा पर स्थित मीठे पानी की बड़ी झील विक्टोरिया है। अफ्रीका ऊंचे पठारों का महाद्वीप है। इसमें 54 देश सम्मिलित है।

उत्तरी अमेरिका

तीसरा सर्वाधिक बड़ा उत्तरी अमेरिका महाद्वीप करीब 2 करोड़ 47 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में विस्तारित है जो पृथ्वी के कुल भूभाग का करीब 16.5 फीसदी है। उत्तर में यह आर्कटिक महासागर, पूर्व में उत्तरी अंध महासागर, दक्षिण पूर्व में कैरेबियाई सागर और पश्चिम में उत्तरी प्रशान्त महासागर से घिरा हुआ है। उत्तरी अमेरिका की जलवायु और वनस्पति में विविधता पाई जाती है, विश्व की अधिकतर जलवायु के प्रकार यहां पाये जाते हैं। सर्वाधिक ऊंची चोटी मैक्निले (6194 मीटर) हैं। इसमें 23 देश सम्मिलित है।

उत्तरी अमेरिका भौगोलिक रूप में कनाडियाई शील्ड, अप्पालचियन, मैक्सिको की खाड़ी, भीतरी मैदानी क्षेत्र तथा अमेरिकी कोर्डिल्लेरा में विभक्त है। कोर्डिल्लेरा पर्वतों व नदी–घाटियों की एक जटिल श्रृंखला है जो अलास्का से लेकर मैक्सिको तक विस्तारित है तथा जिसके अन्तर्गत रॉकी पर्वत श्रेणी भी आती है।

दक्षिण अमेरिका

पश्चिम गोलार्द्ध का यह महाद्वीप विश्व का चौथा बड़ा महाद्वीप है तथा करीब 1 करोड़ 76 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में विस्तृत है। इसके उत्तर में कैरेबियाई सागर तथा पनामा नहर, पूर्व तथा उत्तर–पूर्व में अन्ध महासागर, पश्चिम में प्रशान्त महासागर तथा दक्षिण में अंटार्कटिक महासागर स्थित है। भूमध्य रेखा इस महाद्वीप के उत्तरी भाग से एवं मकर रेखा मध्य से गुजरती है, इस कारण इसका अधिकांश भाग उष्ण कटिबंध में पड़ता है। पनामा नहर इसे पनामा भूडमरूमध्य पर उत्तरी महाद्वीप से अलग करती है। इस महाद्वीप के समुद्री तट की लम्बाई 32 हजार किलोमीटर है। खनिज तथा प्राकृतिक सम्पदा से धनी इस महाद्वीप में विश्व की सबसे लम्बी पर्वत श्रेणी एण्डीज पर्वतमाला तथा सबसे ऊंची टीटीकाका झील है। भूमध्य रेखा के निकट पेरू देश में चिम्बोरेजो तथा कोटोपेक्सी नामक विश्व के सबसे ऊंचे ज्वालामुखी पर्वत (6096 मीटर) है। अमेजन, ओरीनिको, रियो डी ला प्लाटा यहाँ की प्रमुख नदियां है। इस महाद्वीप की सर्वाधिक ऊंची चोटी ऐकोनकागुआ (6959 मीटर) है। इस महाद्वीप में 12 देश सम्मिलित है। यह महाद्वीप पृथ्वी के भूभाग का करीब 12 फीसदी है।

यूरोप

यूरोप महाद्वीप एशिया से जुड़ा हुआ है तथा दोनों सम्मिलित रूप में यूरेशिया कहलाते हैं। यूरोप महाद्वीप करीब 97 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में विस्तारित है तथा पृथ्वी के कुल भूभाग का करीब 6.5 फीसदी है। एशिया से यूरोप का विभाजन इसके पूर्व में स्थित यूराल पर्वत के जल विभाजक यथा यूराल नदी, कैस्पियन सागर, कॉकस पर्वत श्रृंखला और दक्षिण–पश्चिम में स्थित काले सागर के द्वारा होता है। यूरोप के उत्तर में आर्कटिक महासागर और अन्य जल निकाय, पश्चिम में अटलांटिक महासागर, दक्षिण में भूमध्य सागर और दक्षिण–पश्चिम में काला सागर और इससे जुड़े जलमार्ग स्थित है। जनसंख्या के हिसाब से यूरोप एशिया व अफ्रीका के बाद तीसरा सबसे बड़ा आबादित तथा क्षेत्रफल के हिसाब से छठा बड़ा महाद्वीप है। यूरोप मुख्यतः शीतोष्ण जलवायु क्षेत्रों में से है। यूरोप में सर्वाधिक ऊंची चोटी माउण्ट इलब्रश (5633 मीटर) है। इस महाद्वीप में 50 देश सम्मिलित हैं।

आस्ट्रेलिया

यह एकमात्र ऐसी जगह है जिसे एक ही साथ महाद्वीप, एक राष्ट्र व एक द्वीप माना जाता है। यह दक्षिण गोलार्द्ध में स्थित है तथा करीब 77 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में विस्तारित हैं। यह पृथ्वी पर कुल भूभाग का करीब 5.2 फीसदी है। इसकी तटरेखा 34 हजार 218 किलोमीटर है। विशाल अवरोधक चट्टान, दुनिया का सबसे बड़ा मूंगा चट्टान, उत्तरी पूर्व तट से बहुत कम दूरी में स्थित है तथा 2 हजार किलोमीटर क्षेत्र में फैला है। पश्चिम ऑस्ट्रेलिया में दुनिया का सर्वाधिक बड़ा पत्थर का खम्भा 'मांउट अगस्टस' है। ऑस्ट्रेलिया के बड़े अर्धशुष्क भूमि भाग में मरूस्थल फैला हुआ है। क्षेत्रफल के लिहाज से यह सबसे छोटा महाद्वीप है।

अंटार्कटिका

पृथ्वी का दक्षिणतम महाद्वीप है, जिसमें दक्षिणी ध्रुव अंतर्निहित है। इसका क्षेत्रफल करीब 140 लाख वर्ग किलोमीटर है तथा पांचवा बड़ा महाद्वीप है। यह पृथ्वी के भूभाग का करीब 9.6 फीसदी है। यह चारो ओर से दक्षिणी महासागर से घिरा हुआ है। अंटार्कटिका का 98 फीसदी भाग औसतन 1.6 किलोमीटर मोटी बर्फ से आच्छादित है। यह विश्व का सबसे ठण्डा, शुष्क और तेज हवाओं वाला महाद्वीप है।

महासागर

पृथ्वी की सतह के कुल क्षेत्रफल के 71 फीसदी भाग में फैला खारे पानी का विशाल क्षेत्र जो 36.1 करोड़ वर्ग किलोमीटर में फैला है, महासागर कहलाता है। पृथ्वी के जल मण्डल का यह प्रमुख भाग जो महाद्वीपों के मध्य द्रोणियों में स्थित लवणीय जल वाले विशाल क्षेत्र को सम्मिलित किए हुए है। इनकी तुलना में अपेक्षाकृत कम विस्तारित लवण जलयुक्त भाग समुद्र या सागर कहलाते हैं, जो कि सदैव महासागर से सम्बद्ध रहते हैं। पृथ्वी पर उपलब्ध जल राशि का 97 फीसदी महासागरों में पाया जाता है तथा महासागरों की औसत गहराई करीब 3700 मीटर है तथा इनका कुल आयतन 320 मिलियन क्यूबिक मीटर है। पृथ्वी पर कुल पांच महासागर आकार में घटते क्रम में क्रमशः **प्रशान्त महासागर (Pacific Ocean), अंध महासागर (Atlantic Ocean), हिन्द महासागर (Indian Ocean), दक्षिण ध्रुवीय महासागर (Southern Ocean / Antarctic Ocean) तथा उत्तर ध्रुवीय महासागर (Arctic Ocean) है (चित्र 2.8)।**

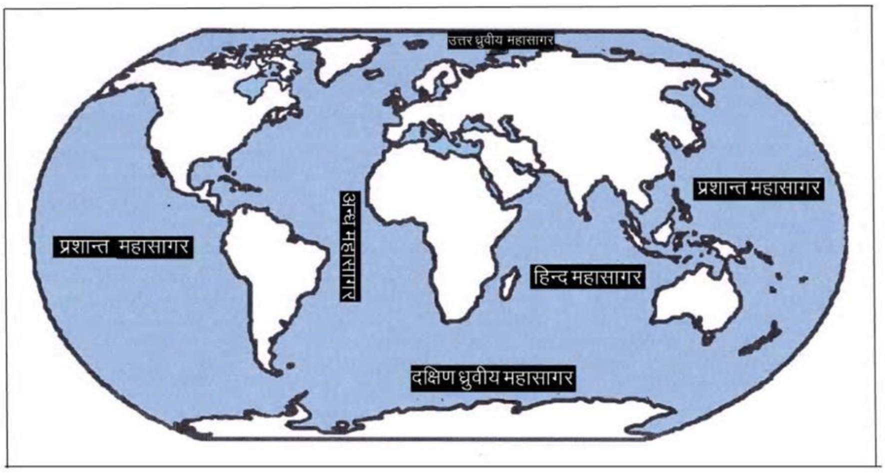

चित्र–2.8 पृथ्वी पर महासागरों का वितरण

प्रशान्त महासागर

यह विश्व का सर्वाधिक बड़ा तथा गहरा महासागर है जो एशिया और अमेरिका को अलग करता है। यह 16 करोड़ 87 लाख 23 हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में विस्तारित है (कुल महासागरीय क्षेत्र का 46.6 फीसदी)। यह फिलीपींस तट से लेकर पनामा तक करीब 15216 किलोमीटर चौड़ा तथा बेरिंग जलडमरू मध्य से लेकर दक्षिण अंटार्कटिका तक करीब 16885 किलोमीटर लम्बा है। प्रशान्त महासागर की औसत गहराई करीब 4267 मीटर है। प्रशान्त महासागर की आकृति त्रिभुजाकार है तथा इसके तल की आकृति जटिल है। इसके सीमान्त क्षेत्र में जलमग्न पर्वत श्रेणियां हैं जिनमें कई ज्वालामुखी पर्वत भी है। पृथ्वी की सर्वाधिक गहराई वाली खाई मेरिआना ट्रेंच प्रशान्त महासागर में स्थित है। जिसकी गहराई 11035 मीटर है।

अंध महासागर

यह महासागर यूरोप तथा अफ्रीका महाद्वीपों को नई दुनियां के महाद्वीपों से पृथक करता है एवं इसका आकार लगभग गणित के अंक 8 के समान है। यह 8 करोड़ 51 लाख 33 हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है तथा कुल महासागरीय क्षेत्र का 23.5 फीसदी है। इस महासागर की तली के मध्य भाग में एक विशाल जल मग्न पर्वत श्रेणी है जिसे मध्य अटलांटिक कटक कहते हैं। इस महासागर में सर्वाधिक गहरी पोर्टो रीको ट्रेंच की गहराई 8605 मीटर है।

हिन्द महासागर

यह पृथ्वी पर तीसरा सर्वाधिक बड़ा महासागर है तथा पृथ्वी की सतह पर उपस्थित कुल पानी का 20 फीसदी भाग इसमें समाहित है। उत्तर में यह भारतीय उप महाद्वीप से, पश्चिम में पूर्व अफ्रीका, पूर्व में हिन्दचीन, सुंदा द्वीप समूह व ऑस्ट्रेलिया तथा दक्षिण में दक्षिण ध्रुवीय महासागर से घिरा हुआ है। यह 7 करोड़ 5 लाख 60 हजार वर्ग किलोमीटर (महासागरों के कुल क्षेत्र का 19.5 फीसदी) क्षेत्र में फैला है। जावा ट्रेंच इस महासागर में सर्वाधिक गहराई (7125 मीटर) वाली खाई है।

दक्षिण ध्रुवीय महासागर

इसे दक्षिण महासागर या अंटार्कटिक महासागर भी कहते हैं। यह 2 करोड़ 19 लाख 60 हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है, यह महासागरों के कुल क्षेत्र का 6.1 फीसदी है। कुछ भूगोलवेत्ता इसे दक्षिणी प्रशान्त महासागर, दक्षिणी अटलांटिक महासागर या हिन्द महासागर का दक्षिणी हिस्सा मानते है। इस महासागर में अनेक प्लावी हिमशैल (आइसबर्ग) तैरते रहते हैं।

उत्तर ध्रुवीय महासागर

इसे आर्कटिक महासागर भी कहते हैं, यह पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है। पांच महासागरों में सबसे छोटे इस महासागर का फैलाव 1 करोड़ 55 लाख 58 हजार वर्ग किलोमीटर (महासागरों के कुल क्षेत्र का 4.3 फीसदी) क्षेत्र में है। लगभग पूरी तरह से यूरेशिया और उत्तरी अमेरिका से घिरा यह महासागर सर्दियों में पूर्ण रूपेण तथा साल के अन्य समयावधि में आंशिक रूप से समुद्री बर्फ से आच्छादित रहता है। इस महासागर की औसत लवणता सबसे कम है।

पर्वतों के प्रकार एवं उत्पत्ति

पर्वत महाद्वीपों के मुख्य लक्षण है तथा स्थलाकृति का एक महत्वपूर्ण आकर्षित करने वाला अभिलक्षण है। भूवैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण पर्वत धरातल के वे भाग हैं जो आसपास के क्षेत्रों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक उत्थान लिए होते हैं। छोटे पर्वत 'पहाड़' कहलाते हैं, सामान्यतः इनकी ऊंचाई 300 मीटर से कम होती है। लम्बे व संकरे पर्वत 'कटक' (Ridge) कहलाते हैं, तथा कटकों का समूह 'पर्वत श्रेणी' (Mountain Range) कहलाती है, इनका निर्माण एक ही समय में एक ही प्रक्रम द्वारा होता है। दो या अधिक पर्वत श्रेणियॉं एक ही समय व एक ही क्षेत्र में उत्पन्न होती है तो इन्हें 'पर्वत समूह' (Mountain System) कहते हैं। हिमालय पर्वत समूह तथा रॉकी पर्वत समूह इनके उदाहरण है। वहीं दूसरी ओर पर्वत श्रेणियॉं या समूह एक ही अथवा विभिन्न काल में तथा एक ही या अनेक प्रक्रमों के फलस्वरूप निर्मित होते हैं एवं सामान्यतः समान्तर होते हैं तो पर्वत माला' (Mountain Chain) (उदाहरणस्वरूप – अरावली पर्वत माला) कहलाते हैं। महाद्वीप के किसी भाग विशेष में पर्वत मालाएँ, पर्वत समूहों तथा पर्वत श्रेणियों के संयुक्त रूप में उपस्थिति होने पर इन्हें कार्डीलेरा (Cordillera) कहते हैं। महाद्वीप के विशाल क्षेत्र में फैले इनकी आयु भिन्न–भिन्न होती है। उत्तर दक्षिण अमेरिका के पश्चिमी तट में उत्तर से दक्षिण तक विस्तृत रॉकी, एण्डीज इत्यादि सभी पर्वत समूह तथा पर्वतमालाओं को सम्मिलित स्वरूप में ''अमेरिकी कार्डीलेरा''इसका उदाहरण है। पर्वतों का यह वर्गीकरण भौगोलिक व्यवस्था तथा विस्तार के आधार पर किया गया है।

आयु के आधार पर पर्वतों को चार प्रकार में बांटा गया है तथा यह वर्गीकरण पर्वत निर्माण के लिए जिम्मेवार पर्वत निर्माणकारी हलचलों (Orogenic Movement) पर आधारित है। करीब 55–60 करोड़ वर्ष पूर्व कैम्ब्रियन तथा प्राक–कैम्ब्रियन कल्प में हुई हलचल को चर्नियन पर्वतन (Chernian Orogensis) कहते हैं। इसके फलस्वरूप दिल्ली, कडप्पा व धारवाड़ क्रम के पर्वतों का निर्माण हुआ। करीब 39–49 करोड़ वर्ष पूर्व आर्डोविशन से डिवोनी के प्रारम्भिक काल में कैलिडोनियन पर्वतन (Caledonian Orogenesis) हुई। स्कॉटलैण्ड पर्वत, स्कैण्डेनेविया पर्वत तथा अपलेशियन पर्वत, अरावली पर्वत तथा सतपुड़ा पर्वत इसी कोटि में है। करीब 25–30 करोड़ वर्ष पूर्व के करीब कार्बनी–परमियन कल्प में हरसीनियन पर्वतन (Hercynian Orogenesis) के दौरान

पीनाइन, हार्ज, वास्जेज एवं ब्लैक फारेस्ट और मध्य एशिया के पर्वतों की रचना हुई। इस पर्वत को आरमोरिकन (Armorican), अप्लेशियन (Appalachian) या अल्टाइड (Altoid) नाम से भी पुकारते हैं। 6 करोड़ वर्ष पूर्व मध्यनूतन युग में प्रारम्भ हुए अल्पाइन पर्वतन के दौरान हिमालय, आलप्स, रॉकी इत्यादि पर्वत नवजीव महाकल्प में निर्मित हुए।

पर्वतों के प्रकार

पर्वतों की उत्पत्ति के आधार पर इन्हें निम्न चार प्रकार में बांटा गया है–

ज्वालामुखीय या संचयन पर्वत (Volcanic or Accumulation Type): ज्वालामुखी उद्गार से निकले हुए लावा तथा ज्वालामुखक्षिप्त पदार्थों के संचयन से इन पर्वतों का निर्माण होता है। ये शंकु आकार के ऊंचे टीले होते हैं। विसुवियस, एटना, मौनालोआ, किलिमन्जारो, कोटोपैक्सी व कास्केड इनके उदाहरण है।

गुम्बदाकार पर्वत (Dome Mountain): पृथ्वी की सतह के नीचे आग्नेय क्रिया में मैग्मा भूपर्पटी के ऊपरी भाग को अपने वेग व दबाव से ऊपर की ओर गुम्बद आकार में उठा देता है, ऐसे पर्वत निर्माण सामान्यतः कम ऊंचाई के होते हैं तथा इन्हें लैकोलिथी पर्वत भी कहते हैं। अमेरिका के दक्षिण उटाह, कोलोरेडो वियोनिंग तथा दक्षिणी डकोटा ऐसे पर्वतों के उदाहरण है।

अवशिष्ट पर्वत (Relict Mountain): भेददर्शी अपरदन के फलस्वरूप पठारों व अन्य ऊंचाई वाले क्षेत्रों में अप्रतिरोधी शैलों का तीव्रता से अपरदन हो जाता है व गहरी घाटियां बन जाती है परन्तु इसी क्षेत्र में प्रतिरोधी शैल कम अपरदन के कारण ऊंचे पर्वतों के रूप में निर्मित होते हैं तथा अवशिष्ट पर्वत कहलाते हैं। एरिजोना के ग्रेण्ड केनियन, भारत में विन्ध्यन पर्वत तथा पश्चिम घाट के पर्वत इनके उदाहरण है (चित्र 2.9)।

विरूपणीय या विवर्तनिक पर्वत (Deformational or Tectonic Mountain): भूपर्पटी में विवर्तनिक हलचलों के कारण पृथ्वी पर अधिकांश निर्मित विशाल पर्वत मालाएं विवर्तनिक पर्वत कहलाते हैं, इनके निर्माण में वलन (fold) एवं भ्रंश (fault) का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। वलन के कारण वलित पर्वत का निर्माण होता है। इनके उदाहरण आल्प्स, हिमालय, रॉकी व एण्डीज इत्यादि हैं। वलन प्रक्रिया से पर्वत निर्माण के अलावा पटल विरूपण के फलस्वरूप शैल संस्तरों में विशाल भ्रंशन के कारण भूखण्ड विस्थापित हो जाते हैं तथा उत्खण्ड भ्रंशन (horst faulting) के कारण ऊपर उठे भाग पर्वत का निर्माण करते हैं जिन्हें भ्रंशोत्थ पर्वत कहते हैं। दो भ्रंशोत्थ पर्वतों के बीच का धंसा भाग द्रोणिका कहलाता हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के दक्षिण आरेगान, पूर्वी कैलिफोर्निया में भ्रंशोत्थ पर्वतों के उदाहरण है (चित्र 2.10)।

पर्वतों की उत्पत्ति

पर्वत निर्माण के संबंध में दो प्रकार की विचारधाराएं है। संकुचन विचार के समर्थक डाना, कोबर, स्वेस व चेम्बरलिन तथा महाद्वीपीय प्रवाह विचारधारा के समर्थक डेली, वेगनर, होम्स व जोली है।

वलित पर्वतों के निर्माण प्रक्रिया में छिछले समुद्री अवसादों के भूअभिनति में जमाव (हजारों मीटर की मोटाई तक) के कारण इसके तल पर बढते दबाव के फलस्वरूप अवतलन प्रक्रिया तथा क्रमशः भूअभिनति के दोनों किनारों के समीप हो आने से अवसादों के विरूद्ध दिशाओं में विवर्तनिक बल प्रयुक्त होते हैं। फलतः स्तरीत अवसादों का वलित होने के साथ–साथ उत्थान भी होता है और वलन, भ्रंशन एवं क्षेपण की क्रियाओं से वलित पर्वतों की उत्पत्ति होती है। इस प्रक्रिया के साथ भूसंकुचन भी होता है। साथ ही अपरदन की प्रक्रिया भी प्रारंभ हो जाती है व क्रमागत

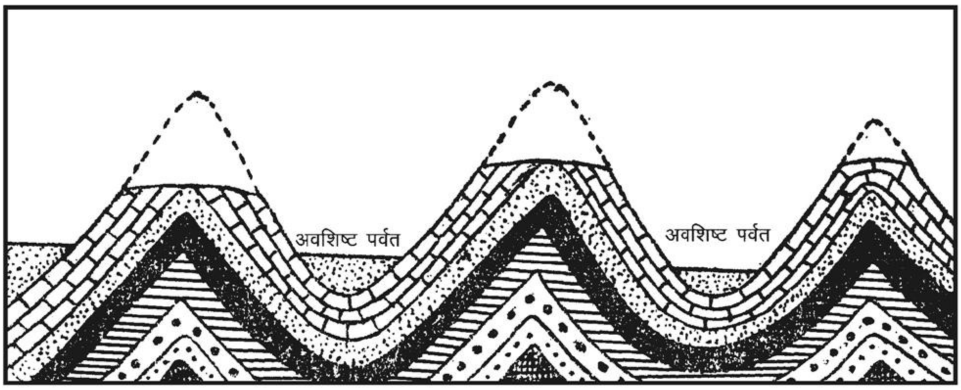

चित्र–2.9 अवशिष्ट पर्वतों की निर्माण प्रक्रिया

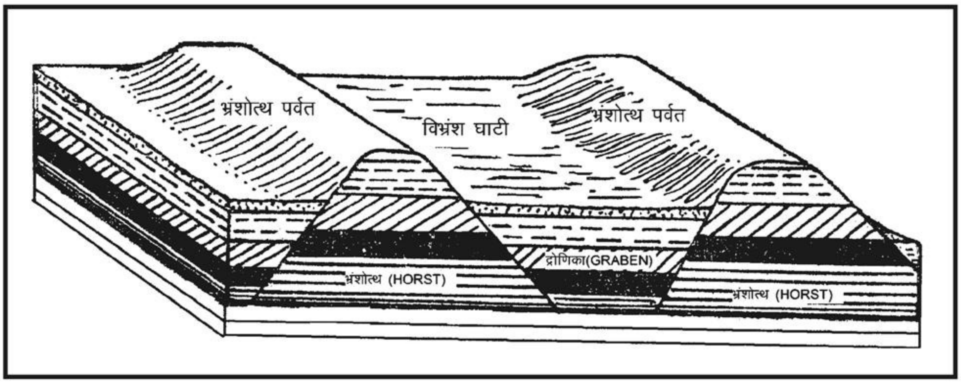

चित्र–2.10 भ्रंशोत्थ पर्वतों की निर्माण प्रक्रिया

अपरदन से पूर्व निर्मित पर्वतों का स्वरूप बदलता रहता है तथा अपरदित पदार्थों का समुद्र की कम गहराई में निक्षेपण होता है। लगातार अपरदन से पुराने पर्वत सम्पूर्ण अपरदित हो जाते है वहीं दूसरी ओर तटीय भू अभिनति में लगातार अवसादों के निक्षेपण से पुनः पर्वतों की उत्पत्ति का प्रक्रम क्रियान्वित होता है तथा इस तरह पर्वत रचना का चक्र निरन्तर चलता रहता है (चित्र 2.11)।

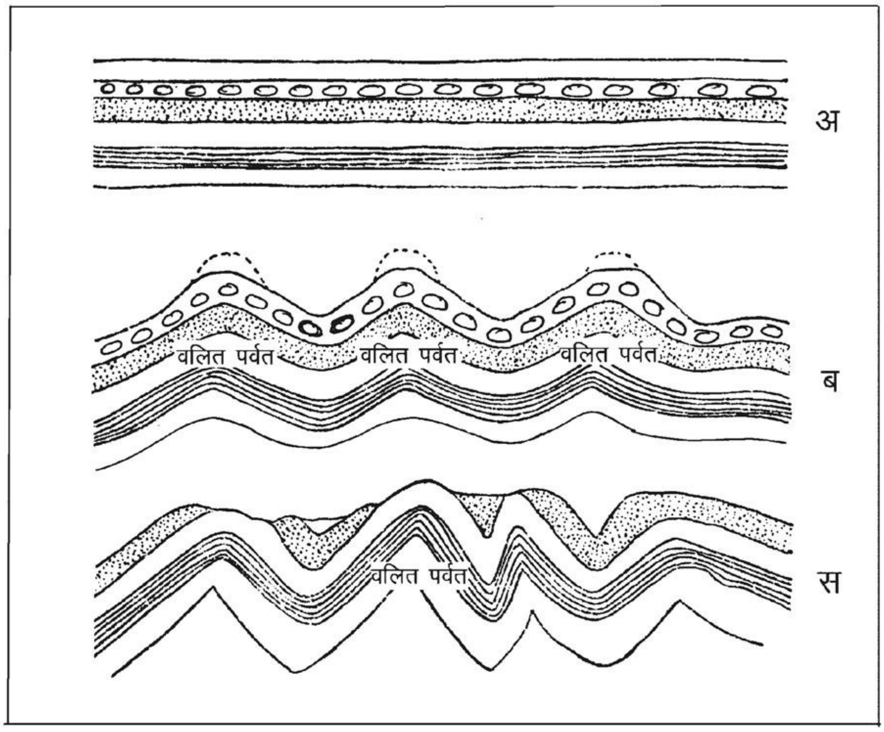

चित्र–2.11 वलित पर्वतों की निर्माण प्रक्रिया

पर्वतों की उत्पत्ति को समझाने हेतु निम्नलिखित परिकल्पनाएं प्रस्तुत की गई है–

1. कोबर की भूअभिनतीय पर्वतन परिकल्पना
2. जैफ्रे की तापीय संकुचन परिकल्पना
3. डेली की महाद्वीपीय सर्पण परिकल्पना
4. होम्स की संवहन धारा परिकल्पना
5. जॉली की तापीय चक्र परिकल्पना
6. महाद्वीपीय विस्थापन परिकल्पना

कोबर की भूअभिनतीय पर्वतन परिकल्पना– कोबर के अनुसार पृथ्वी की उत्पत्ति के बाद वह शीतल हो रही है। कोबर की परिकल्पना का आधार दृढ़ भूमि या पठार का सम्बन्ध गतिमान क्षेत्र या भूअभिनति से है। कोबर के अनुसार वलित पर्वत निर्मित करने वाले अवसादों का निक्षेपण भूअभिनतियों में हुआ। भूअभिनतियों में अवसादों के निक्षेपण होने के पश्चात इन पर दोनों ओर से दबाव पड़ने के कारण संपीडित बल क्रियाशील रहे। अग्र भूमि अर्थात दोनों पार्श्वों से बल लगने के फलस्वरूप अवसाद संदलित होकर वलित हो गए। वलन के कारण अग्रभूमि के सीमान्त क्षेत्र पर सीमान्त पर्वत श्रेणियां निर्मित हो गई। तीव्र संपीडित बल क्रियाशील होने पर दोनों अग्रभूमियां एक दूसरे के निकट आ गई तथा दोनों सीमान्त श्रेणियों में जटिल वलन संरचनाओं का निर्माण हुआ। इसके विपरीत सुयेस ने बताया कि एक अग्रभूमि केवल एक पार्श्व से ही अवसादों के वलित होने से बनी तथा इस अग्रभूमि के सामने भूअभिनति पर दबाव पड़ने के कारण वलित पर्वतों की उत्पत्ति हुई (चित्र 2.12)।

कोबर की परिकल्पना के सिद्धांत अनुसार हिमालय पर्वत की उत्पत्ति दक्षिण डेक्कन पठार व उत्तर में तिब्बत के पठार रूपी दृढ़ भूमियों का इनके बीच स्थित टेथिस सागर में निक्षेपित अवसादों पर दबाव क्रियाशील होने के फलस्वरूप हुई । निक्षेपित अवसाद वलित हुए तथा इनके उत्थान से हिमालय पर्वत की उत्पत्ति हुई तथा हिमालय के सामने विशाल सिंधु – गंगा के मैदान निर्मित हुए (चित्र 2.13)।

जैफ्रे की तापीय संकुचन परिकल्पना– जैफ्रे के अनुसार पृथ्वी विभिन्न संघटन के संकेन्द्री स्तरों से बनी है जो अलग–अलग मात्रा में शीतल हुए। भूसतह से 700 किलोमीटर की गहराई तक प्रत्येक स्तर अपने नीचे वाले स्तर से अधिक ठंडे हुए परन्तु इसके नीचे अर्थात 700 किलोमीटर से पृथ्वी के केन्द्र तक तापमान में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। स्तर ठंडे होने पर सिकुड़ते हैं। बाह्य स्तर के नीचे स्थित स्तर के ठंडे होने पर संकुचन तथा बाह्य स्तर के अधिक आयतन के फलस्वरूप बाह्य पर्पटी पर संपीडन से वह संदलित हो जाती है। शैलों में संकुचन के कारण संपीडन तब तक होता है जब तक कि उसमें आमोटन तथा वलन नहीं हो जाता। इस परिकल्पना के सिद्धांत से पृथ्वी के इतिहास में हुए 5 पर्वतन काल पूरी तरह नहीं समझाये जा सकते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार छोटे छोटे वलन तो निर्मित हो सकते हैं परन्तु बड़े वलित पर्वत निर्मित नहीं हो सकते।

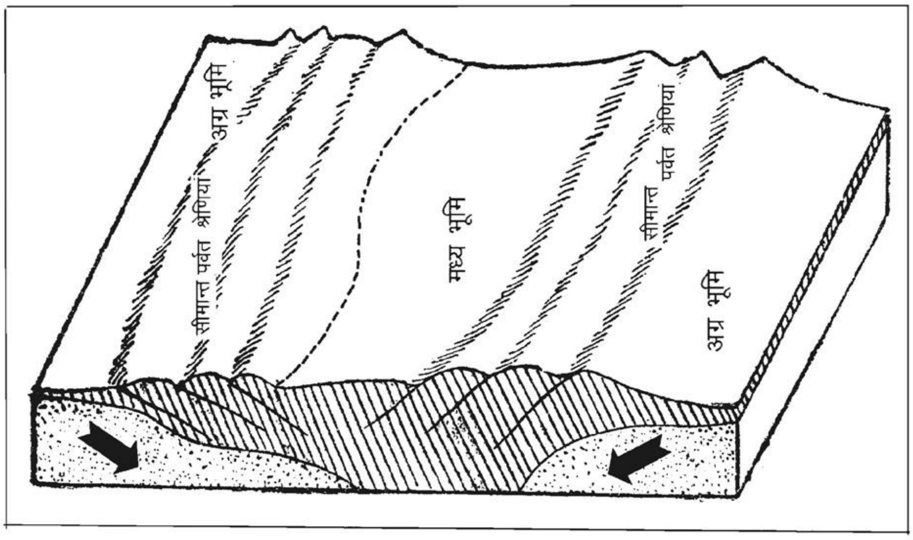

चित्र–2.12 कोबर की भूअभिनिति पर्वतन परिकल्पना प्रक्रिया

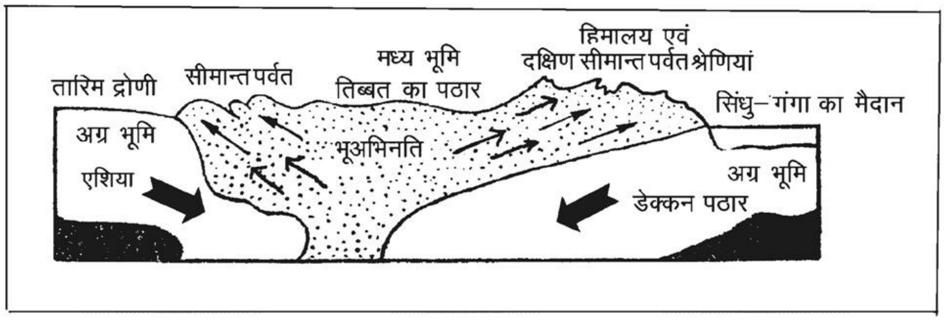

चित्र–2.13 कोबर की भूअभिनिति पर्वतन परिकल्पना अनुसार हिमालय पर्वत की उत्पत्ति

डेली की महाद्वीपीय सर्पण परिकल्पना– डेली की परिकल्पना के अनुसार गुरूत्वाकर्षण के कारण महाद्वीपीय भाग नीचे की ओर खिसक गये। शीतलन की दर में विभिन्न स्तरों में भिन्न–भिन्न होने के फलस्वरूप संकुचन व आयतन परिवर्तन के कारण बाह्य भूपर्पटी आंतरिक स्तरों में आसंजित नहीं हो पाई। बाह्य पर्पटी अपने ऊपर महासागर के जल व भूअभिनति में जमा हुए अवसाद के भार के कारण निपतित हो गई। इन क्षेत्रों में नीचे की ओर लगने वाले दबाव के कारण महाद्वीपों में पार्श्विक दबाव निर्मित हुआ। ये पार्श्विक दबाव, महाद्वीपों को स्थायित्व देने में सहायक थे जिसके कारण अधिक चपटे गुम्बदों का निर्माण हुआ। गुम्बदों की आकार वृद्धि व भूअभिनति में उपस्थित अवसाद पर बढ़ते दबाव के कारण भूअभिनति विभंजित हो गई। गुम्बद का अधिकांश भाग समाप्त हो गया व उसमें अधिक शक्ति का संपीडित संचलन निर्मित हुआ जिसके परिणामस्वरूप महाद्वीप की आकृति के बड़े भूखण्ड का भूअभिनति की ओर धीरे–धीरे सर्पण हुआ। इसके कारण भूअभिनति के अवसाद दोनों ओर से दबाव के कारण वलित हो गये। इस प्रकार वलित पर्वत श्रेणी के निर्माण की यह प्रथम अवस्था है।

डेली के मतानुसार अधः स्तर गर्म कांचाभ बेसाल्ट का है तथा बाह्य भूपर्पटी की अपेक्षा कम घना है। भूपर्पटी के विभंजित होने के बाद भूपर्पटी का वह भाग जो नीचे की ओर खिसका, टूटकर अधः स्तर में डूब गया। भूपर्पटी के टूटने से अधः स्तर का पदार्थ अभिनति के अन्दर प्रवेश कर गया तथा इसके कारण महाद्वीप के टूटे हुए भाग का आगे सर्पण आसान हो गया। सर्पण की अधिकता पर भूअभिनति के अवसादों पर दोनों ओर से अधिक दबाव पड़ेगा तथा अधिक वलित पर्वतों का निर्माण होगा (चित्र 2.14)।

होम्स की संवहन धारा परिकल्पना– यह परिकल्पना रेडियोधर्मिता (विघटन नाभिकता) पर आधारित है। भूपर्पटी में रेडियोधर्मी तत्व मौजूद है जो विघटित होकर ताप का विसर्जन करते हैं। शैलों में इनकी मात्रा में भिन्न–भिन्न होने के कारण ताप विसर्जन में भी विभिन्नता होती है तथा तापान्तर के कारण अधः

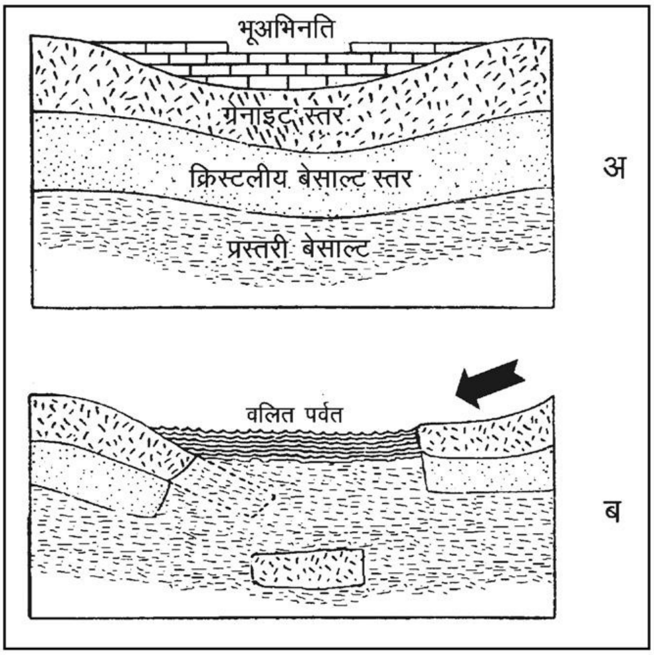

चित्र–2.14 डेली की महाद्वीपीय सर्पण परिकल्पना प्रक्रिया

स्तर में संवहन धाराएं निर्मित होती है, जो अधिक ताप से कम ताप की प्रवाहित होती है। दो आरोही संवहन धाराएं आपस में मिलती है एवं एक दूसरे के विरूद्ध दिशाओं में घूम जाती है तब भूपर्पटी पर तनाव पैदा होता है जिससे पर्पटी खण्डित होकर एक दूसरे से दूर चले जाते है। इसी प्रकार दो अवरोधी धाराएं मिलकर फिर नीचे की ओर घूम जाती है तब भूपर्पटी पर सम्पीडन बल प्रयुक्त होता है एवं उस भाग पर अधोमुखी कर्षण प्रतिपादित होता है। प्रवाह धारा चक्र के प्रथम सोपान में धाराओं के धीरे–धीरे प्रवाहित होने से अधोमुखी कर्षण के कारण भूअभिनति का निर्माण व उसमें अवसादों का निक्षेपण होता है। द्वितीय सोपान में संवहन धाराओं की गति में वृद्धि होने से संपीडन बल के कारण अवसादों का वलन होता है, इसके साथ ही आग्नेय सक्रियता भी होती है। प्रवाह धारा चक्र के तीसरे सोपान में वलित अवसादों का पर्वत श्रेणी में उत्थान होता है तथा चौथे सोपान में धाराओं की समाप्ति के साथ ही पर्वतन चक्र समाप्त हो जाता है (चित्र 2.15)।

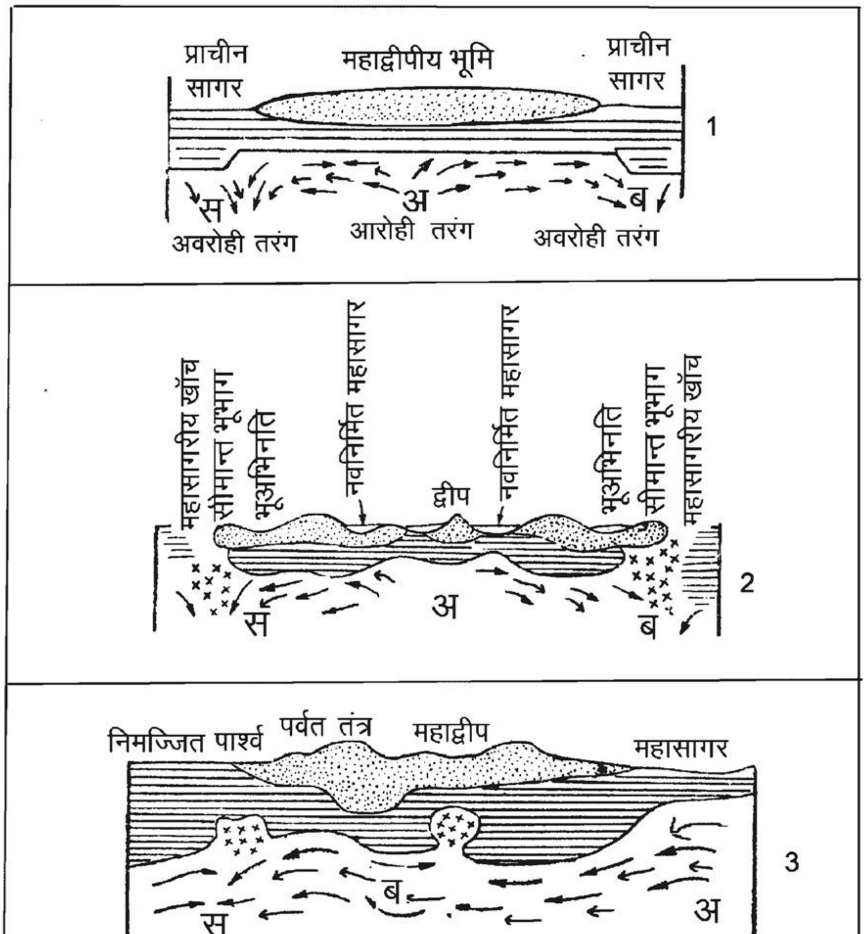

चित्र–2.15 होम्स की संवहन धारा परिकल्पना प्रक्रिया

जॉली की तापीय चक्र परिकल्पना– इस परिकल्पना में महाद्वीप के 'सिएल' व महासागर के 'सीमै' में रेडियोएक्टिव तत्वों के विघटन से ताप उत्सर्जन के साथ इन दोनों के पिघलने व ठोस होने की प्रक्रिया के साथ पर्वत निर्माण को समझाने का प्रयास किया गया। 'सिएल' अपने से नीचे स्थित स्तर 'सीमै' पर तैरता है तथा इनके गलनांक क्रमशः 1050 तथा 1150 डिग्री सेंटीग्रेड होता है। 'सीमै' के द्रवित होते ही सिएल इसमें डूबने लगता है जिसके फलस्वरूप महासागर थल की ओर आ जाएगा और महाद्वीप सीमान्त का महासागर द्वारा अतिक्रमण होगा तथा इस प्रकार भूअभिनति निर्मित होगी व इसमें निक्षेपण होने लगेगा। कुछ समयावधि उपरान्त 'सीमै' तापक्रम में कमी होने पर पुनः ठोस हो जाएगा तथा 'सिएल' ऊंचा उठकर पुनः पूर्व स्थिति में आ जाएगा जिसके फलस्वरूप महाद्वीप के सीमान्त से महासागर पीछे चला जाएगा व समुद्र का प्रतिक्रमण हो जाएगा। 'सीमै' के ठण्डे होने से पुनः ठोस रूप में परिवर्तन से उसमें संकुचन होता है तथा संकुचन से संपीडन बल निर्मित होते हैं। यह बल भूअभिनति में निक्षेपित अवसादों पर दो विपरित दिशाओं पर कार्यरत होने से उनमें वलन कर देता है तथा इस प्रकार वलित पर्वतों का निर्माण हो जाता है। इस पूरे प्रक्रम की 30 हजार वर्ष के पश्चात पुनरावृति होती है अतः पर्वतों का निर्माण भी इसी अवधि बाद पुनरावृत्त होना चाहिए परन्तु यथार्थ में पर्वत रचना अविरत प्रक्रम हैं।

महाद्वीपीय विस्थापन परिकल्पना– महाद्वीपीय विस्थापन के सिद्धांत के आधार पर पर्वतों की उत्पत्ति को समझाने का प्रयास किया गया। इसके अनुसार प्रारम्भ में पृथ्वी पर एक ही विस्तृत भूभाग था जो कालान्तर में कई भागों में खण्डित होकर विस्थापित हुआ तथा ये खण्डित भूभाग वर्तमान भूभाग के रूप में मौजूद है। इन भूभागों के बीच में स्थित भूअभिनतियों में अवसादन जारी रहा। भूखण्डों के खिसकने से भूअभिनतियों में निक्षेपित हो रहे अवसादों पर दबाव पड़ने से संपीडन बल के कारण वे वलित हो गए तथा इस प्रकार वलित पर्वतों की उत्पत्ति हुई। इस आधार पर भारत के उत्तर पूर्व की ओर विस्थापन होने से टैथिस महासागर में निक्षेपित अवसादों के वलित होने से हिमालय पर्वत की उत्पत्ति हुई है।

भारत के भू आकृतिक अवयव

भारत की भू आकृतिक संरचनाओं में विविधता पाई जाती है। भारत के उत्तर में नवीन गगनचुम्बी पर्वतमालाएं, मध्य में विशाल समतल मैदान तथा दक्षिण में अति प्राचीन कठोर शैलों के पठार है तथा पूर्व व पश्चिम में तटीय मैदान और द्वीप समूह है। भारत के कुल क्षेत्रफल का 10.7 फीसदी भाग पर्वतीय, 18.6 फीसदी भाग पहाड़ी, 27.7 फीसदी भाग पठारी तथा शेष 43 फीसदी भाग मैदानी है।

प्राकृतिक संरचना के अध्ययन हेतु भारतीय उप महाद्वीप (भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका व म्यंमार इत्यादि देश सहित) के प्राकृतिक रचनाओं का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। प्राकृतिक संरचना के आधार पर भारतीय उप महाद्वीप को तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है–

1. प्रायद्वीपेतर भाग
2. सिंधु–गंगा का मैदानी भाग
3. प्रायद्वीपीय भाग

प्रायद्वीपेतर भाग

प्रायद्वीपेतर भाग में हिमालय पर्वतमाला तथा बर्मा (म्यंमार) एवं बलूचिस्तान के चाप सम्मिलित है। इनका निर्माण तृतीय महाकल्प में टेथिस भू अभिनति के निक्षेपों के पर्वतन क्रिया के फलस्वरूप हुआ। प्रायद्वीपेतर भाग में हिमालय पर्वत और इसके पूर्वी व पश्चिमोत्तर भाग में विस्तृत पर्वतमालाएं सम्मिलित हैं।

हिमालय पर्वतमाला पूर्व से पश्चिम की ओर फैली हुई है तथा अनेक समानान्तर पर्वत श्रेणियों से निर्मित है। हिमालय चार प्रमुख श्रेणियों से बना है। शिवालिक पर्वतमालाएं दक्षिण भाग में मैदानी क्षेत्र से लगी हुई है तथा 8 से 50 किलोमीटर तक चौड़ी है एवं इनकी ऊंचाई 600 से 1800 मीटर तक है। हिमाचल श्रेणियां शिवालिक श्रेणी के उत्तर में स्थित है तथा 65 से 80 किलोमीटर तक चौड़ी है। इनमें पीर पंजाल, धोलाधर इत्यादि प्रमुख है। इन श्रेणियों की ऊंचाई 3750 से 4500 मीटर तक है। हिमाद्रि हिमाचल के उत्तर में मैदानी भाग से लगभग 140 किलोमीटर दूर पश्चिम में नंगा पर्वत से पूर्व में नामचा वर्वा तक फैला है। 6000 मीटर से ज्यादा ऊंचाई वाले इस भाग की चौड़ाई 130 से 150 किलोमीटर तक है। इसकी चोटियां हिम आच्छादित है। इसके मध्य भाग में ग्रेनाइटी शैल तथा दोनों ओर कायान्तरित शैलों की पट्टियां है। हिमाद्री का दक्षिणी ढाल ज्यादा है वहीं उत्तर की ओर हल्के ढाल के बाद समानान्तर घाटियां है, जिनमें से प्रमुख नदियां बहती है। तिब्बती हिमालय हिमाद्री के उत्तर में स्थित है तथा दक्षिण एवं मध्य एशिया के जल विभाजक का कार्य करता है। इसकी चोटियां 6000 मीटर से अधिक ऊंचाई की है। इस भाग की जान्सकर, लद्दाख, कैलाश पर्वत, काराकोरम पर्वतमालाएं प्रमुख है। इस भाग में अनेक हिमनद पाए जाते हैं तथा हिमालय क्षेत्र की अनेक प्रमुख नदियां इससे निकलकर दक्षिण की ओर जाती है। विश्व की 8000 मीटर से ज्यादा ऊंची 14 चोटियों में से 12 निम्न चोटियां हिमालय क्षेत्र में स्थित है–

1. माउण्ट एवरेस्ट (8848 मीटर)
2. के–2 (8611 मीटर)
3. कंचनजंगा (8598 मीटर)
4. मकालू (8481 मीटर)

5. धोलागिरी (8172 मीटर)
6. मनासलू (8156 मीटर)
7. चो. आउ (8153 मीटर)
8. अन्नपूर्णा (8078 मीटर)
9. हिडेन पीक (8068 मीटर)
10. ब्राड पीक (8047 मीटर)
11. गशेब्रम II (8035 मीटर)
12. गोसाईनाथ (8013 मीटर)

हिमालय पर्वतमाला का भौगोलिक विस्तार पूर्व में उत्तरी असम से बह्मपुत्र के विशाल दोहरे मोड़ से लेकर पश्चिम में सिंधु नदी के मोड़ तक है।

बलूचिस्तान चाप कश्मीर से हजारा, पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत, सिन्ध व बलूचिस्तान से होता हुआ पश्चिम में ईरान की ओर अनेक पर्वतमालाओं से मिलकर बनी एक मिश्रित चाप है। इसमें चार प्रमुख पर्वत श्रृंखलाएं हैं–

1. पोत्वार का पठार और नमक के पर्वत
2. शेख बुदीन की पहाडियां
3. सुलेमान पर्वत
4. लाखी, किरथर व मरी की पहाड़ियां

बर्मा (म्यंमार) की चाप भारत के पूर्व में स्थित है। यह दक्षिण–पश्चिम चीन से प्रारंभ होकर भारत, म्यंमार, पाकिस्तान सीमा रेखा से अंडमान–निकोबार द्वीप समूह होते हुए इण्डोनेशिया द्वीप समूह की ओर गई हुई है।

सिंधु–गंगा का मैदानी भाग

हिमालय और प्रायद्वीपीय भारत के बीच स्थित विशाल गर्त में हिमालय से आने वाली नदियों से लाए अवसादों के निक्षेप से बना सिंधु–गंगा का विशाल मैदानी भाग चतुर्थ महाकल्प में निर्मित हुआ है। पूर्व में गंगा–ब्रह्मपुत्र डेल्टा की दक्षिणी सीमा से लेकर पश्चिम में सिंधु डेल्टा के अंत तक 3400 किलोमीटर क्षेत्र में फैलाव लिए यह मैदानी भाग 150 से 500 किलोमीटर तक चौड़ा है। पंजाब में इसकी चौड़ाई अधिकतम 550 किलोमीटर तथा असम में घटती हुई 90–100 किलोमीटर तक है। सिंधु मैदान के उत्तर पूर्व में थार का रेगिस्तान राजस्थान के उत्तर पश्चिम भाग व हरियाणा क्षेत्र में फैला हुआ है। सिंधु–गंगा मैदानी भाग की औसत ऊंचाई 150 मीटर है। गंगा–ब्रह्मपुत्र तथा सिंधु नदियों द्वारा निक्षेपित अवसादों से यह मैदानी भाग वर्तमान से 11 हजार वर्ष पूर्व निक्षेपण से बना है। सिंधु–गंगा का मैदानी भाग साढे. आठ लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैलाव लिये हुए है तथा इनमें बजरी, रेत तथा मिट्टी पायी जाती है। मुख्य गंगा के मैदान में ये प्राचीन जलोढ़ (भांगर या बांगर), नूतन जलोढ़ (खादर) तथा भाबर के रूप में तथा सिंधु मैदान में खादर के रूप में वर्गीकृत की गई है। भाबर के दक्षिण में तराई प्रदेश है, जहां विलुप्त नदियां पुनः प्रकट होती हैं ।

प्रायद्वीपीय भाग

त्रिकोणाकार आकार का प्रायद्वीपीय भाग उत्तर से दक्षिण की ओर करीब 2200 किलोमीटर तथा पूर्व से पश्चिम की तरफ करीब 1400 किलोमीटर तक फैलाव लिए हुए है। त्रिकोण का शिखर दक्षिण दिशा में कन्याकुमारी को इंगित करता है। प्रायद्वीपीय भाग एक प्राचीन पठार है तथा इसके पर्वत पूर्ववर्ती पर्वतों के अवशेष है। उत्तर पश्चिम में अरावली पर्वत श्रृंखला 800 किलोमीटर तक फैली हुई है, यह दो अरब वर्षों से पुरानी विभिन्न शैलों से निर्मित है, जिसमें सर्वाधिक ऊँची चोटी माउण्ट आबू का गुरू शिखर (1727 मीटर) है। उत्तर पूर्व–दक्षिण पश्चिम दिशा में अनुदिश अरावली पूर्व में मुड़ती है तथा सतपुड़ा पर्वतमाला के रूप में बढ़ी हुई है जो 900 से 1000 मीटर की ऊंचाई वाली सात पहाड़ियों से निर्मित है। पूर्वी भारत में यह 'मेघालय गिरीपिंड' (मिसिफ) द्वारा प्रदर्शित है जिसका शिखर शिलांग (1963 मीटर) है। प्रायद्वीप का पश्चिमी किनारे पर 1600 किलोमीटर लम्बी सह्याद्री पर्वतमाला, उत्तर में तापी घाटी से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक विस्तारित है। सह्याद्री उत्तर, मध्य व दक्षिण तीन खण्डों में पहचानी जाती है। उत्तर सह्याद्री में कालसुबाई (1646 मीटर) तथा महाबालेश्वर (1569 मीटर) प्रमुख शिखर हैं। महाराष्ट्र में स्थित ये पर्वत करीब 6 करोड़ वर्ष पुराने बेसाल्टी लावा से निर्मित है। मध्य सह्याद्री के पर्वत कर्नाटक में 250–300 करोड़ वर्ष पुराने है तथा इनमें ग्रेनाइट, नाइस तथा कायांतरित प्रमुख शैलें हैं। इनमें नीलगिरी (2637 मीटर), कुद्रेमुख (1892 मीटर) तथा पुष्पगिरी (1714 मीटर) प्रमुख शिखर है। दक्षिण सह्याद्री 55 करोड़ वर्ष पुरानी चार्नोकाइट व खोण्डालाइट से निर्मित है जिनमें अन्नाइमलाई (2695 मीटर) व ईलाइमलाई (2670 मीटर) प्रमुख शिखर है।

प्रायद्वीप का मध्य भाग पठार (600–900 मीटर) से मुख्यतः निर्मित है। उत्तर पश्चिम में मालवा पठार (500–600 मीटर) 6 करोड़ वर्ष पूर्व लावा निर्मित है। उत्तर पूर्व में बुन्देलखण्ड उच्च भूमि (300–600 मीटर) आद्य महाकल्प की ग्रेनाइट व नाइस से निर्मित है। विन्ध्यांचल पठार प्राग्जीवी अवसादी शैलों से निर्मित है, इसमें कैमूर पर्वतमाला (760–1220 मीटर) प्रमुख है। विन्ध्यन के दक्षिण में 6 करोड़ वर्ष पुरानी बेसाल्टी लावा से निर्मित डेक्कन ट्रेप्स के पठार हैं। मैसूर पठार (800–900 मीटर) आद्य महाकल्प की ग्रेनाइट, नाइस तथा कायान्तरित शैलों से निर्मित है।

प्रायद्वीप के पश्चिम किनारे पर पश्चिम घाट और पूर्वी किनारे पर पूर्वी घाट की पहाड़ियां है। पश्चिमी घाट पूर्वी घाट की अपेक्षा अधिक ऊँचा हैं। पश्चिम तथा पूर्वी किनारों पर

उपजाऊ तटीय मैदान है। पश्चिम तटीय मैदान संकीर्ण है तथा इसका उत्तरी भाग कोंकण तट तथा दक्षिणी भाग मालाबार तट कहलाता है। पूर्वी तटीय मैदान अपेक्षाकृत चौड़ा है और उत्तर में उड़ीसा से दक्षिण में कुमारी अंतरीप तक फैला हुआ है। महानदी, गोदावरी, कृष्णा व कावेरी नदियां जहां डेल्टा बनाती है वहां यह मैदान अधिक चौड़ा है। मैदान का उत्तरी भाग उत्तरी सरकार तट कहलाता है।

भारत के द्वीपीय भागों में लक्षद्वीप तथा अंडमान–निकोबार द्वीप समूह है। ये समुद्र में प्रक्षिप्त हिस्सा माने जाते हैं। अंडमान–निकोबार द्वीप पर ज्वालामुखी क्रिया के अवशेष भी दिखाई पड़ते है। इसके पश्चिम में बैरन द्वीप भारत का एकमात्र सक्रिय ज्वालामुखी है (चित्र 2.16)।

भारतीय उप महाद्वीप के तीनों प्राकृतिक भागों में नदियां बहती है। हिमालय क्षेत्र में हिमनद पाये जाते हैं। असम में

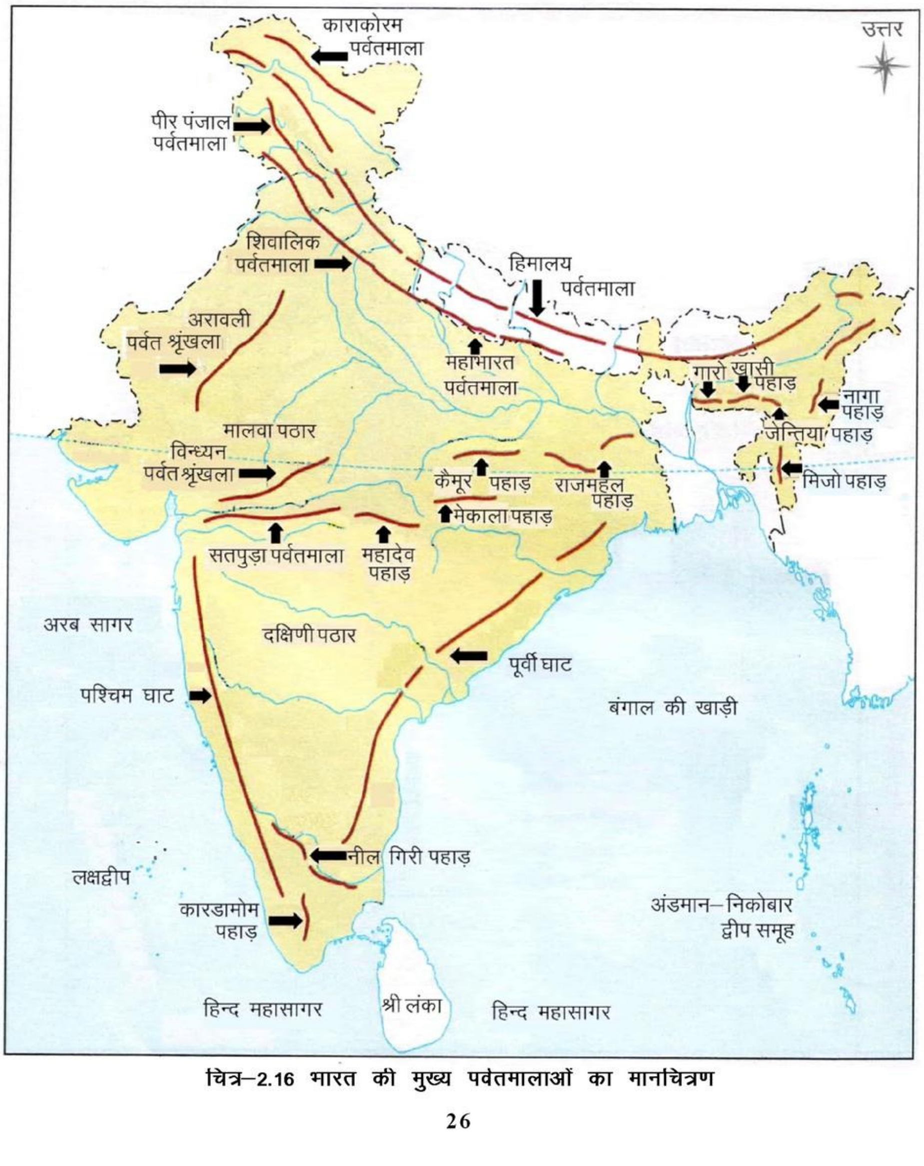

चित्र–2.16 भारत की मुख्य पर्वतमालाओं का मानचित्रण

हिमरेखा 4400 मीटर व कश्मीर में 5100 से 5800 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है। असम से कश्मीर तक करीब 40000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में हिम क्षेत्र विस्तृत है। हिमाद्री तथा काराकोरम पर्वतमालाओं में हिम नदियां विकसित हुई है।

प्रायद्वीपेतर भाग में हजारा से असम के बीच में हिमालय से 20 प्रमुख नदियां निकलती है जो सिंधु, गंगा तथा ब्रह्मपुत्र प्रवाह का निर्माण करती है। सिंधु नदी प्रवाह में सिंधु के अलावा झेलम, चिनाब, रावी, व्यास तथा सतलज नदियां पूर्व की ओर से तथा काबुल व कुर्रम नदियां पश्चिम की ओर से निकलती है। गंगा नदी गंगोत्री से निकलती है तथा रामगंगा, काली करनाली, गण्डक, कोसी (उत्तर दिशा से) इसकी सहायक नदियां है। यमुना गंगा से पश्चिम में यमुनोत्री से निकलती है तथा इसी के समानान्तर बहती हुई प्रयाग में आकर गंगा से मिल जाती है। विन्ध्यांचल से चम्बल, सिंधु, बेतवा, केन, टोंस (तमसा) तथा सोन नदियां निकलकर इसी प्रवाह तंत्र में मिल जाती है। ब्रह्मपुत्र नदी मानसरोवर से निकलती है तथा इसकी सहायक नदियां मनास, मरेली, सुवर्णश्री व लोहित इत्यादि है। प्रायद्वीपीय भाग में दामोदर, स्वर्णरेखा, ब्रह्मी, महानदी, गोदावरी, कृष्णा, पन्नेर, कावेरी तथा ताम्रपर्णी पूर्व

चित्र–2.17 भारत की मुख्य नदियों का मानचित्रण

की ओर बहने वाली तथा ताप्ती व नर्मदा पश्चिम की ओर बहने वाली नदियां हैं। बनास व लूनी नदियां अरावली पर्वतमाला से निकल कर अरब सागर में मिलती है। पश्चिम की ओर बहने वाली नदियां डेल्टा नहीं बनाती हैं। प्रायद्वीपीय भाग की नदियों का प्रवाह पथ प्रायद्वीपेतर भाग की की नदियों के प्रवाह पथ की तुलना में स्थिर रहे हैं। प्रायद्वीपेतर नदियों के प्रवाह पथ में अनेक परिवर्तन हुए जिनका प्रभाव मानव सभ्यता के विकास व विस्तार पर पड़ा (चित्र 2.17)।

नदियों के अलावा हिमालय व तिब्बत क्षेत्र में झीलें हैं। मानसरोवर, रक्षताल, यमद्रोक, वूलर, डल, भीमताल, नैनीताल, चन्द्रताल इत्यादि प्रमुख झीलें है। राजस्थान में सांभर, डीडवाना, पचपदरा, लूणकरणसर इत्यादि नमकीन झीलें हैं। दक्षिण भारत में चैन्नई के निकट पुलिकट झील, उड़ीसा में चिल्का झील प्रमुख है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- सौर मंडल 'सूर्य केन्द्रीय' है जिसमें सूर्य एक विशाल तारा है तथा इसके चारो ओर आठ ग्रह, बौने ग्रह, प्राकृतिक उपग्रह, क्षुद्र ग्रह, उल्काएं, धूमकेतू इत्यादि परिक्रमा करते हैं।
- सूर्य से पृथ्वी की औसत दूरी लगभग 15 करोड़ किलोमीटर है जिसे एक खगोलीय एकक कहते हैं।
- पृथ्वी की उत्पत्ति को समझने के लिए एक जनकीय तथा द्विजनकीय परिकल्पनाओं का सहारा लिया गया है।
- पृथ्वी की आंतरिक संरचना को भूपर्पटी, प्रावार तथा क्रोड में बांटा गया है। भूपर्पटी तथा प्रावार के मध्य मोहरोविसिक असांतत्य तल तथा प्रावार एवं क्रोड के मध्य गुटेनबर्ग व विंचर्ट असांतत्य तल पाये जाते हैं। पृथ्वी की आंतरिक संरचना की जानकारी में भूकम्पीय तंरगों का अध्ययन महत्वपूर्ण है।
- पृथ्वी की आकृति गोलाभ सदृश्य मानी गई है तथा इसका आकार "जीऑयड" कहलाता है।
- पृथ्वी की आयु 4 अरब 60 करोड़ वर्ष आंकी गई है। आयु गणना में रेडियोएक्टिव विधि से पृथ्वी की सही आयु का पता लगाया गया है।
- पृथ्वी पर सात महाद्वीप यथा एशिया, अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका, दक्षिण अमेरिका, अंटार्कटिका, यूरोप तथा ऑस्ट्रेलिया है।
- पृथ्वी पर पाँच महासागर यथा प्रशांत महासागर, अंध महासागर, हिन्द महासागर, दक्षिण ध्रुवीय महासागर तथा उत्तर ध्रुवीय महासागर है।
- पर्वतों का वर्गीकरण भौगोलिक व्यवस्था व विस्तार, आयु के विचार तथा उत्पत्ति के विचार के आधार पर किया जाता है।
- पर्वतों की उत्पत्ति में भूअभिनतियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पर्वतों की उत्पत्ति समझाने हेतु विभिन्न भूअभिनति, ताप, संकुचन, महाद्वीपीय सर्पण, संवहन, धारा, तापीय चक्र तथा महाद्वीपीय विस्थापन आधारित भिन्न–भिन्न परिकल्पनाओं की मदद ली गई है।
- भारतीय उप महाद्वीप को प्राकृतिक संरचना के आधार पर तीन भागों यथा प्रायद्वीपेतर भाग, सिंधु–गंगा का मैदानी भाग तथा प्रायद्वीपीय भाग में बांटा गया है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सूर्य का व्यास पृथ्वी की तुलना में कितना गुना अधिक है?
   (अ) 58 गुना (ब) 109 गुना
   (स) 216 गुना (द) 303 गुना
2. नवतारा परिकल्पना किसने दी?
   (अ) फ्रेड हायल (ब) रॉसगन
   (स) चेम्बरलीन (द) बफन
3. पृथ्वी की भीतरी क्रोड किस गहराई से शुरू होती है?
   (अ) 1500 किलोमीटर (ब) 590 किलोमीटर
   (स) 2900 किलोमीटर (द) 6370 किलोमीटर
4. सबसे बड़ा महाद्वीप व महासागर निम्न से है–
   (अ) एशिया व आस्ट्रेलिया
   (ब) अफ्रीका व हिन्द महासागर
   (स) यूरोप व अटलांटिक महासागर
   (द) एशिया व प्रशांत महासागर
5. पर्वत उत्पत्ति समझाने की महाद्वीपीय सर्पण परिकल्पना किसने दी?
   (अ) डेली (ब) होम्स
   (स) जॉली (द) जैफ्रे
6. माउण्ट आबू में गुरू शिखर की ऊंचाई निम्न में से कौनसी है?
   (अ) 546 मीटर (ब) 1727 मीटर
   (स) 2437 मीटर (द) 3786 मीटर

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न (20 शब्दों में)

1. सौर मंडल में कितने ग्रह हैं?
2. मंगल के उपग्रहों की संख्या कितनी है?
3. पृथ्वी की उत्पत्ति के संबंध में कौनसी दो विचारधाराएं प्रचलन में है?
4. सौर ज्वाला क्या है?

5. पृथ्वी के बाह्य भाग को क्या कहते हैं?
6. भूकम्पीय तंरगें कितने प्रकार की होती है?
7. पृथ्वी का आकार किस प्रकार का है?
8. पृथ्वी की आयु बताइये।
9. पृथ्वी पर महाद्वीपों व महासागरों की संख्या बताइये।
10. पर्वत को परिभाषित कीजिए।
11. पहाड़ी किसे कहते हैं?
12. माउण्ट एवरेस्ट की ऊंचाई कितनी है?
13. ''सीमै'' व ''सिएल'' के गलनांक बताइये।
14. सतपुड़ा पर्वतमाला कितनी पहाड़ियों से बनी है?
15. असम में हिम रेखा की ऊंचाई क्या है?

लघुत्तरात्मक प्रश्न – (250 शब्दों में)

1. सूर्य से दूरी के आधार पर बढती दूरी के क्रम में आठ ग्रहों के नाम लिखिए।
2. उल्का व उल्का पिंड किसे कहते हैं?
3. धूमकेतू क्या है, इनके उदाहरण लिखिए।
4. सिफिड क्या है?
5. यूरेनियम–238 तथा रूबिडियम–87 की अर्द्ध आयु बताइये।
6. रेडियोएक्टिव विधि द्वारा पृथ्वी की आयु में प्रयुक्त सूत्र लिखिए।
7. महाद्वीप व महासागर को परिभाषित कीजिए।
8. भू अभिनति को परिभाषित कीजिए।
9. संवहन धाराओं पर लघु टिप्पणी लिखिए।
10. हिमालय की प्रमुख चार श्रेणियों के नाम बताइए।
11. हिमालय क्षेत्र की किन्ही पांच ऊंची चोटियों के नाम लिखिए।
12. सह्याद्री पर्वतमाला पर लघु टिप्पणी लिखिए।
13. बलूचिस्तान चाप पर लघु टिप्पणी लिखिए।
14. हिमाद्री पर लघु टिप्पणी लिखिए।
15. प्रायद्वीपीय भाग की प्रमुख नदियों के नाम बताइए।

निबंधात्मक प्रश्न

1. सौर मंडल पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
2. पृथ्वी की उत्पत्ति को समझाने वाली एकरूपतावादी परिकल्पनाओं पर टिप्पणी लिखिए।
3. पृथ्वी की उत्पत्ति संबंधी प्रलयवादी परिकल्पनाओं पर टिप्पणी लिखिए।
4. पृथ्वी की आंतरिक संरचना का वर्णन कीजिए।
5. इसकी आयु ज्ञात करने की विधियों पर टिप्पणी लिखिए।
6. पर्वतों के वर्गीकरण व उत्पत्ति पर टिप्पणी लिखिए।
7. भारत के भू आकृतिक अवयव पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तरमालाः 1 (ब), 2. (अ), 3. (स), 4. (द), 5. (अ), 6. (ब)

अध्याय – 3

खनिज एवं क्रिस्टल विज्ञान
(Mineralogy and Crystallography)

मानव के विकास में खनिजों का बहुत महत्व हैं सम्भवतः पहली बार इनकी तरफ ध्यान आदि मानव का गया होगा। पाषाण युग में नुकीले पत्थरों से औजार बनाने या रंगीले पत्थरों से श्रृंगार करने की मानव प्रवृत्ति ने उनका ध्यान खनिजों की तरफ आकर्षित किया होगा। आज खनिजों का उपयोग शैलों के निर्माण के अलावा दैनिक रोजमर्रा की वस्तुएं बनाने में होता है, चाहे वो पिन ही क्यों न हो ? आज लगभग दो हजार प्रकार से भी ज्यादा खनिज खोजे जा चुके हैं, जिनमें से 300 के करीब ऐसे खनिज हैं जो सामान्य श्रेणी में आते हैं। करीब 200 के लगभग विभिन्न उद्योगों में उपयोग में लिये जाते है। इनमें से 50 के लगभग खनिज शैलकर (Rock forming) श्रेणी में आते हैं और इनके भी आधे खनिज ही सामान्य रूप से शैलों में मिलते हैं।

प्रकृति में पाये जाने वाले खनिजों की आंतरिक परमाणु संरचना के कारण विभिन्न बाह्य आकृतियां बनती हैं, जिन्हें हम क्रिस्टल कहते हैं। इनका अध्ययन क्रिस्टल विज्ञान के तहत करेंगे। खनिजों के भौतिक एवं रासायनिक गुणों के अध्ययन से पूर्व क्रिस्टलों के गुणों की जानकारी प्राप्त करना ठीक रहता हैं। अतः खनिज विज्ञान से पहले हम क्रिस्टल विज्ञान का अध्ययन करेंगे।

क्रिस्टल विज्ञान (Crystallography)

क्रिस्टल विज्ञान या क्रिस्टलिकी, भूविज्ञान (Geology) की वह शाखा है जिसके तहत क्रिस्टलों की प्रकृति, उत्पत्ति, उनकी आंतरिक संरचना एवं बाह्य आकृति का अध्ययन किया जाता है।

क्रिस्टल की परिभाषा (Definition of Crystal): क्रिस्टल एक ठोस आकृति होती है जो प्रायः सपाट और समतल फलकों के निश्चित विन्यास से बनती है। जिसका आकार, आन्तरिक परमाणु संरचना पर आधारित होता है। क्रिस्टल का निर्माण किसी भी द्रव्य, घोल व गैस के ठोस होने से होता है। इस प्रक्रम को क्रिस्टलन (Crystallization) कहते हैं।

क्रिस्टल के अवयव (Elements of Crystal): किसी भी क्रिस्टल के निम्नलिखित अवयव होते हैं –

1. आकृति (Form)
2. फलक (Face)
3. किनारा (Edge) और
4. संपिंड कोण (Solid Angle)

1. **आकृति :** किसी भी क्रिस्टल की बाह्य बनावट को आकृति कहते हैं।

2. **फलक :** प्राकृतिक रूप से बने क्रिस्टल में समतल सतह जो कि पार्श्व फलकों के साथ निश्चित कोण बनाते हुए होती हैं, को फलक कहते हैं (चित्र 3.1)। अगर किसी क्रिस्टल में ये सभी फलक एक समान होते हैं तो उन्हें समान फलक कहते हैं जैसे – फ्लोराइट के घनीय क्रिस्टल के फलक। यदि सभी फलक असमान हो तो उन्हें असमान फलक कहते हैं, जैसे संदूक या ईंट जैसी आकृति के फलक।

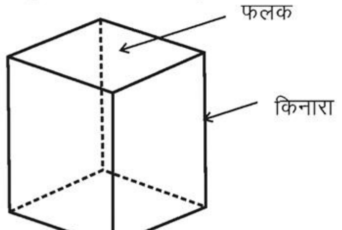

चित्र 3.1. बंद आकृति, फलक एवं किनारा

3. **किनारा :** दों संलग्न फलकों (Adjacent faces) के प्रतिच्छेदन (Intersection) के परिणास्वरूप किनारों का निर्माण होता है।

4. **संपिंड कोण :** संपिंड कोण का निर्माण तीन या तीन से अधिक फलकों के प्रतिच्छेदन के फलस्वरूप होता है।

अंतराफलक कोण (Interfacial Angle)

किन्हीं दो फलकों के बीच के कोण को अंतराफलक कोण कहते हैं, परन्तु क्रिस्टल विज्ञान में अंतराफलक कोण दो फलकों पर बने हुए अभिलम्बों के बीच का कोण होता है (चित्र 3.2)।

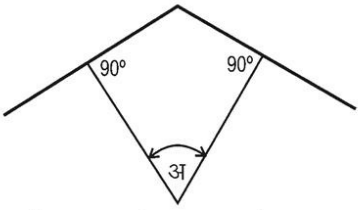

चित्र 3.2. अंतराफलक कोण 'अ'

अंतराफलक कोण की स्थिरता का नियम (Law of Constancy of Interfacial Angle)

किसी भी खनिज के किसी भी क्रिस्टल की परमाणु संरचना निश्चित होती है। इस प्रकार के क्रिस्टल के फलकों की स्थिति भी निश्चित होती है। किन्हीं दो संलग्न फलकों पर अभिलम्बों के बीच के कोण का माप भी सदा एक समान होता है। इसे ही अंतराफलक कोण की स्थिरता का नियम कहते हैं।

क्रिस्टल आकृतियां (Forms of Crystals)

जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि किसी भी क्रिस्टल की बाह्य बनावट को आकृति कहते हैं। यदि किसी क्रिस्टल के सभी फलक एक समान हों और उनके मिलने पर जो आकृति बनती है उसे सरल (Simple) आकृति कहते हैं। जैसे– घन (चित्र 3.1)। जब क्रिस्टल के सभी फलक असम होते हैं तब उसे सम्मिश्रण (Combine) आकृति कहते हैं (चित्र 3.3)। यह दो या दो से अधिक सरल आकृतियों के मिलने पर बनती है। जैसे – घन एवं अष्टफलक के मिलने से गैलेना के क्रिस्टल बनते हैं।

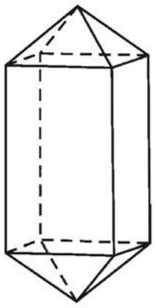

चित्र 3.3. सम्मिश्रण आकृति

इसके अतिरिक्त प्रकृति में दो प्रकार की आकृतियां और भी पाई जाती हैं – खुली आकृति (Open form) और बंद आकृति (Closed form)।

1. **खुली आकृति** (Open form) : खुली आकृति का मुख्य गुण है कि इसके फलक मिलकर एक ठोस क्रिस्टल नहीं बना पाते, इसे दूसरी आकृति के फलकों की सहायता की जरूरत होती है। अर्थात् इस आकृति में एक से अधिक आकृतियों का समावेश होता है (चित्र 3.3)।
2. **बंद आकृति** (Closed form) : कुछ क्रिस्टल आकृतियों के फलक बिना किसी दूसरी आकृति की सहायता लिए खाली स्थान को बंद कर लेती हैं तो उस आकृति को बंद आकृति कहते हैं (चित्र 3.1)।

क्रिस्टलीय अक्ष (Crystallographic axes)

किसी भी क्रिस्टल में फलकों की स्थिति का निर्णय करने के लिए ऐसी तीन अक्षों की कल्पना की गई है जो कि क्रिस्टल के केन्द्र से गुजरती है तथा ये एक दिशा में नहीं होती है। इन्हीं काल्पनिक रेखाओं को क्रिस्टलीय अक्ष कहते हैं। क्रिस्टल के केन्द्र में जहां अक्ष एक दूसरे को काटते हैं उस बिन्दु को अक्षों की उत्पत्ति स्थान माना जाता है। इन अक्षों को a, b और c द्वारा प्रदर्शित करते हैं। सामने से पृष्ठ की ओर जाने वाली अक्ष को 'a' अक्ष कहते हैं। इस अक्ष के सामने वाले सिरे को धनात्मक एवं पृष्ठ वाले सिरे को ऋणात्मक चिह्न द्वारा दर्शाते हैं। अक्ष 'b' क्रिस्टल के दाईं से बाईं ओर जाती है। इसे भी क्रमशः धनात्मक एवं ऋणात्मक द्वारा दिखाते हैं। इसी प्रकार अक्ष 'c' ऊपर से नीचे की ओर जाती है। इसमें ऊपर का सिरा धनात्मक तथा नीचे का सिरा ऋणात्मक होता है।

जब तीनों अक्षों की लम्बाई बराबर हो तब उन्हें a, b और c के स्थान पर क्रमशः a_1, a_2 और a_3 कहते हैं। लेकिन जब दो अक्षों की लम्बाई बराबर हो एवं तीसरी छोटी अथवा बड़ी हो तो उसे क्रमशः अक्ष a_1, a_2 और c के द्वारा दर्शाते हैं। यदि तीनों ही अक्षों की लम्बाई असमान हो तब इसे क्रमशः a, b और c द्वारा दर्शाते हैं। अक्षों की लम्बाई को अनुपात द्वारा दर्शाते हैं जिसे अक्षानुपात (Axial ratio) कहते हैं। a और b अक्षों के बीच के कोण को α, a और c अक्षों के बीच के कोण को β, b और c अक्षों के बीच के कोण को γ चिह्नों से दर्शाते हैं (चित्र 3.4)।

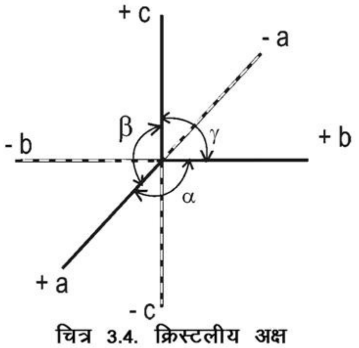

चित्र 3.4. क्रिस्टलीय अक्ष

क्रिस्टल समुदायों का वर्गीकरण
(Classification of Crystal System)

क्रिस्टल अक्षों की अनुपातीय लम्बाई एवं कोणीय अनुपातों के आधार पर निम्नलिखित क्रिस्टल समुदायों में वर्गीकृत किया गया है।

घनीय समुदाय (Cubic System): वे सभी क्रिस्टल जिनकी आकृतियों के फलकों का सम्बंध ऐसे तीनों क्रिस्टलीय अक्षों से होता है, जो लम्बाई में बराबर होते हैं और अन्तरबदल (Interchangeable) भी होते हैं तथा तीनों अक्ष आपस में समकोण बनाते हुए क्रिस्टल केन्द्र पर मिलते हैं। ऐसे सभी क्रिस्टलों को घनीय समुदाय में रखा जाता है। उपरोक्त गुणों के कारण a, b और c अक्षों को क्रमशः a_1, a_2 और a_3 द्वारा दर्शाया जाता है। इसलिए किसी भी अक्ष को a_1, a_2 या a_3 माना जा सकता है। तीनों अक्ष आपस में समकोण बनाते हैं, अतः इनका कोणीय अनुपात $\alpha = \beta = \gamma = 90^0$ (चित्र 3.5)।

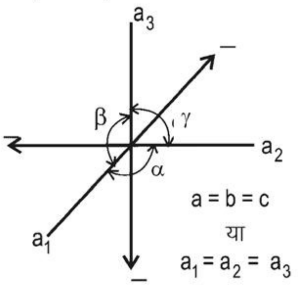

चित्र 3.5. घनीय समुदाय के क्रिस्टलीय अक्ष

चतुष्कोणीय समुदाय (Tetragonal System): चतुष्कोणीय समुदाय में वे सभी क्रिस्टल शामिल किए गए हैं जिनमें तीन क्रिस्टलीय अक्षों में से दो क्षैतिज अक्ष बराबर लम्बाई की होती है। इनको अक्ष a_1 और a_2 के नाम से जाना जाता है। ये दोनों क्षैतिज अक्ष आपस में अन्तरबदल होती है जबकि तीसरी ऊर्ध्वाधर अक्ष जिसकी लम्बाई उपरोक्त दो अक्षों से छोटी अथवा बड़ी होती है उसको c अक्ष द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। तीनों क्रिस्टलीय अक्ष आपस में समकोण बनाते हैं अर्थात् $\alpha = \beta = \gamma = 90^0$।

षट्कोणीय समुदाय (Hexagonal System): इस क्रिस्टल समुदाय में अपवाद के स्वरूप तीन के स्थान पर चार क्रिस्टलीय अक्ष होते हैं। ऐसे सभी क्रिस्टल जिसमें चार क्रिस्टलीय अक्ष हों एवं उनमें से तीन समान लम्बाई के क्षैतिज अक्ष हों जो कि एक दूसरे के साथ 120^0 का कोण बनाते हों एवं अंतरबदल हों तथा चतुर्थ ऊर्ध्वाधर अक्ष हों जो अन्य तीनों अक्षों के साथ समकोण पर हो, उनको षट्कोणीय समुदाय में रखा गया है (चित्र 3.6)।

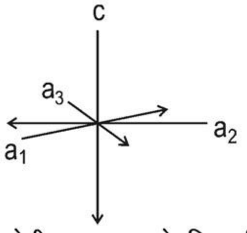

चित्र 3.6. षट्कोणीय समुदाय के क्रिस्टलीय अक्ष

इस समुदाय को दो मुख्य प्रभागों में बांटा गया है– 1. षट्कोणीय प्रभाग (Hexagonal division), एवं 2. समचतुर्भुज प्रभाग (Trigonal or rhombohedral division)।

विषमलम्बाक्ष समुदाय (Orthorhombic System) : इस समुदाय के अन्तर्गत वे सभी क्रिस्टल आकृतियां आती हैं जिनमें तीनों क्रिस्टलीय अक्ष लम्बाई में असमान, पर एक दूसरे के समकोण पर होते हैं। क्षैतिज अक्षों में अक्ष 'b' की लम्बाई हमेशा अक्ष 'a' से अधिक होती है। अक्ष 'a' को लघु अक्ष (Brachy axis) तथा अक्ष 'b' को दीर्घ अक्ष (Macro axis) कहते हैं। उनका कोणीय अनुपात भी $\alpha = \beta = \gamma = 90^0$ होता है (चित्र 3.7)।

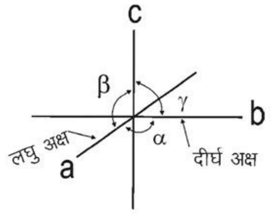

चित्र 3.7. विषमलम्बाक्ष समुदाय के क्रिस्टलीय अक्ष

एकनताक्ष समुदाय (Monoclinic System) : इस समुदाय के अन्तर्गत वे सभी क्रिस्टल आकृतियां आती हैं जिनका सम्बन्ध तीन असमान लम्बाई के अक्षों से होता है और उनमें से 'a' अक्ष को प्रवण अक्ष (clino axis) एवं 'b' अक्ष को ऋजु अक्ष (ortho axis) कहते हैं। अक्ष 'a' अक्ष 'c' के साथ समकोण नहीं बनाती है पर अक्ष 'b', अक्ष 'c' के साथ में 90^0 का कोण बनाती है (चित्र 3.8)।

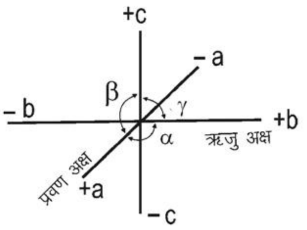

चित्र 3.8. एकनताक्ष समुदाय के क्रिस्टलीय अक्ष

त्रिनताक्ष समुदाय (Triclinic System) : इस समुदाय में वो सभी क्रिस्टल आकृतियां सम्मिलित हैं जिनके तीनों अक्ष असमान लम्बाई के एवं विषमकोणीय होते हैं अर्थात् तीनों अक्षों में से कोई भी एक दूसरे पर 90^0 का कोण नहीं बनाते हैं। इस समुदाय के तीनों अक्षों को क्रमशः 'a', 'b' और 'c' के द्वारा लिखा जाता है। अक्ष 'a' अक्ष 'b' से छोटी होने के कारण लघु अक्ष कहलाती है तथा अक्ष 'b' अक्ष 'a' से लम्बी होने के कारण दीर्घ अक्ष कहलाती है (चित्र 3.9)। कोणीय अनुपात $\alpha \neq \beta \neq \gamma \neq 90^0$ होता है। यहां पर यह ध्यान देने योग्य बात है कि α, β, γ के मूल्य में कोई निश्चित सबंध नहीं होता है। इनमें कोई भी कोण 90^0 से अधिक या कम हो सकता है।

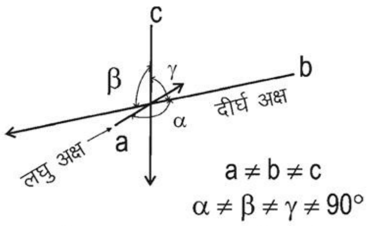

चित्र 3.9. त्रिनताक्ष समुदाय के क्रिस्टलीय अक्ष

खनिज विज्ञान (Mineralogy)

खनिज विज्ञान भूविज्ञान की वह शाखा है जिसमें खनिजों के रासायनिक, भौतिक एवं प्रकाशीय गुणों का अध्ययन किया जाता है।

खनिज की परिभाषा (Definition of Mineral) : खनिज प्राकृतिक रूप से बना वह अकार्बनिक पदार्थ है जिसकी निश्चित रासायनिक संगठन एवं परमाणु संरचना होती है।

खनिजों का वर्गीकरण (Classification of Minerals)

खनिजों का वर्गीकरण उनके भौतिक एवं रासायनिक गुणों, उनके उपयोग एवं बनने की प्रक्रिया के आधार पर किया गया है।

खनिजों को उनके उपयोग के आधार पर निम्न दो वर्गों में बांटा गया है –

(अ) आर्थिक खनिज (Economic Minerals) : वे सभी खनिज जो देश के विकास में काम आते हैं, तथा उद्योगों में उपयोग लिए जाते हैं, आर्थिक खनिज कहलाते हैं। इनको दो भागों में विभक्त किया गया है –

(i) **धात्विक खनिज** (Metallic Minerals) : वे खनिज जिनसे धातुएं प्राप्त होती हैं, उन्हें धात्विक खनिज कहते हैं। जैसे– गेलेना (PbS), जिससे सीसा प्राप्त होता है।

(ii) **अधात्विक खनिज** (Non-metallic Minerals) : इन खनिजों से कोई धातु प्राप्त नहीं होती परन्तु इनका उपयोग उद्योगों में विभिन्न प्रकार की वस्तुएं एवं रसायन बनाने में लिया जाता है। जैसे – जिप्सम, फ्लोराइड इत्यादि।

(ब) शैलकर खनिज (Rock Forming Minerals) : जिन खनिजों के संयोजन से शैलें बनती हैं, उन्हें शैलकर खनिज कहते हैं। कभी–कभी ये खनिज शैलों में अधिक मात्रा में मिलते हैं, तो इनका भी उपयोग आर्थिक खनिजों के रूप में किया जाता है।

शैलों के निर्माण में मुख्य भूमिका सिलिकेट खनिजों की होती है। सिलिका अन्य तत्वों के साथ मिलकर प्रचुर मात्रा में यौगिक बनाती हैं, जिन्हें सिलिकेट कहते है। इन सिलिकेटों का उपयोग मुख्य रूप से शैलों के निर्माण में होता है। सिलिकेट के अलावा अन्य खनिज ज्यादातर आर्थिक खनिज होते हैं एवं उनकी शैलों के निर्माण में भूमिका सीमित होती है। शैलकर खनिजों को दो भागों में बांटा गया है –

1. आवश्यक शैलकर खनिज (Essential Rock Forming Minerals)
2. गौण शैलकर खनिज (Accessory Rock Forming Minerals)

खनिजों के भौतिक गुण (Physical Properties of Minerals)

ये वे गुण है जो खनिजों को भौतिक रूप से देख, सूंघ एवं स्पर्श कर बताये जाते हैं। खनिजों के भौतिक गुणों को हम निम्नलिखित भागों में बांट सकते हैं। ये भौतिक गुण खनिजों को पहचानने में महत्वपूर्ण हैं।

प्रकाश से सम्बंधित खनिजों के भौतिक गुण (Physical Properties of Minerals related to Light)

अ) रंग (Colour): खनिज का रंग, खनिज का एक महत्वपूर्ण गुण है। खनिज कई रंगों में पाये जाते हैं। ये रंग हमें प्रकाश किरण से, खनिज द्वारा उस रंग के अवशोषण के कारण दिखाई देते हैं। धात्विक खनिज विशेष रंग के होते हैं। प्राकृतिक रूप में कोई भी अधात्विक खनिज एक ही रंग का न होकर अनेक रंगों का होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ही श्रेणी के खनिज कई विभिन्न रंगों में पाये जाते हैं जैसे क्वार्ट्ज। प्रायः रंगहीन या श्वेत होता है, परन्तु गुलाबी, भूरा, पीला, बैंगनी आदि कई रंगों का भी होता है। अशुद्धता के कारण एक ही खनिज के कई प्रकार के रंग हो सकते हैं। कुछ पारदर्शी शुद्ध खनिज रंगहीन होते हैं। खनिज का रंग उसकी टूटी हुई ताजी सतह पर देखा जाता है।

ब) वर्णरेखा (Streak) : कुछ खनिजों को वर्ण रेखा–पट्ट पर रगड़ने से वे एक रंगीन रेखा बनाते है। खनिज के इस रेखा के रंग को उस खनिज की वर्णरेखा कहते हैं। जैसे पाइराइट का पीतल की तरह पीला रंग होता है परन्तु उसकी वर्ण रेखा सदा भूरी–काली होती है। यह रेखा खनिज के पाउडर (चूर्ण) का रंग बताती है।

स) चमक (Lustre): खनिजों की सतह से परावर्तित प्रकाश के प्रकार को उसकी चमक या द्युति कहते हैं। खनिज की चमक खनिजों की सतह से परावर्तित प्रकाश किरणों की मात्रा तथा उनके प्रकाश पर निर्भर रहती है। खनिजों में निम्न प्रकार की चमक दिखाई देती है –

1. **धात्विक चमक** (Metallic Lustre) : यह धातुओं में पाई जाने वाली चमक के समान होती है। इस प्रकार की चमक सोना, लोह, गैलेना आदि में पायी जाती है।
2. **अल्पधात्विक चमक** (Submetallic Lustre) : जब धात्विक चमक कुछ मंद होती है तब उसे अल्पधात्विक चमक कहते हैं। इस प्रकार की चमक क्रोमाइट में पायी जाती है।
3. **अधात्विक चमक** (Non-metallic Lustre) : शेष प्रकार की चमक अधात्विक कहलाती है। इसमें निम्नलिखित चमक या द्युतियां मुख्य हैं –

(i) **कांचाभ** (Vitreous) **चमक :** यह कांच के टुकड़े की चमक जैसी होती है। इस प्रकार की चमक क्वार्ट्ज में पायी जाती है। मंद होने पर यह अल्पकांच (Subvitreous) कहलाती है। यह चमक कैल्साईट खनिज में मिलती है।

(ii) **रेजिन** (Resinous) **चमक :** यह राल की चमक के समान होती है और ओपल, स्फैलेराइट में पाई जाती है।

(iii) **मुक्ता** (Pearly) **चमक :** यह मोती की चमक के समान होती है। टॉल्क इसका उदाहरण हैं।

(iv) **रेशमी** (Silky) **चमक :** यह चमक रेशम के जैसी होती है। ऐस्बेस्टास एवं रेशेदार जिप्सम इसके उदाहरण हैं।

(v) **हीरक** (Adamantine) **चमक :** यह हीरे की चमक के समान होती है। हीरा इसका उदाहरण हैं।

(vi) **मोमी** (Waxy) **चमक :** मोम जैसी चमक को कहते हैं। कैल्सेडोनी इसका उदाहरण हैं।

बिना चमक के खनिजों को द्युतिहीन (Dull) या मटियाला (Earthy) कहते हैं, जैसे चीनी मिट्टी। चमक की तीव्रता की मात्रा के अनुसार खनिज दीप्तिमान (Splendent), चमकदार (Shining), चमकीला (Glittering) एवं प्रस्फुरण (Glimmering) होते हैं।

पारदर्शकता (Transparency) : जब खनिज की सतह बहुत चमकीली होती है तथा चमकीली सतह पर किसी वस्तु का प्रतिबिंब दिखाई देता है तब ऐसी सतह को दीप्तीमान कहते है जैसे हैमेटाइट। जब हम किसी खनिज के आर–पार स्पष्ट देख सकते हैं तब उस खनिज को पारदर्शक (Transparent) कहते हैं जैसे क्रिस्टलीय क्वॅार्टज। जब हम किसी खनिज के आर–पार देख सकते हैं परन्तु उस पार की वस्तु स्पष्ट दिखाई नहीं देती तो ऐसे खनिज को अर्द्धपारदर्शक (Semitransparent) कहते हैं। जब खनिज से प्रकाश संचारित हो जाता हो परन्तु उस पार की वस्तु दिखाई नहीं देती तब उसे पारभासी कहते हैं। जिस खनिज से प्रकाश संचारित नहीं होता ऐसे खनिजों को अपारदर्शी (Opaque) कहते हैं।

विदलन (Cleavage) : अनेक खनिज अपनी क्रिस्टल संरचना के फलस्वरूप किसी विशिष्ट दिशा या दिशाओं में आसानी से विभक्त हो जाते हैं। ये विभक्त सतहें चिकनी, समतल और चमकदार होती हैं। खनिजों के इस विशेष प्रकार से टूटने की प्रवृत्ति को विदलन कहते हैं। विदलन कई दिशाओं में हो सकता है।

विभंग (Fracture) : विदलन की दिशा के अतिरिक्त किसी दूसरी दिशा में खनिज के टूटने के व्यवहार को विभंग कहते हैं, यह हमेशा खनिजों की टूटी हुई सतह पर दिखाई देता है। विभंग के कारण सतह समान नहीं रहती तथा विभंगित सतह पर खनिजों का वास्तविक रंग भी दिखाई देता है विभंग कई प्रकार के होते हैं। उनमें कुछ इस प्रकार हैं –

1. **शंखाभ** (Conchoidal) : जब खनिज तोड़ा जाता है तब टूटी हुई सतह असमान होती है। ये सतहें अवतल या उत्तल होती हैं। इन सतहों पर संकेन्द्रीय रेखाएं पाई जाती हैं। उदाहरण– चकमक (Flint) (चित्र 3.10)। यदि इस प्रकार की रेखाएं सतह पर कम मात्रा में पाई जाती हैं तो उस विभंग को उपशंखाभ (Subconchoidal) कहते हैं। जैसे – क्वार्ट्ज में।

चित्र 3.10. चकमक में शंखाभ विभंग

2. **सम** (Even) : विभंग सतह प्रायः समतल होती है। जैसे चर्ट में।
3. **असम** (Uneven) : विभंग सतह ऊंची–नीची होने के कारण खुरदरी होती है। बहुत से खनिजों में इसी प्रकार के विभंग पाये जाते है। जैसे – फेल्सपार।

4. **बंधुर (Hackly)** : इसमें टूटी हुई सतह तीक्ष्ण नुकीली तथा खुरदरी होती है। जैसे – प्राकृत तांबा खनिज में।

5. **मटियाला (Earthy)** : चॉक मिट्टी में जो विभंग पाया जाता है वो मटियाला कहलाता है।

दृढ़ता (Tenacity) : दृढ़ता के आधार पर हम खनिजों को निम्नलिखित भागों में बांट सकते हैं –

1. जब किसी खनिज को चाकू या छुरी से काटते है तो वह खनिज सरलता से कट जाता है इस प्रकार के खनिज को छेत्र (Sectile) खनिज कहते हैं जैसे जिप्सम।
2. उन खनिजों को जो चाकू से काटने पर कट जाते हैं परन्तु हथौड़े से पीटने पर फैल जाते हैं ऐसे खनिज आघात वर्धनीय (Malleable) कहलाते हैं। जैसे सोना, चांदी।
3. वे खनिज जो दबाव के कारण मुड़ या झुक जाते हैं परंतु दबाव के हटाने पर अपनी पूर्व स्थिति में नहीं आ पाते हैं, लचीले (Flexible) कहलाते हैं। जैसे – क्लोराइट।
4. वे खनिज जो दबाव के कारण झुक जाते हैं परन्तु दबाव के हटाने पर अपनी पूर्व स्थिति में आ जाते हैं प्रत्यास्थी (Elastic) खनिज कहलाते हैं। जैसे अभ्रक।
5. वे खनिज जो चाकू से काटने पर कटते नहीं परन्तु हथौड़े से पीटने पर उनका चूर्ण बन जाता है, भंगुर (Brittle) कहलाते हैं। जैसे एपेटाइट।

कठोरता (Hardness) : खनिजों में कठोरता अलग अलग होती है तथा इनकी पहचान के लिए कठोरता का बहुत महत्व है। खनिज की कठोरता मालूम करने के लिए मोज़ ने 10 खनिजों को मानक माना है जिसे मोज नामक कठोरता मापक्रम (Moh's scale of hardness) कहते हैं। यह इस प्रकार है –

मोज़ का कठोरता मापक्रम

कठोरता	मानक खनिज
1	टॉल्क (Talc)
2	जिप्सम (Gypsum)
3	कैल्साइट (Calcite)
4	फ्लोराइट (Fluorite)
5	एपेटाइट (Apatite)
6	फेल्सपार (Feldspar)
7	क्वार्ट्ज (Quartz)
8	टोपॉज (Topaz)
9	कोरंडम (Corundum)
10	हीरा (Diamond)

इन सब खनिजों में टॉल्क सबसे कम कठोर तथा हीरा सबसे अधिक कठोर हैं। अधिक कठोरता वाले खनिज कम कठोर खनिज को खुरच देते हैं। जिस खनिज की कठोरता हमें ज्ञात करनी हो उसे मानक खनिज से रगड़ने पर यदि उस खनिज पर खरोंच पड़ जाती है तो उस खनिज की कठोरता मानक खनिज की कठोरता से कम होगी। यदि कोई खनिज फेल्सपार को खरोंचे परन्तु क्वार्ट्ज को नहीं खरोंचे तब उस खनिज की कठोरता 6–7 के मध्य होगी।

खनिजों की कठोरता नाखून, तांबे का पैसा, कांच का टुकड़ा, चाकू, आदि की सहायता से भी ज्ञात की जा सकती है। नाखून की कठोरता 1–2 तक, तांबे के पैसे या आलपिन की कठोरता 2.5–3.0 तक, चाकू की कठोरता 3–5 तक, कांच के टुकड़े की कठोरता 5–6 तक होती है। जिस खनिज को चाकू से काटते हैं और यदि उस खनिज का चूर्ण ज्यादा निकलता है आवाज कम आती है तो उस खनिज की कठोरता कम होगी। जिस खनिज की कठोरता अधिक होती है उसे चाकू से काटने पर चूर्ण कम निकलता है पर आवाज अधिक आती है।

आपेक्षिक घनत्व (Specific gravity) : एक खनिज के किसी टुकड़े का भार और उसके बराबर आयतन वाले पानी के भार के अनुपात को उस खनिज का आपेक्षिक घनत्व कहते हैं।

$$\text{आपेक्षिक घनत्व} = \frac{\text{खनिज का हवा में भार}}{\text{खनिज के बराबर आयतन के पानी का भार}}$$

$$= \frac{\text{खनिज का हवा में भार}}{\text{पानी के अन्दर खनिज के भार में कमी}}$$

चुम्बकत्व (Magnetism) विद्युतीय (Electricity) और रेडियोएक्टिवता (Radioactivity) पर आधारित खनिजों के गुण

कुछ लौह खनिज चुम्बकीय होते हैं। ये खनिज चुम्बक के द्वारा तीव्रता से आकर्षित होते हैं, जैसे मैग्नेटाइट।

चुम्बकीय गुणों के अनुसार खनिजों को चार भागों में बांटा जा सकता है। वे इस प्रकार हैं –

1. **तीव्र चुम्बकीय** – जैसे मैग्नेटाइट और पाइरोटाइट।
2. **साधारण चुम्बकीय** – जैसे सीडेराइट, क्रोमाइट, हेमाटाइट आदि।
3. **कम चुम्बकीय** – जैसे – क्वार्ट्ज, कैल्साइट आदि।

विद्युतीय गुण : विद्युतीय गुण के अनुसार खनिजों को दो भागों में बांटा जा सकता है –

1. संवाहक (Conductor) : वे जो विद्युत के अच्छे संवाहक होते हैं। इसमें कुछ प्राकृतिक धातुएं तथा सल्फाइड खनिज आते हैं। इस प्रकार के खनिज बहुत कम पाये जाते हैं, जैसे ग्रेफाइट।

2. असंवाहक (Non-conductor) : ये खनिज विद्युत के कुचालक होते हैं, ऐसे खनिज प्रायः बहुतायत से पाये जाते हैं, जैसे फेल्सपार, जिप्सम।

स्वाद, गंध और स्पर्श (Taste, Smell and Touch)

इन तीनों गुणों के द्वारा खनिजों को पहचानने में सहायता मिलती है। स्वाद के अनुसार कुछ खनिज नमकीन होते हैं, जैसे नमक, कुछ क्षारीय होते हैं, जैसे पोटाश और सोडा, कुछ कड़वे होते हैं जैसे जिप्सम, लवण तथा कुछ खनिजों का गंधक के अम्ल जैसा खट्टा स्वाद होता है। ऐसे खनिजों की चखकर पहचान की जाती है।

कुछ खनिजों को जब रगड़ा या तपाया जाता है तो उनमें निकलने वाली गंध के द्वारा पहचान की जा सकती है। जब आर्सेनिक मिश्रण को तपाया जाता है तब उसमें से लहसुन की गंध निकलती है। पाइराइट को तपाने से जले गंधक के समान गंध आती है। मृण्मय खनिज को सूंघने पर मिट्टी की गंध आती है।

खनिजों के रूप (Forms of Minerals)

अनुकूल वातावरण में खनिजों के निश्चित रूप बन जाते हैं जिसे क्रिस्टल कहते हैं। खनिजों की पहचान में क्रिस्टल का बहुत महत्व है। जब कोई खनिज क्रिस्टल के रूप में पाया जाता है तब उसे क्रिस्टलीकृत (Crystallized) कहते हैं। जैसे क्वार्ट्ज। जिन खनिजों में क्रिस्टल आकृति ठीक ढंग से नहीं बन पाती है, उनके रूपों को पहचानने में कठिनाई होती हैं, उन्हें क्रिस्टलीय (Crystalline) कहते हैं। कुछ खनिजों में क्रिस्टली बनावट तो होती है परन्तु उनके रूप या आकृति की बिना सूक्ष्मदर्शी यंत्रों के पहचान नहीं की जा सकती। ऐसे रूपों को गूढ़क्रिस्टली (Cryptocrystalline) कहते हैं। जिन खनिजों में रवेदार बनावट नहीं पाई जाती उनके रूपों को अक्रिस्टलीय (Amorphous) कहते हैं।

कुछ खनिजों के क्रिस्टल तो नहीं होते पर उनके कुंजों या समुच्चयों (Aggregate) में कुछ विशेष प्रकार की आकृति या बनावट होती है जिसके द्वारा खनिजों की पहचान की जा सकती है। कुछ आकृतियां इस प्रकार हैं–

1. **सूच्याकार** (Acicular) : इसके क्रिस्टल सुई की आकृति के जैसे पतले और लम्बे होते हैं, जैसे नेट्रोलाइट (चित्र 3.11)।
2. **फलकित** (Bladed) : ये चाकू की फलक या पत्ती के समान चपटे क्रिस्टल होते हैं जैसे कायनाइट।
3. **बादामाकार** (Amygdaloidal) : ये बादाम के आकार के होते हैं और जियोलाइट खनिज में पाये जाते हैं।

चित्र 3.11. नेट्रोलाइट में सूच्याकार आकृति

4. **गुच्छाकार** (Botryoidal) : ये अंगूर के गुच्छों के समान होते हैं तथा मैंग्नीज ऑक्साइड में पाये जाते हैं।
5. **केशिका** (Capillary) : ये बारीक बालों के समान होते हैं तथा निकल सल्फाइड में पाये जाते हैं।
6. **स्तम्भाकार** (Columnar) : ये स्तम्भ के समान होते हैं, जैसे बेरील के प्रिज्म।
7. **संग्रथित** (Concretionary) **या ग्रंथिकी** (Nodular) : ये कंकड़ की तरह गोलीय व अनियमित आकृति वाले होते हैं, जैसे चकमक।
8. **द्रुमाकृतिक** (Dendritic) : ये पेड़ या मॉस के समान होते हैं तथा मैंग्नीज ऑक्साइड में पाये जाते हैं।
9. **रेशेदार** (Fibrous) : ये बारीक बालदार धागे के समान होते हैं तथा एस्बेस्टॉस में पाये जाते हैं (चित्र 3.12)।

चित्र 3.12. एस्बेस्टॉस में रेशेदार आकृति

10. **पत्रित** (Foliated) : इसमें खनिज की पतली–पतली परतें आसानी से अलग हो जाती हैं, जैसे अभ्रक (चित्र 3.13)।
11. **दानेदार** (Granular) : जब खनिज छोटे या बड़े दानों के समूह में हों, जैसे ऑलिवीन।
12. **विकीर्ण** (Radiating) : लम्बे क्रिस्टल एक बिन्दु से किरणों की तरह फैले हुए होते हैं, जैसे जियोलाइट।

13. **गुर्दाकार** (Reniform) : ये गुर्दा या वृक्क के समान गोल आकृति वाले होते हैं, जैसे – हेमेटाइट।

चित्र 3.13. अभ्रक में पत्रित आकृति

14. **सपाट** (Tabular) : इसके क्रिस्टल चौड़ी सपाट सतह वाले होते हैं, जैसे – फेल्सपार।
15. **पटलित** (Lamellar) : वे खनिज जो परतदार हों परन्तु आसानी से जिसकी परत पृथक न हो सके, जैसे जिप्सम।
16. **पिसोलाइटी** (Pisolitic) : ये मटर के दाने के समान गोल होते हैं, जैसे बॉक्साइट।
17. **अण्डकीय** (Oolitic) : जब मटर से भी छोटे दानों का समूह हो, तो अंडकीय कहलाता है, जैसे कैल्साइट।
18. **शल्की** (Scaly) : ये खनिज मछली के शल्कों जैसे दिखाई देते हैं, जैसे ग्रेफाइट।

खनिजों के प्रकाशीय गुण

(Optical Properties of Minerals)

पहले हमनें भौतिक गुणों के आधार पर खनिजों को पहचानने के तरीकों का वर्णन किया है। यहां सूक्ष्मदर्शी से खनिजों की पहचान करने के तरीकों के बारे में जानेंगे। सूक्ष्मदर्शी से जिन गुणों के आधार पर खनिजों की पहचान की जाती है वे प्रकाशीय या प्रकाशिक गुण कहलाते हैं। इन गुणों का अध्ययन करनें के लिए पहले हम कुछ परिभाषित शब्दों एवं प्रकाशिक गुणों के विषय में आवश्यक जानकारी प्राप्त करेंगे।

ध्रुवित प्रकाश (Polarized Light)

प्रकाश का कम्पन, संचरण दिशा के लम्बरूप एक तल में सभी दिशाओं में होता है। इसे साधारण प्रकाश कहते हैं। यदि कम्पन इस तल में एक ही दिशा में परिबद्ध किये जाते हैं तो उसे तलीय ध्रुवित प्रकाश (Plane Polarized Light) या ध्रुवित प्रकाश कहते हैं (चित्र 3.14)। पारदर्शी एवं विदलनयुक्त कैल्साईट द्वारा ध्रुवित प्रकाश प्राप्त किया जा सकता है।

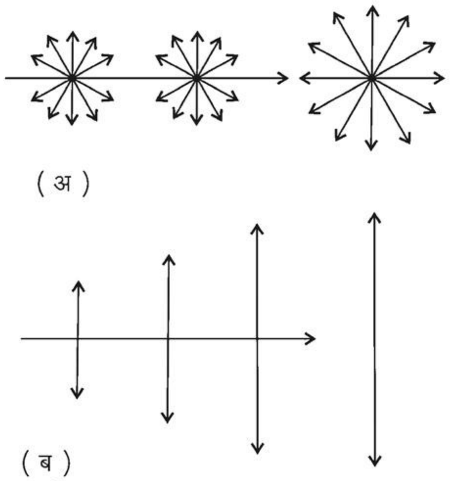

चित्र 3.14. (अ) साधारण प्रकाश एवं (ब) ध्रुवित प्रकाश

समदैशिक एवं असमदैशिक खनिज

(Isotropic and Anisotropic Mineral)

जिन खनिजों में प्रकाश सभी दिशाओं में समान वेग से प्रेषित होता है, उन्हें समदैशिक खनिज कहते हैं जैसे कांच एवं घनीय समुदाय के खनिज–गार्नेट, फ्लोराइट आदि।

वे खनिज, जिनमें प्रकाश विभिन्न दिशाओं में असमान गति से प्रेषित होता है। असमदैशिक खनिज कहलाते हैं। घनीय समुदाय के खनिजों को छोड़कर अन्य सभी क्रिस्टल समुदायों में क्रिस्टलित होने वाले खनिज इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

अपवर्तनांक (Refractive Index)

प्रकाश की किरण जब किसी पदार्थ की सतह पर पड़ती है तब उसमें परावर्तन और अपवर्तन होता है (चित्र 3.15)।

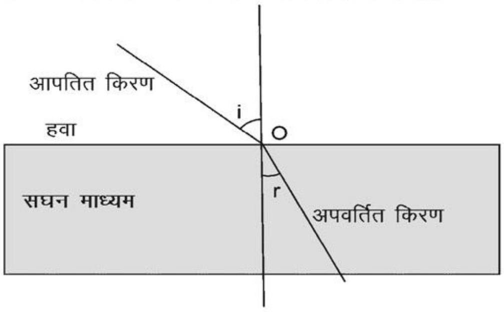

चित्र 3.15

चित्र 3.15 : किसी सतह पर आपतित एवं अपवर्तित किरणों का रेखापथ

अपवर्तन का नियम–

किन्हीं दो माध्यमों को अलग करने वाली सतह पर आपतित किरण से बने कोण एवं उसी सतह से अपवर्तित किरण से बने कोण के ज्याओं का अनुपात निश्चित या स्थिर होता है। इसे अपवर्तनांक (μ म्यू) कहते हैं ।

चित्र क्रमांक 3.15 में दर्शाये अनुसार यदि आपतित कोण 'i' है और अपवर्तित कोण 'r' है तो स्थिरांक या अपवर्तनांक $\mu = \sin i/\sin r$ $\sin i$ = आपतित कोण की ज्या, $\sin r$ = अपवर्तित कोण की ज्या।

खनिजों के प्रकाशीय गुणों के अध्ययन में अपवर्तनांक का मूलभूत महत्व है। विभिन्न पदार्थों के अपवर्तनांकों की तुलना के लिए हमें किसी माध्यम को आधार मानना होता है। यहां हवा को आधार माना गया है जिसका अपवर्तनांक 1 है। जिन खनिजों के अपवर्तनांक में जितनी अधिक भिन्नता होगी उतनी ही उनके कणों की सीमाएं स्पष्ट होगी।

समदैशिक खनिजों में प्रकाश की गति सभी दिशाओं में समान होती है और इसलिए इसका अपवर्तनांक भी स्थिर एवं एक ही होता है। असमदैशिक खनिजों में प्रकाश की गति विभिन्न दिशाओं में अलग–अलग होती है। अतः इनके अपवर्तनांक भी भिन्न दिशाओं में भिन्न–भिन्न होते हैं।

द्विअपवर्तन (Double Refraction)

समदैशिक माध्यम में प्रवेश करने वाली किरण एक ही किरण रहती है यद्यपि वह अपने मार्ग से मुड़ जाती है। इस प्रकार के अपवर्तन को एकल अपवर्तन कहा जाता है। असमदैशिक पदार्थ में प्रवेश करने वाली किरण दो अपवर्तित किरणों में विभक्त होती है। इस घटना को द्विअपवर्तन कहते हैं। द्विअपवर्तन क्रिया रंगहीन एवं पारदर्शी कैल्साइट जो आइसलैण्डस्पार कहलाता है के द्वारा आसानी से देखा जा सकता है। यदि इस कैल्साइट के टुकड़े को किसी बिन्दु पर रखते हैं तो इसमें दो बिन्दु दिखायी देते हैं। कैल्साइट को घुमाने पर एक बिन्दु स्थिर रहता है जबकि दूसरा बिन्दु इस स्थिर बिन्दु के चारों ओर घूमता है। स्थायी बिन्दु साधारण बिम्ब कहलाता है एवं इसे बनाने वाली किरण साधारण किरण कहलाती है। अस्थायी बिन्दु असाधारण बिम्ब कहलाता है एवं इसे बनाने वाली किरण को असाधारण किरण कहते हैं (चित्र 3.16)।

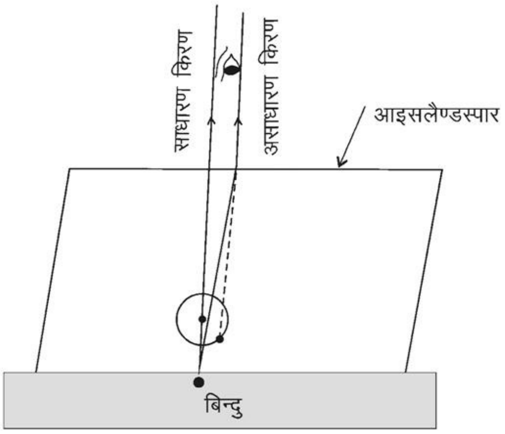

चित्र 3.16 द्विअपवर्तन – साधारण एवं असाधारण किरणों का रेखापथ

एक अक्षीय एवं द्विअक्षीय खनिज
(Single Axis and Double Axis Minerals)

कुछ असमदैशिक खनिजों में एक दिशा एवं कुछ में दो दिशाएं ऐसी होती हैं जिसमें साधारण एवं असाधारण किरणों की गतियां समान होती हैं, अर्थात् उन दिशाओं या दिशा में द्विअपवर्तन नहीं होता है। यह दिशा प्रकाशिक अक्ष कहलाती है। जिन खनिजों में ऐसी एक ही दिशा होती है उन्हें एक अक्षीय खनिज कहते हैं। चतुष्कोणीय एवं षट्कोणीय समुदायों के खनिज एक अक्षीय होते हैं। जिनमें ऐसी दो दिशाएं होती हैं उन्हें द्विअक्षीय खनिज कहते हैं। विषम लम्बाक्ष, एकनताक्ष एवं त्रिनताक्ष समुदायों के खनिज द्विअक्षीय खनिज होते हैं।

निकॉल प्रिज्म (Nicol Prism)

खनिजों के सूक्ष्मदर्शी अध्ययन के लिए ध्रुवित प्रकाश आवश्यक है। यह ध्रुवित प्रकाश निकॉल या निकॉल प्रिज्म, जो कि आइसलैंडस्पार का बना होता है के, द्वारा पाया जाता है। सूक्ष्मदर्शी में निकॉल दो जगह पर लगता है, स्टेज के नीचे वाले को ध्रुवक एवं स्टेज के ऊपर वाले को विश्लेषक कहते हैं। इन्हें सूक्ष्मदर्शी में इस तरह लगाया जाता है कि इनके लघु विकर्ण आपस में लम्बरूप में रहते हैं।

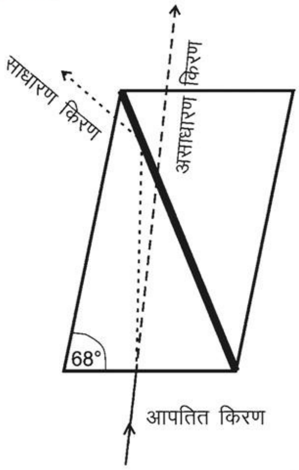

चित्र 3.17. निकॉल प्रिज्म के कनाडा बालसम द्वारा साधारण किरण का पूर्ण परावर्तन जबकि असाधारण किरण प्रेषित

इसे बनाने के लिए समचतुर्भुज आइसलैंडस्पार के लम्बे किनारों को इस प्रकार घर्षित किया जाता है कि वह लम्बे किनारे से 68^0 का कोण बनाये। इस समचतुर्भुज को अनुदैर्ध्य (longitudinally) रूप से दो भागों में काट कर इन दोनों भागों की सतहों को पॉलिश कर कनाड़ा बालसम से पुनः जोड़ा जाता है। कनाड़ा बालसम की तह इस प्रकार की होती है कि वह साधारण किरण का पूर्ण परावर्तन करती है और असाधारण किरण को प्रेषित करती है (चित्र 3.17)। इस असाधारण किरण से प्राप्त प्रकाश भी ध्रुवित प्रकाश कहलाता है। इसे निकॉल नामक वैज्ञानिक ने बनाया था इसलिए इसका नाम निकॉल या निकॉल प्रिज्म रखा गया है।

ध्रुवण सूक्ष्मदर्शी का वर्णन एवं कार्य प्रणाली

खनिजों के प्रकाशीय गुणों की जानकारी के लिए ध्रुवण सूक्ष्मदर्शी का ज्ञान होना आवश्यक है। यह सूक्ष्मदर्शी अन्य सूक्ष्मदर्शियों से इस बात में भिन्न है कि इसमें निकॉल प्रिज्म का उपयोग, ध्रुवित प्रकाश प्राप्त करने के लिए किया जाता है (चित्र 3.18)। वर्णन की दृष्टि से सूक्ष्मदर्शी को तीन भागों में बांटा जा सकता है परन्तु एक सामान्य सूक्ष्मदर्शी में निम्नलिखित भाग होते हैं –

1. आधार (Base)
2. स्तम्भ (Pillar)
3. भुजा (Arm)
4. नली (Tube)
5. स्थूल समंजन (Coarse adjustment knob)
6. सूक्ष्म समंजन (Fine adjustment knob)
7. ध्रुवक (Polariser)
8. संग्राही (Condenser)
9. मध्य पट्ट (Diaphragm)
10. घूर्णीय पीठ (Rotating stage)
11. क्लिप (Clip)
12. अभिदृश्यक (Objectives)
13. छिद्र (Slot)
14. विश्लेषक (Analyzer)
15. बरट्रेंड लैंस (Bertrand lens)
16. नेत्रिका (Eye piece)

सूक्ष्मदर्शी के यांत्रिक भाग : सूक्ष्मदर्शी का पूरा संतुलन उसके आधार पर होता है। इनसे स्तम्भ (आधारिक) जुड़ा होता है। स्तम्भ का ऊपरी भाग भुजा कहलाता है। भुजा से सूक्ष्मदर्शी की नली लगी होती है तो निचले भाग से घूर्णीय पीठ। पीठ 0^0 से 360^0 तक अंकित या चिन्हित होती है और उसे घुमाया जा सकता है। सूक्ष्मदर्शी की नली को स्थूल समंजन एवं सूक्ष्म समंजन की सहायत से आवश्यकतानुसार ऊपर नीचे किया जा सकता है।

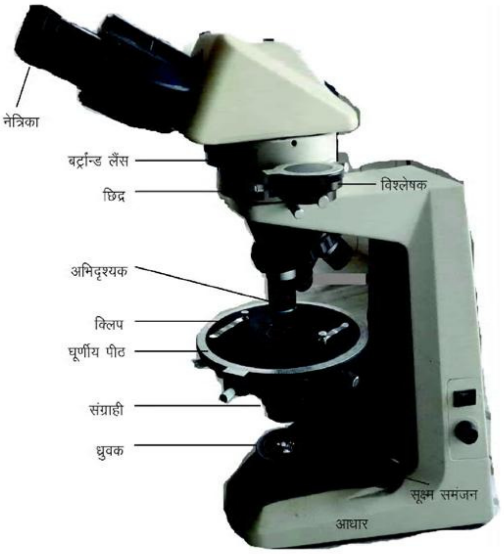

चित्र 3.18 शैलीकीय सूक्ष्मदर्शी (निकॉन कम्पनी निर्मित)

सूक्ष्मदर्शी का निचला भाग : सूक्ष्मदर्शी के निचले भाग में एक दर्पण होता है। यह एक ओर समतल तो दूसरी ओर अवतल होता है। यह दर्पण प्रकाश को ऊपर की ओर परावर्तित करता है। आधुनिक सूक्ष्मदर्शियों में दर्पण की बजाय बिजली का बल्ब ही लगा रहता है। बल्ब या दर्पण के ऊपर एवं घूर्णीय पीठ के बीच ध्रुवक और कण्डेन्सर लगे होते हैं। इन्हें आवश्यकतानुसार अन्दर या बाहर किया जा सकता है। ध्रुवक का काम प्रकाश को ध्रुवित करना है। ध्रुवक से असाधारण किरण निकलती है। जो ध्रुवक के लघु विकर्ण के समानान्तर कंपन करती है। यह दिशा ध्रुवक की कंपन दिशा कहलाती है।

घूर्णीय पीठ पर खनिज का पतला काट (Thin Section) रखकर इसे उस पर लगी क्लिपों द्वारा दबाया जाता है ताकि खनिज काट अपनी जगह से हिले नहीं।

सूक्ष्मदर्शी का ऊपरी भाग : सूक्ष्मदर्शी की नलिका में अभिदृश्यक बरट्रेंड लेन्स, विश्लेषक एवं नेत्रक या नेत्रिका होते हैं। इनके अतिरिक्त दो खांचे होती हैं। जिनमें आवश्यकतानुसार बेरेक कम्पेन्सेटर या किसी एक्सेसरी जैसे क्वार्ट्ज वेज, माइका प्लेट या जिप्सम प्लेट को प्रवेशित किया जा सकता है।

खनिजों के पतले काटों का अध्ययन

(Study of Thin Sections of Minerals)

खनिजों के प्रकाशीय गुणों के अध्ययन के लिए पतले काटों की आवश्यकता होती है। जिनकी मोटाई 0.03 मिमी से अधिक नही होनी चाहिए। पारदर्शक खनिजों के पतले काटों के प्रकाशीय गुणों का सूक्ष्मदर्शी द्वारा अध्ययन में निम्नलिखित प्रक्रिया को अपनाया जाता है–

अ) साधारण एवं ध्रुवित प्रकाश में (Under Ordinary Light): ध्रुवक एवं विश्लेषक को सूक्ष्मदर्शी से बाहर कर खनिज को साधारण प्रकाश में देखा जाता है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित गुणों का अध्ययन किया जाता है–

1. क्रिस्टलीय रूप (Crystal form)
2. वर्ण (Colour)
3. खनिज की उच्चावच या स्पष्टता (Relief)
4. विदलन (Cleavage)
5. अन्तर्वेश या अन्तर्विष्ट (Inclusion)

ब) ध्रुवित प्रकाश में (Under Polarized Light): ध्रुवक को समतल दर्पण एवं घूर्णीय पीठ के बीच में लाया जाता है। इससे निम्नलिखित प्रकाशीय गुणों का अवलोकन किया जाता है–

6. बहुवर्णता (Pleochroism)
7. बहुवर्णीय प्रभामंडल (Pleochroic Halos)
8. झिलमिलाना (Twinkling)

क्रम संख्या 1 से 5 तक के गुणों का अवलोकन साधारण प्रकाश में किया जाता है।

स) क्रॉसित निकॉल में (Under Crossed Nicols): सूक्ष्मदर्शी में दो निकॉल प्रिज्म होते हैं, मंच के नीचे लगने वाले निकॉल को ध्रुवक एवं मंच के ऊपर लगने वाले निकॉल को विश्लेषक कहते हैं। ध्रुवक एवं विश्लेषक में ध्रुवित प्रकाश के कम्पनों की दिशा एक दूसरे के लम्बवत होती है एवं इन दोनों का जब सूक्ष्मदर्शी में एक साथ उपयोग करते हैं तो उस अवस्था को सूक्ष्म दर्शी की क्रॉस निकॉल अवस्था कहते हैं (चित्र 3.19)। यदि पीठ पर पतला काट नहीं रखा हो तो इस समय दृष्टि क्षेत्र में पूर्ण अंधकार होता है। यदि ऐसा नहीं है तो ध्रुवक को थोड़ा घुमाकर ऐसा किया जाता है। इस अवस्था में देखे जाने वाले गुण इस प्रकार हैं –

9. समदैशिक या असमदैशिक (Isotropic or Anisotropic)
10. विलोपन (Extinction)

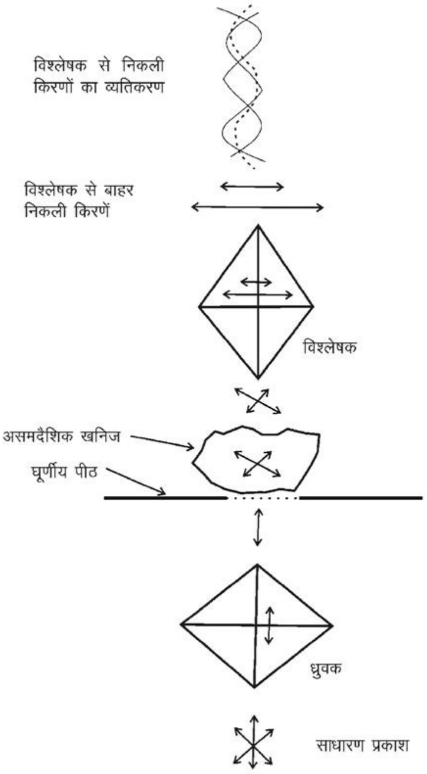

चित्र 3.19 : खनिज काट में क्रॉसित निकॉल में होने वाली घटनाएं

11. ध्रुवीय या व्यतिकरण वर्ण (Polarization or Interference Colour)
12. यमलन (Twinning)
13. मंडलन (Zoning)
14. परिवर्तन (Alteration)
15. व्यतिकरण आकृति
16. प्रकाशिक चिन्ह

द) अभिसारी प्रकाश में (Under Condensed Light) : अवतल दर्पण, कन्डेन्सर एवं उच्च शक्ति का अभिदृश्यक प्रयोग में लाते हुए निकॉल क्रॉस किये जाते हैं। तत्पश्चात् व्यतिकरण आकृति को बरट्रेंड लेन्स की सहायता से या नेत्रिका को निकालकर देखा जाता है। इस अवस्था में व्यतिकरण आकृति के अतिरिक्त एक्सेसरीज की सहायता से खनिज के प्रकाशिक चिह्न का निर्धारण किया जाता है। वर्तमान में अभिसारी प्रकाश में देखे जाने वाले गुणों का अध्ययन नहीं करेंगे परन्तु साधारण एवं ध्रुवित प्रकाश में देखे जाने वाले प्रकाशिक गुणों को समझना अतिआवश्यक है। अतः इनका वर्णन यहां किया जा रहा है।

साधारण एवं ध्रुवित प्रकाश में (Under ordinary and Polarized Light) देखे जाने वाले गुण

1. रूप : जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि खनिज का रूप उसके क्रिस्टल समुच्चय की अवस्था पर निर्भर करता है। इन्हें क्रिस्टल फलकों के विकास के आधार पर तीन वर्गों में बांटा गया है – पूर्णफलकीय, अंशफलकीय एवं अफलकीय क्रिस्टल से बने रूप । पूर्ण फलकीय क्रिस्टलों में फिर भिन्न–भिन्न तरह के रूप मिलते हैं जैसे सूच्याकार, वर्गाकार, त्रिकोणीय, चतुर्भुजीय, अष्टफलकीय, आयताकार या प्रिज्मीय आदि।

2. खनिज की उच्चावच : अपवर्तनांकों की भिन्नता के कारण सूक्ष्मदर्शी में खनिज कणों की सीमा स्पष्ट या धुंधली दिखाई देने को उच्चावच कहते हैं। खनिज की उच्चावच या स्पष्टता खनिज की रूपरेखा की वह स्पष्टता है जो कनाडा बालसम की तुलना में दिखाई देती है। जब खनिज और कनाडा बालसम (अपवर्तनांक 1.54) के अपवर्तनांकों में बहुत अंतर होता है तो खनिज की सीमा स्पष्ट दिखाई देती है । यदि दोनों के अपवर्तनांकों में अन्तर कम होता है तो रूपरेखा स्पष्ट दिखाई नहीं देती। तब यह खनिज की निम्न उच्चावच होती है। इसे निम्न, मध्यम, उच्च एवं अतिउच्च शब्दों से वर्णित करते हैं।

3. वर्ण : खनिज के पतले काट में दिखाई देने वाले रंगों का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण– घनीय समुदाय के खनिजों के कण वर्णहीन होते हैं या एक ही वर्ण दर्शाते हैं। जैसे गार्नेट हल्का गुलाबी रंग दर्शाता है। अन्य समुदायों के खनिज विभिन्न वर्णोयुक्त या एक वर्णीय या वर्णहीन हो सकते हैं।

4. विदलन : यह खनिज की वह प्रवृत्ति है जिससे खनिज किसी निश्चित दिशाओं या फलकों के समानान्तर सरलता से टूटता या विभक्त होता है। सूक्ष्मदर्शी में विदलन असंतत रेखाओं के समान दिखाई देता है। खनिज एक, दो या तीन दिशाओं में टूट या विभक्त हो सकता है।

5. अन्तर्विष्ट या अन्तर्वेश : कभी–कभी यह देखने में आता है कि खनिज, जिसका अवलोकन किया जा रहा है, में किसी अन्य पदार्थ या खनिज के टुकड़े या कण पाये जाते हैं। इन्हें अन्तर्विष्ट या अन्तर्वेश कहा जाता है जो खनिज के पहचानने में सहायक होते हैं।

6. बहुवर्णता : ध्रुवित प्रकाश में सूक्ष्मदर्शी की पीठ को घुमाने पर जब किसी खनिज के वर्ण या वर्ण की तीव्रता में परिवर्तन होता है तो इस रंग परिवर्तन के गुण को बहुवर्णता कहते हैं। उदाहरण –

अ. **वर्ण परिवर्तन :** हायपरस्थीन खनिज में गुलाबी वर्ण, नीलापन लिए हरे वर्ण में बदलता है।

ब. **वर्ण की तीव्रता में अन्तर :** बायोटाइट में हल्का पीलापन लिए भूरे वर्ण का गहरे भूरे वर्ण में परिवर्तन होता है।

7. बहुवर्णीय प्रभामंडल : मुख्य खनिज में छोटे वृत्ताकार क्षेत्र देखे जा सकते हैं, जो मुख्य खनिज वर्ण की अपेक्षा अधिक तीव्र बहुवर्णीय होते हैं जिन्हें बहुवर्णीय प्रभामंडल कहते हैं। बहुवर्णता के समान ही इसे घूर्णीय पीठ को घुमाकर देखा जाता है।

8. झिलमिलानाः जब सूक्ष्मदर्शी की घूर्णीय पीठ को ध्रुवित प्रकाश में घुमाया जाता है तब खनिज की स्पष्टता या खनिज विदलन दोनों में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन कभी स्पष्ट दिखाई देते हैं तो कभी अस्पष्ट। इस गुण को झिलमिलाना कहते हैं। उदाहरण – केल्साइट, मस्कोवाइट, आदि। यह गुण वर्णहीन खनिजों द्वारा दर्शाया जाता है तथा यह बहुवर्णता से भिन्न होता है।

क्रॉसित निकॉल या क्रॉसित अवस्था में (Under Crossed Nicols): 1 से 8 तक के प्रकाशिक गुणों के अवलोकन हेतु विश्लेषक का उपयोग नहीं किया जाता है, परन्तु सूक्ष्मदर्शी की क्रॉसित निकॉल या क्रॉसित अवस्था में विश्लेषक का उपयोग किया जाता है। क्रॉसित अवस्था में ध्रुवक एवं विश्लेषक की कम्पन की दिशाएं एक–दूसरे के लम्बरूप होती हैं। यदि सूक्ष्मदर्शी पीठ पर पतला काट नहीं है तो क्रॉसित अवस्था में दृष्टि क्षेत्र में पूर्ण अंधकार होता है। ऐसा न होने पर ध्रुवक को थोड़ा घुमाकर पूर्ण अंधकार लाना चाहिए और तत्पश्यात् खनिज का पतला काट सूक्ष्मदर्शीय पीठ पर रखा जाता है।

9. समदैशिक या असमदैशिक : क्रॉसित अवस्था में सर्वप्रथम यह देखना आवश्यक है कि खनिज समदैशिक है या असमदैशिक। समदैशिक खनिज के होने पर पीठ को एक पूर्ण घूर्णन या 360^0 घुमाने पर भी खनिज पूर्ण रूप से काला या अंधकारमय ही बना रहता है। ऐसे खनिज समदैशिक होते हैं। उदाहरण– घनीय समुदाय के खनिज, जैसे गार्नेट। यदि पूर्ण घूर्णन के दौरान खनिज 4 बार काला होता है तो वह असमदैशिक खनिज है।

घनीय समुदाय के सभी खनिज और चतुष्कोणीय एवं षट्कोणीय समुदाय के खनिजों के आधारिक काट समदैशिक होते हैं। आधारिक काट वो होते हैं जो खनिज के क्रिस्टल के 'c' अक्ष के लम्बवत काटे गये हों। चतुष्कोणीय एवं षट्कोणीय समुदायों के खनिजों के आधारिक काटों को छोड़कर अन्य सभी काट और शेष समुदायों यथा विषमलम्बाक्ष, एकनताक्ष तथा त्रिनताक्ष के खनिजों के सभी काट असमदैशिक होते हैं।

10. विलोपन या विलुप्तता : एक अक्षीय खनिजों के आधारिक काटों को छोड़कर जब पतले काट को क्रॉसित निकॉल में देखा जाता है तब पीठ को घुमाने पर हर 90^0 के बाद खनिज विलोपित या विलुप्त हो जाता है। इस घटना को विलोपन या विलुप्तता कहते हैं। इस अवस्था में खनिज पूर्णतः काला दिखाई देने लगता है। यह विलोपन तब होता है जब खनिज की कम्पन

दिशाएं दोनों निकॉलों की कम्पन दिशाओं के दो–दो बार समानान्तर होती हैं। अर्थात् घूर्णन पीठ को 360^0 घुमाने पर यह अवस्था चार बार आती है।

11. ध्रुवीय या व्यतिकरण वर्ण : असमदैशिक खनिज क्रॉसित निकॉल में ध्रुवीय या व्यतिकरण वर्ण दर्शाते हैं। अपवाद है जब खनिज कण विलोपन अवस्था में होते हैं। खनिज कण ध्रुवक से निकले प्रकाश को दो कम्पन दिशाओं में विभक्त करता है जो एक दूसरे के लम्बरूप होते हैं। ये किरणें विश्लेषक की कम्पन दिशा में वियोजित होती हैं और व्यतिकरण होता है। यह इस कारण होता है कि खनिज में किरणें विभिन्न वेगों या गतियों से चलती हैं (क्योंकि उनके अपवर्तनांक भिन्न–भिन्न होते हैं) और जब खनिज से निकलती हैं तो उनमें कलान्तर होता है। यदि तरंग दैर्ध्य कलांतर 1,2,3,... के संगत में होता है तो विश्लेषक के कम्पन तल पर वियोजित होती हैं अर्थात् प्रकाश लुप्त हो जाता है यानि आँख तक कोई प्रकाश नहीं पहुंचता। इस प्रकार एक तरंग दैर्ध्य नष्ट हो जाता है। यदि कलांतर तरंग दैर्ध्य, जब 1/2, 3/2, 5/2,... के संगत में होता है, तब संगत वर्ण या प्रकाश अधिक प्रबलता के साथ दिखता है। इस प्रकार प्राप्त होने वाले वर्णों को व्यतिकरण वर्ण या ध्रुवण वर्ण कहते हैं। मंच को घुमाने से इनमें कोई परिवर्तन नहीं होता, अपितु उनकी तीव्रता में परिवर्तन अवश्य होता है।

श्वेत प्रकाश में क्वार्ट्ज वेज का अध्ययन करें तो उससे ज्ञात होता है कि पृथक–पृथक तरंग दैर्ध्य के विभिन्न घटक (जिससे की श्वेत प्रकाश बनता है) विभिन्न स्थितियों में प्रत्येक प्रकाश को लिए अदीप्ती/अंधेरा (Darkness) और दीप्ती/चमक (Brightness) बताते हैं। परस्पर व्यापी (Overlapping) अदीप्ती एवं दीप्ती के सम्मिश्रण से एक वर्णमाला बनती है उसको न्यूटन का व्यतिकरण वर्ण स्केल कहते हैं।

इन व्यतिकरण वर्णों को निम्नलिखित वर्गों एवं वर्णों में बांटा गया है –

प्रथम क्रम	गहरा धूसर हल्का धूसर धूसरी सफेद पीला नारंगी लाल बैंगनी	प्रबल
द्वितीय क्रम	नीला हरा पीला गुलाबी लाल	मंद
तृतीय क्रम	नीला हरा पीला गुलाबी	↓
उच्चतर क्रम	हल्का पीलापन लिए हरा भूरापन लिए गुलाबी	

प्रायः यह देखा गया है कि प्रथम क्रम में वर्ण एकल या अकेले (जैसे पीला या धूसर) दिखते हैं तो अन्य क्रमों में 2–3 वर्ण एक साथ (लाल, हरा, पीला आदि) दिखाई देते हैं।

12. यमलन : कभी–कभी यह देखने में आता है कि खनिज के एक कण के दो या दो से अधिक भाग भिन्न व्यवहार करते हैं। खनिज कण के एक ओर का भाग विलोपित अवस्था में होता है तो दूसरा व्यतिकरण वर्ण दर्शाता है। जैसे ऑर्थोक्लेज में एक भाग धूसर एवं दूसरा भाग काला वर्ण दर्शाता है। यदि सूक्ष्मदर्शीय पीठ को घुमाया जाये तो इन दोनों प्रकार की पट्टियों का दृश्य एकांतर क्रम में बदलता रहता है अर्थात् काली पट्टियाँ रंगीन हो जाती हैं तथा रंगीन पट्टियाँ काली हो जाती हैं। खनिजों के इस गुण को यमलन कहते हैं।

13. मंडलन : इसे साधारण प्रकाश एवं क्रॉसित अवस्था में देखा जाता है। अक्सर यह देखा गया है कि खनिज कण समान रूप से वर्ण नहीं दर्शाता परन्तु विन्यासित वर्ण पट्ट दर्शाते हैं। ये संकेन्द्री एवं बाहर की ओर होते हैं। गार्नेट, टूरमलीन एवं पायरॉक्सीन संकेन्द्री वर्णवलय दर्शाते हैं। इसे वर्ण मंडलन कहा जाता है।

14. परिवर्तन : कुछ खनिज समय के साथ दूसरे खनिज में परिवर्तित हो जाते हैं। परिवर्तन साधारण प्रकाश में भी देखा जाता है। परन्तु इसे क्रॉसित निकॉल में ज्यादा अच्छी तरह से देखा जा सकता है। सामान्यतः परिवर्तन अक्रॉसित अवस्था में मटमैला या धुंधला दिखता है। परिवर्तन का विकास दरारों एवं विदलनों से शुरू होता है। ये सामान्यतः संमिश्रित ध्रुवीय वर्ण दर्शाते हैं। उदाहरण– ऑलिवीन का सर्पेन्टीन में और हॉर्नब्लेंड का बायोटाइट में परिवर्तन।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- क्रिस्टल एक ठोस आकृति होती है जो प्रायः सपाट और समतल फलकों के निश्चित विन्यास से बनती है।
- प्राकृतिक रूप से बने क्रिस्टल में समतल सतह जो कि पार्श्व फलकों के साथ निश्चित कोण बनाते हुए होती हैं, को फलक कहते हैं।
- किसी भी क्रिस्टल की बाह्य बनावट को आकृति कहते हैं।
- किसी भी क्रिस्टल में फलकों की स्थिति का निर्णय करने के लिए ऐसे तीन अक्षों की कल्पना की गई है जो कि क्रिस्टल के केन्द्र से गुजरती है तथा ये एक दिशा में नहीं होती है। इन्हीं काल्पनिक रेखाओं को क्रिस्टलीय अक्ष कहते हैं।
- घनीय समुदाय में तीनों क्रिस्टलीय अक्षों की लम्बाई बराबर होती हैं और तीनों अक्ष आपस में समकोण बनाते हुए क्रिस्टल के केन्द्र पर मिलते हैं।

- षट्कोणीय समुदाय में तीन के स्थान पर चार क्रिस्टलीय अक्ष होते हैं।
- खनिज प्राकृतिक रूप से बना वह अकार्बनिक पदार्थ है जिस की निश्चित रासायनिक संगठन एवं परमाणु संरचना होती है।
- आज लगभग दो हजार प्रकार से भी ज्यादा खनिज खोजे जा चुके हैं।
- जिन खनिजों के संयोजन से शैले बनती हैं, उन्हें शैलकर खनिज कहते हैं।
- अनेक खनिज अपनी क्रिस्टल संरचना के फलस्वरूप किसी विशिष्ट दिशा या दिशाओं में आसानी से विभक्त हो जाते हैं। खनिजों के इस विशेष प्रकार से टूटने की प्रवृत्ति को विदलन कहते हैं।
- विदलन की दिशा के अतिरिक्त किसी दूसरी दिशा में खनिज के टूटने के व्यवहार को विभंग कहते हैं।
- जिस खनिज को चाकू से काटते हैं और यदि उस खनिज का चूर्ण ज्यादा निकलता है आवाज कम आती है तो उस खनिज की कठोरता कम होगी। जिस खनिज की कठोरता अधिक होती है उसे चाकू से काटने पर चूर्ण कम निकलता है पर आवाज अधिक आती है।
- सूक्ष्मदर्शी से खनिजों के जिन गुणों की पहचान की जाती है वे गुण प्रकाशिक गुण कहलाते हैं।
- प्रकाश का कम्पन, संचरण दिशा के लम्बरूप एक तल में एक ही दिशा में परिबद्ध किये जाते हैं तो उसे ध्रुवित प्रकाश कहते हैं।
- जिन खनिजों में प्रकाश सभी दिशाओं में समान वेग से प्रेषित होता है, उन्हें समदैशिक खनिज कहते हैं जैसे कांच एवं धनीय समुदाय के खनिज–गार्नेट, फ्लोराइट आदि।
- वे खनिज, जिनमें प्रकाश विभिन्न दिशाओं में असमान गति से प्रेषित होता है। असमदैशिक खनिज कहलाते हैं।
- अपवतर्नाकों की भिन्नता के कारण सूक्ष्मदर्शी में खनिज कणों की सीमा स्पष्ट या धुंधली दिखाई देने को उच्चावच कहते हैं।
- ध्रुवित प्रकाश में सूक्ष्मदर्शी की पीठ को घुमाने पर जब किसी खनिज के वर्ण या वर्ण की तीव्रता में परिवर्तन होता है तो इस रंग परिवर्तन के गुण को बहुवर्णता कहते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मोती की चमक के समानवाली खनिज की चमक को क्या कहते हैं ?

   (अ) मुक्ता (ब) कांचाभ
   (स) रेश्मी (द) मोमी

2. विषमलम्बाक्ष क्रिस्टल समूह के अक्ष होते हैं ?

   (अ) तीनों असमान एवं आपस में समकोण बनाते हुए
   (ब) तीनों समान एवं आपस में समकोण बनाते हुए
   (स) तीनों समान एवं आपस में 120^0 का कोण बनाते हुए
   (द) तीनों समान एवं कोई कोण नहीं

3. कैल्साइट की कठोरता कितनी होती है ?

   (अ) 4 (ब) 5
   (स) 6 (द) 3

4. निम्नलिखित में से कौनसा प्रकाशीय गुण सूक्ष्मदर्शी के क्रॉसित अवस्था में नहीं देखा जाता है ?

   (अ) व्यतिकरण वर्ण (ब) विलोपन
   (स) बहुवर्णता (द) असमदैशिकता

5. वह क्रिस्टल रूप या आकृति जिसमें लम्बे क्रिस्टल एक दूसरे से किरणों की तरह फैले हुए होते हैं कहलाती है–

   (अ) पटलित (ब) रेशेदार
   (स) सूच्याकार (द) विकीर्ण

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. खनिज की परिभाषा लिखो।
2. क्रिस्टल किसे कहते हैं ?
3. अन्तःफलक कोण क्या है ?
4. फलक किसे कहते हैं ?
5. पारदर्शकता से आप क्या समझते हैं ?
6. समदैशिक खनिज किसे कहते हैं ?
7. वर्णरेखा क्या है ?
8. षट्कोणीय समुदाय में कितने अक्ष होते हैं ?
9. कांचाभ चमक से आप क्या समझते हैं ?
10. जिप्सम की कठोरता कितनी होती है ?
11. हीरे में कौनसी चमक मिलती है ?
12. सूच्याकार क्रिस्टल रूप कैसा होता है ?
13. ध्रुवित प्रकाश क्या होता है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. खनिज विज्ञान से आप क्या समझते हैं ?
2. क्रिस्टल विज्ञान की परिभाषा लिखो ?
3. मोज का कठोरता मापक्रम लिखिए।
4. विभंग किसे कहते हैं ?
5. खुली एवं बंद क्रिस्टल आकृति क्या होती है ?
6. सरल एवं संयुक्त क्रिस्टल आकृति से आप क्या समझते हैं?
7. खनिज की परिभाषा लिखो।
8. क्रिस्टल की परिभाषा दीजिए।
9. कठोरता क्या है ?
10. चमक से आप क्या समझते हैं ?
11. बहुवर्णता किसे कहते हैं ?
12. शंखाभ विभंग की परिभाषा दो।
13. चतुष्फलकीय क्रिस्टल समुदाय के अक्षों को चित्र द्वारा समझाइये।
14. विलोपन क्या है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. खनिजों के भौतिक गुणों का संक्षिप्त में वर्णन करो।
2. खनिजों के प्रकाशीय गुण बताइये।
3. क्रिस्टल समुदाय का वर्गीकरण कीजिए।
4. क्रिस्टलिय अक्षों का वर्णन कीजिए।
5. द्विअपवर्तन को समझाइये।

उत्तरमालाः 1. (अ) 2 (अ) 3 (द) 4 (स) 5 (द)

अध्याय – 4

शैल विज्ञान
(Petrology)

शैल विज्ञान भूविज्ञान की वह शाखा है जिसके तहत शैलों की उत्पत्ति, गठन, संरचना, शैलों के मिलने की अवस्था एवं उनके वर्गीकरण आदि का अध्ययन किया जाता है।

शैल की परिभाषा (Definition of Rock)

शैल प्राकृतिक रूप से ठोस खनिज समुच्चय (Aggregate) से बनी होती है। जो कि भूपर्पटी (Earth crust) का निर्माण करती है।

शैलों को मुख्य रूप से तीन भागों में बांटा गया है–

1. आग्नेय शैलें (Igneous Rocks)
2. अवसादी शैलें (Sedimentary Rocks)
3. कायान्तरित शैलें (Metamorphic Rocks)

आग्नेय शैलें (Igneous Rocks)

आग्नेय शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के अग्नि (Ignis) शब्द से हुई है एवं आग्यने शैलें उन्हें कहते हैं जो मूलरूप से गरम एवं तरल पदार्थ के ठण्डा एवं ठोस होने से बनती हैं। पृथ्वी की सतह के नीचे बने इस गरम एवं तरल द्रव्यमान को मैग्मा कहते हैं। मैग्मा मुख्य रूप से ऑक्सीजन, सिलीकन, एल्युमिनियम, लौह, कैल्सियम, मैग्निशियम, सोडियम, पोटेशिमय, टाइटेनियम आदि से बना होता है। इसमें पानी की भाप एवं विभिन्न गैसें भी होती हैं। यही मैग्मा जब ज्वालामुखी द्वारा भूसतह पर आ जाता है तो हम इसे लावा कहते हैं।

भूपर्पटी के अन्दर मैग्मा के ठोस होने से बनी शैलों को अन्तर्वेधी (Intrusive) शैलें कहते हैं जबकि भूपर्पटी के ऊपर बाहर आये लावा के ठोस होने से बनी शैलों को बहिर्वेधी (Extrusive) शैलें कहते हैं।

आग्नेय शैलों की उत्पत्ति (Origin of Igneous Rocks)

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि आग्नेय शैलों की उत्पत्ति मैग्माओं के जमने से होती है, मैग्मा में विभिन्न रासायनिक संघठन विद्यमान होते हैं, जिनमें मौजूद तत्वों की रासायनिक प्रवृत्ति, उपस्थित ताप एवं दाब के अनुसार खनिजों का निर्माण होता है, जिस तरह के खनिज एक साथ बनेंगे उसी अनुसार भिन्न–भिन्न आग्नेय शैलों का निर्माण होगा। विभिन्न तरह के खनिजों का निर्माण मैग्माओं के विभेदन के कारण होता है। विभेदन ऐसा प्रक्रम है जिसमें एक मूल समांग मैग्मा ऐसे भागों में विभक्त हो जाता है जिनका रासानयिक संघठन पृथक–पृथक होता है। मैग्माओं के विभेदन का प्रकृम भिन्न–भिन्न तरीकों से सम्पूर्ण होता है। जैसे – द्रव अमिश्रणीयता (liquid immissibility) विभेदन में दो रासायनिक संघठन विमिश्रण (Unmixed) में रहते हैं तथा उनके जमने से जो शैल बनेगी वह भिन्न होगी। मैग्मा का विभेदन क्रिस्टलन (Crystallization) द्वरा भी होता है जिसमें खनिजों के क्रिस्टलित होने के ताप एवं दाब के पैमाने अलग–अलग होते हैं, कुछ खनिज 1000° सेंटीग्रेड पर क्रिस्टलित होते हैं तो कुछ खनिज 600° सेंटीग्रेड पर क्रिस्टलित होते हैं। इस तरह भिन्न–भिन्न तापमान पर पृथक–पृथक खनिजों का निर्माण होगा। मैग्माओं में विभेदन गुरुत्वीय (Gravitational) विभेदन द्वारा भी होता है जिसमें भारी खनिज तल में सबसे पहले जमा हो जाते हैं तथा कम आपेक्षिक घनत्व वाले बाद में जमते हैं। इस तरह अलग–अलग खनिजों के स्तर बन जाते हैं। मैग्मा का विभेदन निस्पंदन (infiltration) द्वारा भी होता है। यह विभेदन अपेक्षाकृत अधिक तरल मैग्माओं में होता है जब भारी खनिजों के क्रिस्टलों के जाल बनते हैं तथा उस अवस्था में कोई बाह्य दाब पड़ता है तो उन क्रिस्टलों में व्याप्त मैग्मा का निस्पंदन हो जाता है तथा वो मैग्मा एक पृथक शैल बना देता है। इस तरह एक समांग मैग्मा के विभेदन से विभिन्न तरह की आग्नेय शैलों की उत्पत्ति होती है।

आग्नेय शैलों के प्रकार (Types of Igneous Rocks)

भूवैज्ञानिक उपस्थिति के आधार पर आग्नेय शैलों को तीन प्रकारों में विभेदित किया गया है –

1. वितलीय शैलें (Plutonic Rocks),

2. ज्वालामुखी शैलें (Volcanic Rocks) एवं

3. अधिवितलीय शैलें (Hypabyssal Rocks)।

1. **वितलीय शैलें** : वो शैलें जो बहुत गहराई में मैग्मा से बनती हैं, वितलीय शैलें कहलाती हैं। इनमें दीर्घ से मध्यम आकार के कणों का गठन होता है। उदाहरण– ग्रेनाईट।

2. **ज्वालामुखीय शैलें** : ये शैलें लावा से पृथ्वी की सतह पर बनती हैं। इनमें सूक्ष्म कणीय गठन होता है। उदाहरण– बेसाल्ट।

3. **अधिवितलीय शैलें** : ये शैलें उपरोक्त दोनों के बीच की अवस्था में बनती हैं, यानि न ही ज्यादा गहराई और न ही पृथ्वी की सतह पर बनती हैं। ये प्रायः पृथ्वी की सतह के नीचे 2 किमी की गहराई तक बनती है। इनमें दीर्घक्रिस्टल–अन्तर्वेशी (Porphyritic) गठन मिलता है। उदाहरण– डोलेराइट (Dolerite)

आग्नेय शैलों के गठन (Textures of Igneous Rocks)

आग्नेय शैलों के गठन से तात्पर्य है कि उनमें उपस्थित खनिजों का आकार (Size), आकृति (Shape) एवं उनके विन्यास (arrangement, fabric) का अध्ययन। गठन के अध्ययन के लिए निम्नलिखित चार बातों का ध्यान रखना जरूरी है –

1. क्रिस्टलन की मात्रा या क्रिस्टलता (Degree of Crystallization or Crystallinity)
2. खनिजों के कणों का आकार या कणिकता (Size of Mineral Grains or Granularity)
3. क्रिस्टलों की आकृति (Shape of Crystals) और
4. खनिज कणों का आपसी सम्बन्ध (Mutual Relation Between Mineral Grains)

1. क्रिस्टलता

क्रिस्टलित और अक्रस्टलित खनिज पदार्थों के पारस्परिक अनुपात से क्रिस्टलता मापी जाती है। जो शैल पूर्णतया क्रिस्टलों से बनी हो उसे पूर्णक्रिस्टली (Holocrystalline) कहते है। जो शैल पूर्णतया अक्रिस्टलीय या कांचाभ (Glassy) प्रकृति के पदार्थ से बनी हो तो उसे पूर्णकांचिक (Holohyaline) कहते हैं। जब शैल कुछ क्रिस्टलों एवं कुछ कांच से बनी हो तो उसे अंशक्रिस्टली (Merocrystalline/ hypocrystaline) शब्द से वर्णित किया जाता है।

2. कणिकता

शैलों के खनिज कणों या क्रिस्टलों का आकार एक मिलीमीटर से भी कम सूक्ष्मता से लेकर एक मीटर से भी बड़ा हो सकता है। यदि क्रिस्टल नग्न नेत्रों से दिखाई दें तो शैल को दृश्यक्रिस्टली (Phaneric) कहते हैं। अगर नग्न नेत्रों से नहीं दिखाई दे तो अदृश्यक्रिस्टली (Aphanitic) कहते हैं। यदि दृश्यक्रिस्टली शैलों के खनिज क्रिस्टलों का औसत व्यास पांच मिमी से अधिक हो तो उन्हें स्थूलकणी (Coarse grained) शैलें, अगर उनका व्यास 5 से 1 मिमी के बीच में हो तो मध्यकणी (Medium grained) और 1 मिमी से कम होने पर सूक्ष्मकणी (Fine grained) कहते हैं। अदृश्यक्रिस्टली शैल के क्रिस्टल अगर सूक्ष्मदर्शी की सहायता से देखे जा सकते हैं तो उसे सूक्ष्मक्रिस्टली (Microcrystalline) कहते हैं। यदि सूक्ष्मदर्शी से नहीं दिखाई दें तो उसे गूढक्रिस्टली (Cryptocrystalline) शैल कहते हैं।

3. क्रिस्टलों की आकृति

जब किसी शैल में क्रिस्टल पूर्णतया फलकों से सीमित हों तो उसे पूर्णफलकीय (Euhedral) कहते हैं और जब क्रिस्टल फलक अनुपस्थित हों तो उसे अफलकीय (Anhedral) कहते हैं। उन दोनों के मध्य की दशा में अंशफलकीय (Subhedral) कहा जाता है। इसके अलावा जो क्रिस्टल प्रत्येक दिशा में प्रायः समानतः विकसित हों वे समविमीय (Equidimensional) कहलाते हैं। जो क्रिस्टल दो दिशाओं में तीसरी की अपेक्षा अधिक विकसित हों वे सपाट (Tabular) कहे जा सकते हैं। अन्य आकृतियां पट्ट (Plates), पत्रक (Flakes), शल्क (Scales) इत्यादि हैं। जो क्रिस्टल एक दिशा में दो अन्य दिशाओं की अपेक्षा अधिक विकसित हों वो प्रिज्मीय (Prismatic) कहलाते हैं।

4. क्रिस्टलों का पारस्परिक सम्बन्ध

पारस्परिक सम्बन्धों पर आधारित गठन को समकणिक (Equigranular), असमकणिक (Inequigranular), दैशिक (Directive) एवं अन्तःवर्धित (Intergrown) समुदायों में विभाजित कर सकते हैं। जिनका वर्णन नीचे दिया जा रहा है –

समकणिक गठन : समकणिक गठनों में समस्त घटक खनिजों के क्रिस्टल या कण प्रायः समान आकार के होते हैं। ये क्रिस्टल पूर्णफलकीय, अफलकीय या अंशफलकीय हो सकते हैं।

असमकणिक गठन : जब किसी आग्नेय शैल के घटक खनिजों के कणों के आकार में विभिन्नता पाई जाती हैं तो उसे असमकणिक गठन कहते हैं। इसमें दो महत्वपूर्ण गठन होते हैं। दीर्घक्रिस्टल–अन्तर्वेशी और लघुक्रिस्टल अन्तर्वेशी। दीर्घक्रिस्टल–अन्तर्वेशी (Porphyritic) गठन में बड़े क्रिस्टल अंशक्रिस्टली या कांचीय आधात्रिका में समावृत होते हैं (चित्र 4.1)। लघुक्रिस्टल–अन्तर्वेशी (Poikilitic) गठन दीर्घक्रिस्टल अन्तर्वेशी का विपरीत है। इसमें छोटे क्रिस्टल बड़े क्रिस्टलों में परिबद्ध होते हैं।

चित्र 4.1. दीर्घ क्रिस्टल–अन्तर्वेशी संरचना

दैशिक गठन : मैग्मा में क्रिस्टलन के समय प्रवाह के कारण बने गठन दैशिक कहे जाते हैं। इसमें क्रिस्टल पट्टियें बहुधा मैग्मा के प्रवाह की दिशा के समानान्तर विन्यस्त हो जाती हैं।

अन्तरवृद्धि गठन : कई बार आग्नये शैलों के बनते वक्त दो या दो से अधिक खनिजों के एक साथ क्रिस्टलित होने की वजह से वे अन्तवर्धित हो जाते हैं। जिसे अन्तरवृद्धि (Intergrowth) गठन कहते हैं।

आग्नेय शैलों की संरचनाएँ (Structures of Igneous Rocks)

सरंचना शब्द के अन्तर्गत आग्नेय शैलों के कुछ दीर्घ आकार के लक्षण सम्मिलित किये जाते हैं जो कि विभिन्न आकृतियां लिए हुए होते हैं। जैसे – स्फोटगर्ती तथा वातामकी संरचना, खण्डमय एवं रज्जुक पृष्ठ, शिरोधानी संरचना, प्रवाहित पट्ट रचना और संधि संरचना आदि।

1. स्फोटगर्ती तथा वातामकी संरचना (Vesicular and Amygdaloidal Structures) : अधिकांशतः लावाओं में अत्यधिक गैसें सन्निहित होती हैं। जो लावा के धरातल पर आने के बाद बाहर निकलने लगती हैं। पर जल्दी ही लावा की ऊपरी सतह ठण्डी होकर ठोस हो जाती हैं जिसकी वजह से गैंसें लावा के अन्दर ही बंद हो जाती हैं। पर जहां जहां गैसे रहती हैं, वहां उनके आयतन के अनुसार गुहिकाएं या स्फोटगर्त उत्पन्न हो जाते हैं, उनकी विभिन्न प्रकार की आकृतियां होती है। जैसे बेलनाकार, गोलाकार आदि, इन्हें ही स्फोटगर्ती (Vesicular) संरचना कहते हैं (चित्र 4.2)। स्फोटगर्तो में बाद में खनिजों के भर जाने से बनी आकृतियों को वातामक (Amygdale) कहते हैं (चित्र 4.3)। ये आकृतियां कभी–कभी दिखने में बादाम के सदृश्य होती हैं।

चित्र 4.2. स्फोटगर्ती संरचना

चित्र 4.3. वातामक संरचना

2. खण्ड लावा एवं रज्जुक लावा (Block lava and Ropy lava) : बहुत ही गाढ़ा लावा जब पश्थ्वी की सतह पर आता है तो बहुत कम प्रवाह होता है। उसके ठंडा होने पर उसकी सतह खण्डित एवं टूटी हुई प्रतीत होती है। इसे ही खण्ड लावा कहते हैं। इसके विपरीत अत्यन्त गतिशील लावाओं के जमने पर काफी चिकने पृष्ठ बनते हैं, जिनमें बहते हुए डामरपिच के सदृश्य झुर्रियां, मोटे धागों के रूप या रज्जुक बन जाते हैं। इसलिए ऐसे लावा को रज्जुक लावा कहते हैं।

3. शिरोधान संरचना (Pillow Structure) : यह तरल लावाओं में बनने वाली संरचना है। तरल लावा के ठंडा होने से उसकी ऊपरी सतह पर एक पपड़ी जम जाती है, तथा लावा प्रवाह का ह्रास हो जाता है, फिर इस पपड़ी की दरारों में वापस

लावा फूट पड़ता है तो वो वापस बहने लगत है, इस प्रकार प्रत्येक बड़े प्रवाह का स्थान कई छोटे–छोटे प्रवाह ले लेते हैं, फलतः इन छोटे प्रवाहों से एक और छोटा प्रवाह (बहिर्वेध) निकलता है, जो तुरन्त ही एक शिरोधान यानि तकिये के रूप में जम जाता है। इसे ही शिरोधान संरचना कहते हैं (चित्र 4.4)।

चित्र 4.4 शिरोधान संरचना

4. प्रवाही संरचना (Flow Structure) : लावा प्रवाह के प्रक्रम में कुछ लावा में धारियां, पट्टियां या रेखाएं लावा के प्रवाह की दिशा के समान्तर बन जाती हैं, इन्हीं को प्रवाही संरचना कहते हैं।

5. संधि (Joint) **संरचना :** संधि एक प्रकार के विभाजन तल होते हैं जो प्रायः सभी आग्नेय चट्टानों में मिलते हैं, ये क्षैतिज एवं ऊर्ध्वाधर दोनों ही प्रकार की होती हैं तथा बाह्य शक्तियों द्वारा शैलों में अंकित होती हैं (चित्र 4.5)।

चित्र 4.5. संधि संरचना

आग्नेय शैलों का वर्गीकरण
(Classification of Igneous Rocks)

आग्नेय शैलों के वर्गीकरण में शैल–वैज्ञानिकों (Petrologist) के विचार एकमत नहीं हैं, अतः आग्नेय शैलों का वर्गीकरण तीन प्रकार के कारकों पर आधारित हैं जो इस प्रकार हैं–

1. शैलों का रासायनिक संघठन
2. शैलों का खनिज संघठन
3. शैलों के गठनों के विशिष्ट गुण

इसके अलावा उनकी भूवैज्ञानिक उपस्थिति की अवस्था (Mode of occurrence) के अधार पर भी आग्नेय शैलों का वर्गीकरण किया गया है। जिनके बारे में आग्नेय शैलों के प्रकारों में बताया जा चुका है।

आग्नेय शैलों के शेलकर खनिजों में उपस्थित सिलिका की संतृप्तता के आधार पर वर्गीकरण निम्नानुसार किया गया है –

अ) अधिसीलिक (Acidic) शैलें जिसमें सिलिका प्रतिशत 66 से ज्यादा होता है।

ब) अल्पसीलिक (Basic) शैलें जिसमें सिलिका प्रतिशत 45 से 52 होता है।

स) मध्यसलिक (Intermediate) शैलें जिसमें सिलिका प्रतिशत 52 से 66 हो।

द) अत्यल्पसिलिक (Ultrabasic) शैलें जिसमें सिलिका का प्रतिशत 45 से कम हो।

गठन के आधार पर आग्नेय शैलों का तीन वर्गों में वर्गीकरण किया गया है –

अ) दृश्यक्रिस्टली (Phanerocrystalline/ phaneric) शैलें जिनके औसत खनिज कणों का आकार 5 मिली से बड़ा होता है एवं उन्हें आंखों से पहचाना जा सकता है।

ब) अदृश्यक्रिस्टली (Aphanetic) शैलें जिनमें खनिजों का आकार 2 मिली से छोटा होता है। तथा उन्हें सूक्ष्मदर्शी की सहायता से पहचाना जा सकता है।

स) कांचीय (Glassy) शैलें जिनमें सभी खनिज अक्रिस्टलीय होते हैं, जिन्हें पहचानना मुश्किल होता है।

इसके अलावा भूवैज्ञानिक उपस्थिति के आधार पर आग्नेय शैलों को तीन वर्गों में विभेदित किया गया है, ये पहले आग्नेय शैलों के प्रकारों में बतायी जा चुकी है –

1. वितलीय शैलें,
2. ज्वालामुखी शैलें एवं
3. अधिवितलीय शैलें।

आग्नेय शैलों का सारणीबद्ध वर्गीकरण (Tabular Classification of Igneous Rocks)

आग्नेय शैलों की भूवैज्ञानिक उपस्थिति एवं उनके रसायनिक संघठन के आधार पर सारणीबद्ध वर्गीकरण किया गया है जो निम्नानुसार है –

	अधिसिलिक	मध्यम सिलिक	अल्प सिलिक	अत्यल्प सिलिक
ज्वालामुखीय शैलें	रायोलाइट	एन्डेसाइट	बेसाल्ट	पिकराइट
अधिवितलीय शैलें	क्वॉर्ट्ज पोरफायरी	पोरफायराइट	डोलेराइट	–
वितलीय शैलें	ग्रेनाईट	गेब्रो	पेरीडोटाइट	–
सिलिका (SiO_2) %	> 66	52–66	45–66	< 45

आग्नेय शैल – ग्रेनाइट (Granite)

ग्रेनाइट शब्द की व्युत्पति लैटिन शब्द ग्रेनम (Granum) से हुई है, जिसका मतलब कण होता है। यह वितलीय आग्नेय शैल है, यह हल्के रंगों में मिलती है (चित्र 4.6)।

खनिज संगठन : पोटाशिक फेल्सपार एवं क्वॉर्ट्ज मुख्य घटक खनिज होते हैं। गौण घटक खनिजों में अभ्रक, टूर्मेलीन एवं हॉर्नब्लेन्ड खनिज मिलते हैं। क्वॉर्ट्ज विदलन रहित होता है एवं कांचाभ चमक होती है। फेल्सपार में विदलन उपस्थित रहता है।

गठन : इसमें समविमीय खनिज कण बहुतायत में मिलते हैं। यह पूर्णक्रिस्टलीय एवं दृश्यक्रिस्टलीय शैल होती है। खनिजों के क्रिस्टल एवं कण मध्यम से दीर्घ आकार में मिलते हैं। ग्रेनाइट के कुछ प्रकारों में दीर्घक्रिस्टल–अन्तर्वेशी (Porphyritic) गठन मिलता है।

चित्र 4.6. ग्रेनाइट शैल

बेसाल्ट

बेसाल्ट ज्वालामुखीय आग्नेय शैल है। यह वितलीय शैल गैब्रो के तुल्य होती है। यह गहरे रंग के खनिजों से बनी होती है, जिसमें मैग्नीशियम एवं लोह ज्यादा होता है (देखें चित्र 4.2 एवं 4.3)। यह लावा के शीघ्र ठंडा होने से बनती है जो कि पृथ्वी की सतह या समुद्री तल भी हो सकता है। यह लावा प्रवाह के रूप में मिलती है। बेसाल्ट शब्द का अर्थ काला लोहयुक्त पाषाण है ।

खनिज संगठन : बेसाल्ट में ऑगाइट, केल्क प्लेजियोक्लेज एवं लोह ऑक्साइड आवश्यक रूप से होते हैं। सामान्यतः आलिविन भी पाया जाता है। अन्य खनिज हॉर्नब्लेंड, हाइपरस्थीन, बायोटाइट आदि पाये जाते हैं

गठन एवं संरचना : सूक्ष्मकणी से कांचीय प्रवृत्ति का गठन होता है। शीघ्रता से ठंडा होने की वजह से खनिज कणों का आकार बड़ा नहीं हो पाता है। दीर्घक्रिस्टल–अन्तर्वेशी गठन भी सामान्यतः इसमें मिलता है। बहुत सारी गुहिकाएं भी बेसाल्ट के साथ मिलती हैं। इन गुहिकाओं के भरने से वातामकी संरचनाएं बनती हैं।

अवसादी शैलें (Sedimentary Rocks)

अवसादों (Sediments) से बनी शैलों को अवसादी शैलें कहते हैं। अवसादी शैलों का अध्ययन अवसादी शैलिकी (Sedimentary Petrology) के अन्तर्गत करते हैं। जिसमें अवसादों एवं अवसादी शैलों के गुण, उद्‌भव एवं उपस्थिति शामिल है। अवसाद एक प्रकार के ठोस कण होते हैं जिनका निर्माण पहले से विद्यमान शैलों के खण्डन, जैविक पदार्थों के अवशेष या रासायनिक अवक्षेपण से होता है। पूर्ववर्ती शैलों के अपक्षय (Weathering) एवं अपरदन (Erosion) से टूटने के कारण बने छोटे–छोटे टुकड़ों को खण्डज कहते हैं। इन खण्डजों को नदियाँ बहाकर ले जाती हैं तथा समुद्र में निक्षेपित कर देती हैं, इनसे बनी अवसादी शैलें खण्डज (Clastic) अवसादी शैलें कहलाती हैं। इसके अलावा समुद्र में रासायनिक अवक्षेपण के द्वारा निक्षेपित अवसादों से बनी शैलों को अखण्डज (Non-clastic) अवसादी शैलें कहते हैं। अवसादों के एकत्रित होने के प्रक्रम को अवसादन (Sedimentation) कहते हैं। अवसादन के तहत अवसादों का बनना, उनका अभिगमन, निक्षेपण, शीलायन आदि का अध्ययन सम्मिलित है।

अवसादी गठन एवं संरचनाएं (Sedimentary Textures and Structures)

पूर्ववर्ती शैलों के अपघटन व विघटन से जो अवसाद बनते हैं एवं अभिगमन कारकों से वाहित होकर समुद्रों में निक्षेपित होकर शैल बनाते हैं उसे अवसादी शैल कहते हैं। इन शैलों को बनाने वाले अवसाद एवं उनके निक्षेपित होने के तरीकों में निक्षेपण के समय की परिस्थिति, अभिगमन की विधि उस समय के जलवायु एवं शैल बनने के समय के पुराभौगोलिक लक्षणों के प्रमाण मिलते हैं। इन्हें हम अवसादी गठनों एवं संरचनाओं के माध्यम से समझ सकते हैं।

अवसादी गठन (Sedimentary Textures)

अवसादी गठन के तहत शैलों के खनिज घटकों की आकृति, आकार, गोलकरण एवं विन्यास का अध्ययन किया जाता है। इसमें खनिज कणों के भौतिक गुणों एवं आपसी सम्बन्धों का अध्ययन भी किया जाता है।

अवसादी गठनों के लक्षणों से अवसादी शैलों के इतिहास की जानकारी मिलती है। गठन के घटकों को निम्नलिखित लक्षणों के अध्ययन से समझा जा सकता है –

1. कणों का आकार : अवसादी शैलों के कणों का आकार (Size) मुख्यतः अपक्षय की विधियों, पूर्व स्थित शैलों के गठन एवं खनिज संगठन, पदार्थ अधिगमन की विधि एवं अवधि पर आधारित है। पूर्व स्थित शैलों के अपक्षय से उत्पन्न खनिजों का आकार बड़ा होता है जिसका जितनी लम्बी अवधि तक अधिगमन होगा उतने ही वे घर्षण के कारण ज्यादा गोल होते जायेंगे। अगर उन कणों की कठोरता कम है तो वे जल्दी ही छोटे कणों में बदल जायेंगें। अगर घुलनशील है तो और जल्दी गाद बन जायेंगे। इन कणों को इनके आकार के आधार पर विभिन्न नाम दिए गए हैं जिन्हें श्रेणियां कहते हैं। ये श्रेणियां नीचे दी गई सारणी में दर्शाई गयी है –

कणों के आकार या श्रेणी नाम	खण्डों या कणों का व्यास (मिमी में)
गोलाश्म (Boulder)	256 से बड़े
गोलाश्मिका या बटिया (Cobble)	256–64
गुटिका (Pebble)	64–16
बजरी (Gravel)	16–2
बालू (Sand)	2–1 / 16
गाद (Silt)	1 / 16–1 / 256
मृतिका (Clay), धुलि	1 / 256–1 / 2048

2. कणों की आकृति : अवसादी शैलों में उपस्थित घटक खण्डों की आकृति (Shape) अपक्षय द्वारा प्राप्त हुए खण्डों के मूल आकार और उसके अधिगमन की विधि एवं खनिजों के भौतिक लक्षणों पर निर्भर है। कुछ शैलों के अपक्षय से कोणीय, कुछ से गोलाकार (Rounded) एवं कुछ से पत्रकी खण्ड या कण प्राप्त होंगे। खनिजों की प्रकृति अनुसार कणों की आकृति बनती है, जैसे अभ्रक से पत्रक एवं क्वॉट्ज से कोणीय कण बनेंगे।

गोलाई के साथ कणों की वर्तुलता (Sphericity) पर प्रभाव भी अभिगमन कारकों एवं खनिजों की प्रकृति पर निर्भर करता है।

3. गोलकरण (Roundness): अपक्षय से उत्पन्न मूल कोणीय खनिजों एवं शैल खण्डों पर अभिगमन का प्रभाव उन्हें चिकना बनाता है तथा उनकी कोणीयता को दूर करता है, इसे ही हम गोलकरण कहते हैं। गोलकरण की मात्रा आकार पर निर्भर करती है। वृहदतम कण सबसे अधिक गोलाकार होते हैं। गोलकरण में कठोरता का भी योगदान रहता है, जो खण्ड मृदु होते हैं, उनके अधिक गोलाकार होने की सम्भावना होती है। एक अन्य कारक अभिगमन की दूरी है, जिस खण्डज का अधिक अभिगमन होगा उसका उतना ही अधिक मात्रा में गोलकरण होगा। इसके अलावा अभिगमन करने वाली शक्ति (कारक) की प्रकृति पर भी गोलकरण की मात्रा निर्भर करती है। किसी निश्चित दूरी की यात्रा में बर्फ द्वारा ले जाया गया कण इस दृष्टि से सबसे कम और वायु द्वारा ले जाये गये कण सबसे अधिक गोल होंगे। जबकि जल द्वारा वाहित कण मध्य स्थान लेते हैं।

संसजन (Cohesion) : समुद्र में निक्षेपण के समय अवसाद अबद्ध, मृदु और असम्पीडित होते है परन्तु कालान्तर में वे ठोस एवं सम्पीडित हो जाते हैं। यह मुख्य रूप से दो प्रक्रमों द्वारा होता है– कठोरीभवन या वेल्डन (Induration) एवं संयोजन (Cementation)।

उपरिशायी पदार्थों के भार या पृथ्वी की हलचल से उत्पन्न दाब के प्रभाव से सम्पीडन को कठोरीभवन कहते हैं। सम्पीडन अवसादों में उपस्थित अधिकांश जल निचुड़कर बाहर हो जाता है एवं कणों के आपस में निकट आ जाने से सशक्त हो जाते हैं। संयोजन में कणों के बीच संयोजकीय पदार्थों के निक्षेपण से कण परस्पर आबद्ध हो जाते हैं। निक्षेपित होने वाले पदार्थ सिलिका, कैल्शियम, कार्बोनेट या लौह लवण हो सकते हैं।

अवसादी संरचनाएं (Sedimentary Structures)

अवसादी शैलों में विभिन्न प्रकार की संरचनाएं पायी जाती हैं जो कि शैलों के गठन, वर्ण, निक्षेपण के वातावरण आदि के अनुसार बनती हैं।

1. स्तरण (Stratification) : अवसादी शैलों का एक विशिष्ट लक्षण उनका संस्तरों (Beds), परतों (Layers) या स्तरों (Strata) में निक्षेपण होता है और इन्हीं को स्तरण कहते हैं।

स्तरण का बोध खनिज संघठन, गठन, कणों के आकार, संसजन या वर्ण में भिन्नता के कारण होता है तथा वो प्रायः समानान्तर स्तरों में प्रत्यक्ष दिखाई देता है (चित्र क्रमांक 4.7)।

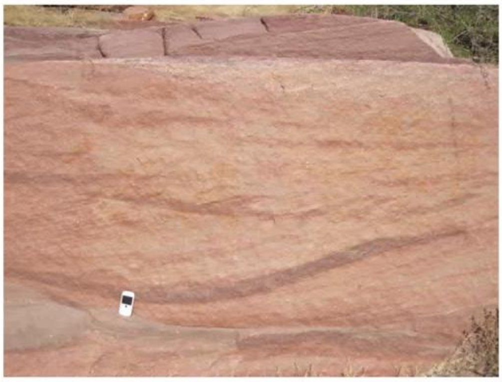

चित्र 4.7 बालूकाश्म में स्तरण संरचना

विभिन्न स्तरों के तल को संस्तरण तल (Bedding plane) कहते हैं। जो दो संस्तरण तलों के बीच आबद्ध हो उसे संस्तर (Bed) अथवा स्तर (Stratum) कहते हैं। कागज के समान बहुत पतली स्तरों को स्तरिका कहते हैं। एक संस्तरण तल बहुदा ऐसे समय को सूचित करता है जब निक्षेपण में विराम रहा होगा।

जब संस्तरण तलों की व्यवस्था प्रायः एक दूसरे के समान्तर हो तो इस घटना को अनुस्तरीय (Concordant) संस्तरण कहते हैं किन्तु बहुधा कुछ विशिष्ट संस्तरों में एक ऐसा गौण स्तरण देखा जाता है जिसका संस्तरण तल प्रधान संस्तरों के प्रति झुका हुआ है। इन्हें क्रॉस (Cross), तिर्यक (Oblique), धारा संस्तरण आदि विभिन्न नामों से जाना जाता है। ये सभी अनुस्तरीय संस्तरण के भीतर आ जाते हैं।

2. **वेग प्रवाही** (Torrential) **संस्तरण :** इस संस्तरण में स्थूल, धारा संस्तरित पदार्थ एवं पतली क्षैतिज स्तरीकाओं में एकान्तरण (Alternation) होता है। इस तरह बनी संरचना को वेग प्रवाही संरचना कहते हैं। यह संस्तरण का एकांतरण पानी के तेज या धीमे वेग के कारण बनता है।

3. **तरंग चिह्न** (Ripple Marks) : तरंग चिह्न या उर्मिल आकृति जो विशिष्ट परिस्थितियों में अवसादी शैलों में परिरक्षित हो जाती हैं। ये तरंग चिह्न लहरों की क्रिया के कारण बनते हैं जो बालू अवसादों पर भी ऐसी तरंग उत्पन्न कर देती है (चित्र 4.8)।

चित्र 4.8. बालूकाश्म में तरंग चिह्न संरचना

4. **पंकविदर** (Mud cracks) : पंकविदर सूक्ष्म कणीय अवसादी शैलों में परिरक्षित होते हैं जो किसी भी जलाशय के नितल में देखे जा सकते हैं, ये विदरों का ऐसा जाल बनाते हैं जो बहुभुजीय क्षेत्रों को परिबद्ध करते हैं। मृण्मय अवसाद जब एक बहुत लम्बे समय वायुमण्डल में अनावृत्त रहती है तो उनके सूखने के कारण पंकविदर बन जाते हैं।

5. **लीक एवं पद–चिह्न** (Tracks and Trails) : ये ऐसे चिह्न हैं जो मृदु अवसाद पर किसी जन्तु के चलने या रेंगने को सूचित करते हैं। एमफिबिया, सरीसृप (Reptiles) और पक्षियों के पदचिह्न प्रायः स्तरों में परिरक्षित पाये जाते हैं।

अवसादी शैलों का वर्गीकरण
(Classification of Sedimentary Rocks)

अवसादी शैलों के सुव्यवस्थित अध्ययन के लिए उनका वर्गीकृत करना आवश्यक है। अवसादी शैलों के गुण वर्गीकरण का आधार बनते हैं, जैसे गठन, रासायनिक एवं खनिज संघठन आदि। उपरोक्त गुणों के आधार पर अवसादी शैलों को मुख्य रूप से दो वर्गों में बांटा गया है– यथा खण्डज एवं अखण्डज अवसादी शैलें।

1. **खण्डज अवसादी शैलें** (Clastic Sedimentary Rocks): यह वर्गीकरण खण्डजों के आकार के आधार पर किया गया है।

अ) गुटिकामय (Rudaceous) : जो कि मुख्यतः गोलाश्म, गोलाश्मिका एवं गुटिका से बनी शैलें होती हैं। उदाहरण संगुटिकाश्म एवं संकोणाश्म शैलें।

ब) बालुकामय (Arenaceous) : मुख्यतः विभिन्न प्रकार की बालुश्रेणी के कणों के सम्पीडन से बनी शैलें हैं। जैसे बालू से बालुकाश्म का निर्माण होता है।

स) **मृण्मय** (Argillaceous) : गाद एवं मृतिका श्रेणी के कणों से बनी हुई शैलें। जैसे गाद के सम्पीडन से गाद प्रस्तर एवं मृतिका के सम्पीडन से शेल (Shale) बनती हैं।

2. अखण्डज अवसादी शैलें (Non-Clastic Sedimentary Rocks): इस समूह की अवसादी शैलों का वर्गीकरण मुख्य रूप से खनिज एवं रासायनिक संघठन पर आधारित है।

अ) **चूनामय** (Calcareous) : कैल्शियम एवं मैग्निशियम के कार्बोनेट से बनी शैलें जैसे चूनाश्म।

ब) **कार्बनमय** (Carbonaceous) : कार्बनमय पदार्थों से बनी शैलें जैसे लिग्नाइट।

स) **लोहमय** (Ferruginous) : लोह या मैंगनीज ऑक्साइड से बनी शैलें, जैसे लोहप्रस्तर।

द) **सिलिकामय** (Siliceous) : सिलिका के विभिन्न रूपों से बनी शैलें, जैसे – चर्ट।

य) **एल्युमिनामय** (Aluminous) : एल्युमिनियम ऑक्साइड से बनी शैलें, जैसे लैटेराइट।

र) **फॉस्फेटमय** (Phosphatic) : फॉस्फोरस युक्त बनी शैलें, जैसे – फॉस्फोराइट।

अवसादी शैल – बालुकाश्म (Sandstone)

बालुकाश्म बालुकामय समूह की अवसादी शैल है जिसमें बालू श्रेणी के खण्डज होते हैं। इसका रंग भूरा, सफेद, हल्का पीला, लाल आदि होते हैं।

खनिज संघठन : क्वार्ट्ज इसका मुख्य खनिज घटक होता है। क्वार्ट्ज कण सिलिकामय, मृदामय, लोहमय या कैल्शियम युक्त सीमेंट से आबद्ध रहते हैं। कुछ बालुकाश्मों में ऊपरीशाही पदार्थों के दबाव के कारण वेल्डिंग होने से भी आबद्ध रहते हैं।

गठन : मध्यम से सूक्ष्म कणों से बनी शैल होती है। खनिज कणों का आकार 2 से 1/16 मिमी के बीच होता है। कणों का आकार कोणीय या गोलाकार हो सकता है।

संरचना : इसमें स्तरण, वेगप्रवाही संस्तरण एवं तरंग चिह्न आदि संरचनाएं विद्यमान होती हैं।

इसका उपयोग मकान बनाने में लिया जाता है। जोधपुर आगरा एवं दिल्ली के किले इसी शैल से बने हैं।

चूनाश्म (Limestone)

कैल्शियम कार्बोनेट के अवक्षेपण से होने वाले निक्षेपण द्वारा चूनाश्म बनता है। कैल्शियम कार्बोनेट का अवक्षेपण भौतिक – रासायनिक परिस्थितियों में परिवर्तन से या जैव कारकों के कारण भी हो सकता है प्रायः इसमें जीवाश्म भी मिलते हैं।

खनिज संघठन : मुख्यतः कैल्साइट से बनी होती है। कुछ मात्रा में डोलोमाइट भी पाया जाता है। चर्ट, गाद एवं मृण्मय भी अशुद्धि के तौर पर पाई जाती हैं। इसके अलावा क्वॉर्ट्ज फेल्सपार एवं लोह ऑक्साइड का मिलना भी सामान्य गुण है।

गठन : चूनाश्म अखंडज शैल होती है। यह ठोस एवं स्थूल होती है। कुछ चूनाश्मों में अण्डाभ संरचना पाई जाती है। सामान्य तौर पर जीवाश्मों की उत्पत्ति के कारण जैविक संरचनाएं भी पायी जाती हैं।

इसका उपयोग सीमेन्ट बनाने में, इमारती पत्थर के रूप में एवं रासायनिक उद्योगों में किया जाता है।

कायान्तरित शैलें (Metamorphic Rocks)

शैल विज्ञान की वह शाखा जिसके अन्तर्गत कायान्तरित शैलों के बनने के कारकों, प्रकारों एवं वर्गीकरण का अध्ययन किया जाता है, को कायान्तरित शैलिकी (Metamorphic Petrology) कहते हैं। वो शैलें जो मौलिक आग्नेय शैलों एवं अवसादी शैलों पर विभिन्न प्रकार के कायान्तरण प्रक्रमों के प्रभाव पड़ने से नई शैलों में परिवर्तित हो जाती हैं, उन्हें कायान्तरित शैलें कहते हैं। कायान्तरण के कारण मौलिक शैलों के गठन, संरचनाओं एवं खनिज संघठनों में भी बदलाव आ जाता है। कायान्तरित शैलों का भी दुबारा कायान्तरण हो सकता है।

कायान्तरण (Metamorphism): ताप, दाब एवं रासायनिक कारणों से मौलिक शैलों में उत्पन्न अनुक्रिया (Response) को कायान्तरण कहते हैं, ये सामान्यतः अधिक गहराई पर होता है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं, कि सामान्यतः कायान्तरण का अर्थ शैल का अंशतः या पूर्णतः पुनःक्रिस्टलन और उसमें नई संरचनाओं का निर्माण होता है। ताप, दाब और रासायनिक वातावरण में परिवर्तनों से एक खनिज समुच्चय के भौतिक एवं रासायनिक संतुलन में उलट–पुलट हो जाता हैं और नवीन सन्तुलन स्थापित होता है जिसमें नये खनिजों का निर्माण होता है। इसी प्रक्रिया को कायान्तरण कहते हैं।

कायान्तरण से किसी शैल के घटक खनिज ऐसे दूसरे खनिजों में परिवर्तित हो जाते हैं जो नई परिस्थितियों में अधिक स्थायी हों एवं ये नये खनिज भी अपने को इस प्रकार विन्यस्त कर लेते हैं कि नवीन वातारण के अधिक अनुकूल संरचनाएं उत्पन्न हो जाती है। अलग अलग परिस्थितियों या कायान्तरण प्रक्रमों से बनने वाली शैलों में खनिज संघठन , गठन एवं संरचनाएं भी भिन्न–भिन्न होती हैं।

ताप, दाब एवं रासायनिक द्रव्य कायान्तरण के मुख्य कारक होते हैं। जिनके कम ज्यादा होने की वजह से विभिन्न प्रकार की कायान्तरित शैलें बनती हैं। इसके अलावा पृथ्वी की सतह से गहराई का भी कायान्तरण पर प्रभाव पड़ता है। कायान्तरित कारकों की भिन्न–भिन्न पैमानों से संयोजित होने से भी विभिन्न प्रकार के कायान्तरित खनिजों का निर्माण होता है। इसके

अलावा मूल शैल के रासायनिक संघठन का भी कायान्तरण पर प्रभाव रहता है। उदाहरण– कैल्शियम कार्बोनेट से निर्मित अवसादी शैल चूनाश्म का कायान्तरण होने पर संगमरमर बनेगा।

कायान्तरित शैलों के गठन
(Textures of Metamorphic Rocks)

कायान्तरित शैलें के गठनो एवं संरचनाओं को उनसे बाह्य सदृश्यता वाली आग्नेय गठनों से विभेद करने के लिए ब्लास्टो (Blasto – पुनः) शब्द का प्रयोग किया जाता है।

कायान्तरण के फलस्वरूप पुनर्क्रिस्टलन से उत्पन्न गठनों में ब्लास्ट शब्द का उपयोग प्रत्यय (अनुलग्न) के रूप में होता है जबकि मूलावशेषी गठनों के लिए ब्लास्टो शब्द उपसर्ग (पूर्वलग्न) की भांति उपयोग किया जाता है।

कायान्तरित शैलों में निम्नलिखित गठन पाये जाते हैं –

1. **कायान्तरण क्रिस्टली गठन** (Crystallographic Texture) : कायान्तरित शैलों का पूर्ण क्रिस्टली गठन कायान्तरण क्रिस्टली गठन कहलाता है।

2. **स्वक्रिस्टली गठन** (Idioblastic Texture): जिन कायान्तरित शैलों में खिनिजों के क्रिस्टल उचित क्रिस्टलीय फलक बना लेते हैं, उसे स्वक्रिस्टली गठन कहते हैं।

3. **पुनःपरक्रिस्टली गठन** (Xenoblastic Textures) : जो खनिज क्रिस्टल अपनी उचित क्रिस्टल आकृति नहीं बना पाते हैं, उन्हें परब्लास्ट / पुनःपरक्रिस्टली गठन कहते हैं।

4. **मूलावशेषी गठन** (Palimpest/Relict Texture) : जब मूल शैल के गठन कायान्तरित शैल में रक्षित रह जाते हैं तो उसे मूलावशेषी गठन कहते हैं।

5. **लक्ष्य पुनः क्रिस्टली गठन** (Porphyroblastic Texture): जब स्वब्लास्टिंग क्रिस्टल हों तथा सूक्ष्मकणी आधात्रिका में अंतः स्थापित हों, तो इसे लक्ष्य पुनःक्रिस्टली (पॉरफिरोब्लास्टिक) गठन कहते हैं।

6. **पुनःक्रिस्टल अन्तर्वेशी गठन** (Blastoporphyritic Texture) : जब आग्नेय शैलों के मूल क्रिस्टल अन्तर्वेशी गठन के अवशेष कायान्तरित शैलों में पाये जाते हैं तो उसे पुनःक्रिस्टल अन्तर्वेशी (ब्लास्टो पॉरफिरिटिक) गठन कहते हैं।

7. **कणब्लास्टी गठन** (Granoblastic Texture) : ऐसा पुनःक्रिस्टलित गठन जिसमें मुख्य घटकों के क्रिस्टल कणिकामय या समविमीय हों तो उन्हें कणब्लास्टी (ग्रनोब्लास्टिक) गठन या ऐसी संरचना को कणिकामय संरचना (Granulose structure) कहते हैं।

कायान्तरित शैलों की संरचनाएँ
(Structures of Metamorphic Rocks)

कायान्तरित शैलों की संरचनाओं के सुविधाजनक समूहन निम्नानुसार किया गया है –

1. **अपदलनी संरचना** (Cataclastic Structure) : अपदलनी संरचना विच्छिन्न और खण्डमय शैलों में होती है, इनका विकास भूपर्पटी के ऊपरी मण्डलों में अपरूपक प्रतिबलों (Shearing stress) द्वारा कठोर एवं भंगुर पदार्थों में संदलित (Crushed) होकर चूर्ण बनाने से होती है। यह संरचना संदलन संकोणाश्म (Crushed breccia) शैल में पाई जाती है।

2. **धब्बेदार संरचना** (Maculose Structure) : मृण्मय शैलों के कायान्तरित होने पर उनमें धब्बेदार संरचनाएं बनती हैं, इस संरचना में कुछ खनिजों के पोरफिरोब्लास्ट सुविकसित शैल चूर्ण की आधात्रिका में अन्तः स्थापित हो जाते हैं।

3. **शिष्टाभ संरचना** (Schistose Structure) : कायान्तरित शैलों में पत्रिकी एवं पटलित खनिजों के समान्तर पट्टियों में विनियस्त होने से बनी संरचना को शिष्टाभ संरचना कहते हैं (चित्र 4.9)। असमविमीय सपाट खनिजों के पुनःक्रिस्टलन से पट्टियों में विन्यस्त होने को शल्कन (Foliation) कहते हैं। शिष्टाभ के शल्कन को शिष्टाभता (Schistosity) कहा जाता है। शिष्टाभ संरचना से युक्त शैल को शिष्ट (Schist) कहते हैं।

चित्र 4.9. कायान्तरित शैल शिष्ट में शिष्टाभ संरचना

4. **नाइसिक संरचना** (Gneissic Structure) : कायान्तरित शैलों में हल्के एवं गहरे रंग के खनिजों के पृथक्करण से निर्मित एकान्तरण पट्टियों से बनी संरचना को नाइसी संरचना कहते हैं (चित्र 4.10)। ऐसी संरचना धारण करने वाली शैल को नाइस (Gneiss) कहते हैं। नाइस शैलों में शिष्टाभता गौण रूप में होती है।

चित्र 4.10. कायान्तरित शैल नाइस में नाइसी संरचना

कायान्तरित शैलों का वर्गीकरण (Classification of Metamorphic Rocks)

कायान्तरित शैलों के वर्गीकरण में भारी कठिनाईयां हैं, जैसे एक ही मूल पदार्थ के विभिन्न विधियों से कायान्तरण होने पर एकदम भिन्न–भिन्न शैलें बन सकती है। कायान्तरित शैलों को उनके गठन, संरचना, कायान्तरण का स्तर एवं खनिज संगठन के आधार पर मुख्य रूप से दो भागों में वर्गीकृत किया गया है–

1. शल्कित शैलें (Foliated Rocks) : वो सभी कायान्तरित शैलें जो खनिजकीय एवं संरचनात्मक समान्तरता की संरचना दिखाती हो शल्कित शैलें कहलाती हैं, इसमें शामिल की गई शैलें स्लेट, फिलाइट, शिष्ट एवं नाइस है।

2. अशल्कित शैलें (Non-foliated Rocks) : इस समूह में वे सभी कायान्तरित शैलें सम्मिलित की गई हैं, जिसमें शल्कन या खनिजों की समान्तर पट्टिकाएं अनुपस्थित होती हैं, जैसे – क्वार्टजाइट, संगमरमर एव हॉर्नफेल्स।

कायान्तरित शैल–क्वार्ट्जाइट (Quartzite)

क्वार्ट्जाइट कठोर, मजबूत एवं ठोस सिलिकामय कायान्तरित शैल होती है जिसमें कणिकामय गठन पाया जाता है। यह शैल बालूकाश्म के उच्च श्रेणी के कायान्तरण से निर्मित होती है। इसका रंग प्राय हल्का होता है।

खनिज संगठन : क्वार्ट्जाइट आवश्यक रूप से क्वार्ट्ज का बना होता है इसमें थोड़ी बहुत मात्रा अभ्रक, टूर्मेलिन, गार्नेट, ग्रेफाइट एवं लोह की भी हो सकती है।

गठन एवं संरचना : प्रायः समान आकार के कणों से बनी शैल होती है। क्वार्ट्जाइट एक ठोस शैल है जिसमें क्वार्ट्ज कणों का इंटरलॉकिंग मिलता है। तोडने पर यह शैल असमतल विभंग के साथ टूटती है। इसमें कणिकामय संरचना मिलती है।

इसका उपयोग रोड़ निर्माण में किया जाता है, भवनों की नींव भरने के लिए बहुत ही अच्छा इमारती पत्थर है।

संगमरमर (Marble)

संगमरमर क्रिस्टलीय कैल्केरियस कायान्तरित शैल है। जिसमें कणिकामय गठन होता है। संगमरमर सामान्यतः सफेद रंग का होता है पर विभिन्न अशुद्धियों की वजह से गुलाबी, पीला, भूरा, हरा, एवं काला रंग भी हो सकता हैं । इसका निर्माण चूनाश्म के कायान्तरण से होता है।

खनिज संगठन : संगमरमर मुख्य रूप से कैलसाइट के खनिज कणों से बना होता है कदाचित थोड़ा बहुत डोलोमाइट भी हो सकता है। ऑल्विन, गार्नेट एवं एम्फीबॉल खनिज भी गौण मात्रा में उपस्थित हो सकते हैं।

गठन एवं संरचना : संगमरमर में कणिकामय पुनः क्रिस्टलित कैल्साइट से बनी संरचना पाई जाती है। कैल्साइट के कण कई बार इतने सूक्ष्म होते हैं कि आंखों से पहचानना मुश्किल होता है। कई बार इतने बड़े होते हैं कि उनमें उपस्थित विदलन को भी पहचाना जा सकता है। कणों का आकार शक्कर के दानों से थोड़ा छोटे से लेकर बहुत बड़े आकार में होते हैं।

यह बहुत ही अच्छा ईमारती पत्थर है, महलों, मकानों, मंदिरों, एवं मूर्तियां बनाने में बहुत उपयोग होता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- शैल प्राकृतिक रूप से ठोस खनिज समुच्चय से बनी होती है।
- आग्यने शैल उन्हें कहते हैं जो मूलरूप से गर्म एवं तरल पदार्थ मैग्मा के ठण्डा एवं ठोस होने से बनती हैं।
- पृथ्वी की सतह के नीचे बने गर्म एवं तरल द्रव्यमान को मैग्मा कहते हैं।
- मैग्मा जब भूसतह पर आ जाता है तो इसे लावा कहते हैं।
- आग्नेय शैलों को तीन प्रकारों में विभेदित किया गया है –
  1. वितलीय शैलें (Plutonic Rocks)

2. ज्वालामुखी शैलें (Volcanic Rocks) एवं

3. अधिवितलीय शैलें (Hypabyssal Rocks)।

- शैलों के गठन से तात्पर्य है कि उनमें उपस्थित खनिजों का आकार, आकृति एवं उनके विन्यास का अध्ययन।
- शैल संरचना में शैलों के कुछ दीर्घ आकार के लक्षण सम्मिलित किये जाते हैं जो कि विभिन्न आकृतियां लिए हुए होते हैं।
- अवसादों (Sediments) से बनी शैलों को अवसादी शैल कहते हैं।
- विभिन्न स्तरों के तल को संस्तरण तल (Bedding plane) कहते हैं। जो दो संस्तरण तलों के बीच आबद्ध हो उसे संस्तर (Bed) अथवा स्तर (Stratum) कहते हैं।
- ताप, दाब एवं रासायनिक कारणों से मौलिक शैलों में उत्पन्न अनुक्रिया (Response) को कायान्तरण कहते हैं।
- वो शैलें जो मौलिक आग्नेय शैलों एवं अवसादी शैलों पर विभिन्न प्रकार के कायान्तरण प्रक्रमों (ताप, दाब और रासायनिक वातावरण में परिवर्तनों) के प्रभाव पड़ने से नई शैलों में परिवर्तित हो जाती हैं, उन्हें कायान्तरित शैलें कहते हैं।
- शिष्टाभ संरचना कायान्तरित शैलों में पत्रिकी एवं पटलित खनिजों के समान्तर पट्टियों में विनियस्त होने से बनी संरचना को कहते हैं।
- शिष्टाभ संरचना से युक्त कायान्तरित शैल को शिष्ट (Schist) कहते हैं।
- कायान्तरित शैलों में हल्के एवं गहरे रंग के खनिजों के पृथक्करण से निर्मित एकान्तरण पट्टियों से बनी संरचना को नाइसी संरचना कहते हैं।
- नाइसी संरचना धारण करने वाली कायान्तरित शैल को नाइस (Gneiss) कहते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अवसादी शैल कौनसी है ?
   (अ) बालूकाश्म (ब) ग्रेनाइट
   (स) संगमरमर (द) बेसाल्ट
2. ग्रेनाइट शैल है –
   (अ) अधिवितलीय (ब) वितलीय
   (स) ज्वालामुखीय (द) उपरोक्त में से कोई नहीं
3. पोर्फोरेटिक गठन किस शैल में मिलता है ?
   (अ) कायान्तरित (ब) अवसादी
   (स) आग्नेय (द) उपरोक्त में से कोई नहीं
4. कैल्शियम कार्बोनेट से बनी शैल है –
   (अ) बालूकाश्म (ब) चूनाश्म
   (स) शेल (द) गोलाश्म
5. किस शैल के कायान्तरण से संगमरमर बनता है ?
   (अ) रायोलाइट (ब) ग्रेनाइट
   (स) बालूकाश्म (द) चूनाश्म

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. मैग्मा क्या है। ?
2. लावा किसे कहते हैं ?
3. अवसाद की परिभाषा दो ?
4. कायान्तरण क्या होता है।
5. शैलों को मुख्य रूप से कितने भागों में बांटा गया है।
6. दृश्य क्रिस्टलीय शैल किसे कहते हैं।
7. दैशिक गठन क्या होता है।
8. बालूकणों का व्यास कितना होता है।
9. गुटिका किसे कहते हैं।
10. संस्तर की परिभाषा दो।
11. तरंगचिह्न क्या होते हैं ?
12. कणब्लास्टिक गठन किस तरह की शैल में मिलता है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. शैल विज्ञान की परिभाषा लिखिए।
2. अवसादी शैल की परिभाषा दीजिए।
3. कायान्तरित शैल से आप क्या समझते हैं ?
4. आग्नेय शैल किसे कहते हैं ?
5. शैल गठन से आप क्या समझते हैं ?
6. शैल संरचना को परिभाषित कीजिए ।
7. शिरोधानी संरचना क्या है ?
8. वितलीय शैल किसे कहते हैं ?
9. बेसाल्ट से आप क्या समझते हैं ?
10. स्वक्रिस्टली गठन किसे कहते हैं ?
11. बालूकाश्म क्या है ?
12. शिष्टाभ संरचना की परिभाषा दीजिए।

13. मूलावशेषी गठन की परिभाषा दीजिए।

14. नाईसी संरचना क्या है ?

15. क्वॉर्ट्जाइट के बारे में आप क्या जानते हैं ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. अवसादी शैलों का वर्गीकरण लिखिए।

2. आग्नेय शैलों के गठनों का संक्षिप्त में वर्णन करो।

3. कायान्तरित शैलों की संरचनाओं को समझाइये।

4. आग्नेय शैलों का वर्गीकरण बताइये।

5. अवसादी शैलों की संरचनाओं का वर्णन लिखिए।

उत्तरमालाः 1. (अ) 2. (ब) 3. (स) 4. (ब) 5. (द)

अध्याय – 5

स्तरिकी
(Stratigraphy)

संस्तर एवं स्तरिकी की परिभाषा

पृथ्वी ठोस रूप में बनी एवं उसके चारों ओर वायुमण्डल का विकास हुआ। इसके पश्चात् वायुमण्डल के विभिन्न घटकों का उस पर प्रभाव पड़ा। इस प्रकार पुराने ठोस शैलों का अपरदन प्रारम्भ हुआ। अपरदित पदार्थ का समुचित क्षेत्र में संचय हुआ। नये प्रकार के शैलों का विकास हुआ। जीवों की उत्पत्ति हुई और वे मृत अवस्था में शैलों के साथ संचयित होने लगे। अनेक हलचल हुए। जलवायु, जल एवं स्थल की स्थितियाँ बदलती रहीं। पूर्व–निर्मित शैलों पर दबाव एवं तापक्रम का प्रभाव पड़ने पर नये प्रकार की शैलों का निर्माण हुआ। इस प्रकार सतत् या असतत् रूप से शैलों का निक्षेपण और निर्माण चलता रहा है। भू–पृष्ठ के समस्त अनावृत और आवृत शैल, उनकी स्थिति एवं उनकी संरचना भू–वैज्ञानिक अतीत में होने वाली घटनाओं का परिणाम है। अतीत की घटनाओं के ज्ञान के लिए इन शैलों का अध्ययन आवश्यक है। भू–वैज्ञानिक अतीत में निर्मित शैलों के क्रमबद्ध अध्ययन को स्तरिकी कहते हैं। दूसरे शब्दों में पृथ्वी का वैज्ञानिक इतिहास है।

स्तरिकी का प्रमुख उद्देश्य किसी स्थान विशेष के शैलों का अध्ययन कर वहाँ शैल–अनुक्रम निर्धारित करना और उसकी कालगत व्याख्या करना है।

स्तरिकी के सिद्धान्त

किसी क्षेत्र का स्तर–वैज्ञानिक अध्ययन एक निश्चित क्रम में किया जाता है। सर्वप्रथम उस क्षेत्र विशेष के शैल एकक (Rock Unit) या अश्म एककों (Litho Units) का मानचित्रण और उनका क्रम निर्धारण किया जाता है। दूसरा कार्य स्थापित शैल–अनुक्रम या अन्य क्षेत्रों और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा स्वीकृत सारणी के विभिन्न एककों (मुख्यतया कालानुक्रम) से सह–सम्बन्धन या समक्रम (Homotaxis) निर्धारित किया जाता। इसके पश्चात् स्थापित मान्यताओं के आधार पर प्राप्त क्रम का निक्षेपण (Deposition), तत्कालीन जलवायु (Climate) या परिस्थितियाँ (Environment) परिभाषित की जाती है। अन्ततः विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर क्षेत्र विशेष और समूचे विश्व का पुराभूगोल (Palaeogeography) निश्चित किया जाता है।

उक्त अध्ययन कुछ विशेष सिद्धान्तों पर आधारित है। इन सिद्धान्तों को स्तर–वैन्यासिक सिद्धान्त (Stratigraphic Principles) कहा जाता है। स्तरित शैल–विज्ञान के विवेचन के पहले इन सिद्धान्तों को समझना आवश्यक है।

स्थानीय अनुक्रम एवं अध्यारोपण

स्थानीय अनुक्रम–निर्धारण के लिए अध्यारोपण के सिद्धान्त (Law of Superposition) का अनुसरण किया जाता है। यह नियम सर्वप्रथम सैद्धान्तिक रूप से जेम्स हटन (1726–1797) द्वारा प्रतिपादित किया गया था। इसके अनुसार एक अविक्षुब्ध (Undisturbed) क्षेत्र में, चूंकि अवसादी शैल (जो कि अधिकांश पाये जाते हैं) परत दर परत विक्षेपित होते हैं, ऊपर मिलने वाली शिलाएँ नई और क्रम में नीचे अवस्थित शिलाएँ अपेक्षतया पुरानी होंगी। लेकिन विवर्तनिक रूप से विक्षुब्ध क्षेत्रों में शैलों का क्रम व्युत्क्रमित हो सकता है। उदाहरणार्थ हिमालय में व्युत्क्रमित अनुक्रम है। ऐसी स्थिति में तल और शीर्ष (Bottom and Top) सम्बन्धी कसौटियों का सहारा लेना पड़ता है। इन कसौटियों में तिर्यक् संस्तर, तरंग चिह्न, कर्षज वलन, जीवाश्मों के कवच इत्यादि हैं। इस प्रकार सही क्रम निर्धारित कर लेने पर निचले क्रम के शैल पुराने और उपरिक्रम के शैल नये होंगे। इस सिद्धान्त के विकास में हटन, लेहमन, जान स्टैशे, विलियम स्मिथ इत्यादि का विशेष योगदान है। क्रम–निर्धारण के लिए 'अन्तर्हित खण्डों' या समाविष्ट खण्डों का अध्ययन भी उपयोगी है। इसके अनुसार किसी शैल में केवल पुराने शैल के खण्ड ही मिल सकते हैं। रेडियो एक्टिव विधियों से भी क्रम निर्धारित किया जा सकता है।

वास्तविक समस्या स्थापित क्रम का वर्गीकरण है। किसी एक सेक्शन विशेष में क्रम निर्धारित कर लेना मात्र पर्याप्त नहीं है। स्थापित क्रम के विभिन्न खण्डों (एककों) का विस्तार अथवा उनके एक क्षेत्र में वितरण का अध्ययन आवश्यक है। इस प्रकार के सबसे छोटे मानचित्रण योग्य एककों को संस्तर (Bed) कहा जाता है। कई संस्तरों को मिलाकर एक शैल समूह (Formation) होता है। इस प्रकार के विभाजन और एक क्षेत्र के मानचित्रण के लिए संरचना, जीवाश्म, अश्म–विज्ञान (Lithology) एवं विषम–विन्यास विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। इस पर भी अवसादों के संलक्षणी परिवर्तन पर समूचे क्षेत्र में वितरण निर्धारण करना एक समस्या है। संलक्षणी एवं उनके सिद्धान्त का विवेचन आगे किया गया है।

सह–सम्बन्ध, सक्रमक एवं प्रारूपिक सेक्शन

वैसे स्थानीय अनुक्रम तो स्तरिकी का आधार है लेकिन एक अपेक्षतया अधिक विस्तृत क्षेत्र में भौमिकीय अतीत की परिस्थितियों को आँकने के लिए विस्तृत क्षेत्र के कई स्थानीय सेक्शन का आपस में सम्बन्ध ज्ञात करना आवश्यक है। इस कार्य को सह–सम्बन्धन कहते हैं। इसका प्रमुख उद्देश्य एक निश्चित काल विशेष में विभिन्न स्थलों में हुए शैलों को एकत्रित करना है। इसके आधार पर भौमिकीय अतीत का कालानुक्रम और विभिन्न कालों में घटित परिवर्तनों एवं घटनाओं को सारणी में रखा जा सकता है।

इस प्रकार सह–सम्बन्ध के प्रमुख उपाय भौमिकीय अतीत में निर्मित शैलों का काल–निर्धारण और व्यतीत समय का मापन है। काल–मापन के दो उपाय हैं। एक तो एकदेशीय और अव्युत्क्रमणशील प्रविधियों की सहायता से और दूसरे पुनरावृत्त होने वाली घटनाओं की सहायता से। पहले प्रकार की प्रविधियाँ रेडियो एक्टिव विघटन और जीवों का विकास हैं। दूसरे प्रकार की प्रविधियाँ अवसादन चक्र (Sedimentary Cycle) एवं वार्व (Varve) हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रविधियाँ भी हैं। इस प्रकार सह–सम्बन्धन की कुल कसौटियाँ इस प्रकार हैं–

(1) जीवाश्म

(2) रेडियो एक्टिव प्रविधि

(3) अश्म–वैन्यासिक विशेषताएँ

(4) स्तर वैन्यासिक सातत्य

(5) विषम–विन्यास

(6) कायान्तरण कोटि

(7) विवर्तन एवं संरचनात्मक विक्षोभ

इस सन्दर्भ में दो प्रकार के शैलों में अन्तर करना आवश्यक है प्रथम कोटि के वे शैल हैं जिनमें जीवाश्म मिलते हैं। इनका सह–सम्बन्धन आसान है। दूसरी कोटि के वे शैल हैं जिनमें जीवाश्म नहीं मिलते हैं। पूर्व–कैम्ब्रियनकालीन शैल इसी प्रकार के हैं। इनका सह–सम्बन्धन कठिन है।

जैव स्तरिक इकाईयाँ

जीवाश्मयुक्त शैलों के सह–सम्बन्धन के लिए जीवाश्म सर्वाधिक परिशुद्ध आधार प्रस्तुत करते हैं। इस उपयोगिता का प्रमुख आधार यह मान्यता है कि एक निश्चित काल में विश्व के समस्त जीव अतीत और भविष्य के जीवों से पूर्णतया भिन्न होते हैं। इस प्रकार जीवाश्मों को एक क्रम में रखा जा सकता है। किसी स्थानीय सेक्शन से प्राप्त जीवाश्मों का क्रमबद्ध सारणी के जीवाश्मों से तुलना कर उनकी आयु ज्ञात की जा सकती है। इसी प्रकार दो क्षेत्रों में जीवाश्मों की तुलना कर उनको सह–सम्बन्धित किया जा सकता है। स्मिथ के अनुसार प्रत्येक शैल समूह के अपने विशिष्ट जीवाश्म होते हैं।

प्रारम्भ में यह माना जाता था कि समस्त जीव एक साथ उत्पन्न हुए और अन्त तक ज्यों के त्यों बने रहे। सन् 1812 में जार्ज कूवियर ने विभिन्न विवर्तनों की धारणा प्रस्तुत की। प्रत्येक हलचल के साथ प्रभावित क्षेत्र के जीव समाप्त हो गये और जीव उत्पन्न हुए। ल्येल (1812) तथा एच. टीला बेशे (1834) इस धारणा से असहमत थे। इनके अनुसार परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ ही नये जीव उत्पन्न हुए और इस प्रकार उत्तरोत्तर जीवों की वृद्धि होती रही। इसके पश्चात् डि. आर्बिनी (1807–1857) ने ज्ञात प्राणि–समूहों का क्रम निर्धारित किया। उनके अनुसार जीवाश्मों में कुल 27 क्रम थे तथा तद्नुरूप अवसादों के भी कुल 27 क्रम हैं। इसके पहले ही ल्येल ने जीवाश्मों का उपयोग भू–वैज्ञानिक अतीत को वर्गीकृत करने में किया। सन् 1859 में चार्ल्स डार्विन की 'ओरिजिन ऑफ स्पिशीज' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में उन्होंने विख्यात विकासवाद के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। तब से आज तक विकासवाद के सिद्धान्त में अनेक परिवर्तन हो चुके हैं। डि. आर्बिनी के अनुसार प्रत्येक प्राणि–समूह समूची पृथ्वी पर एक साथ उत्पन्न हुआ। जबकि डार्विन के अनुसार जीवों का उत्तरोत्तर विकास होकर वे आज की स्थिति में आये। इस प्रकार जीवाश्मीय विविधता का कारण कुछ जीवों के प्रजातियों का विकास और कुछ प्रजातियों का विलोपन है। कुछ प्रजातियों तो परिस्थितियों के परिवर्तन पर तीव्र गति से परिवर्तित हुए जबकि कुछ में स्थितियों के परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। दूसरे प्रकार की प्रजातियों का उदाहरण नकुला एवं लिंगुला नामक स्पिशीज हैं। इसी बीच सन् 1862 में टी.एच. हक्सले (1825–1895) ने लन्दन की भौमिकीय समिति के समक्ष भौमिकीय समकालिकता (Geologic

Contemporanity) पर अपना प्रसिद्ध पत्र प्रस्तुत किया। हक्सले के अनुसार जीवाश्मों की सहायता से स्थापित सह–सम्बन्धन की परिशुद्धता सन्देहास्पद है। उदाहरणार्थ यदि यूरोप के कुछ शैलों में मासूपियल और ट्राइगोनिया जीवाश्म मिलते हैं तो वे शैल मध्यजीवी–कालीन होंगे। इसके विपरीत आस्ट्रेलिया में इन्हीं जीवाश्मों वाले शैल अभिनव–कालीन हो सकते हैं। इस प्रकार ऑस्ट्रेलिया और यूरोप के एक ही प्रकार के जीवाश्मों वाले शैल निश्चय ही समकालिक या तुल्यकालिक नहीं। अतः जीवाश्मों की सहायता से स्थापित सह–सम्बन्धन में समकालिकता का बोध गलत है। इस प्रकार के जीवाश्मीय समानता के लिए हक्सले ने समकाल क्रम (Homotaxis) नाम प्रस्तावित किया। इस प्रकार कथित जीवाश्मयुक्त यूरोपीय और आस्ट्रेलियाई शैल समकालिक हों चाहे न हों, लेकिन समस्तर क्रमिक अवश्य हैं।

सामान्य रूप से 'समस्तर क्रम' की धारणा महत्त्वपूर्ण है। लेकिन यदि विस्तार से अध्ययन किया जाए तो दो समस्तर क्रमिक संस्तरों या शैल–समूहों में उनकी आपेक्षिक आयु से सम्बन्धित प्रमाण अवश्य मिल जाएंगे। इस प्रकार यदि पर्याप्त जीवाश्मीय सूचना एकत्रित की जाए और उनका विविधवत विश्लेषण किया जाए तो समस्तर क्रम की धारणा उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाती।

विकासवाद की 'नव डारवीनियन' धारणा के अनुसार जीव–उत्परिवर्तन (Gene-Mutation) के कारण प्रजातियों का नया प्रकार पैदा होता है जिसकी आयु अथवा अस्तित्व प्राकृतिक चयन द्वारा निर्धारित होती है। इस सिद्धान्त के अनुसार जीवाश्म की विविधता के बावजूद उनमें कालगत क्रमिकता का गुण है। इस प्रकार जीवाश्म सह–सम्बन्धन के लिए सर्वाधिक परिशुद्ध आधार हैं। इनके आधार पर सह–सम्बन्धन की निम्नलिखित विधियाँ हैं–

(1) जीवाश्मीय संस्तर स्थितियों के आधार पर सह–सम्बन्धन।

(2) एपिबोल (Epibole) एवं दिवा (Hemera) तथा सह–सम्बन्धन।

(3) सूचक जीवाश्म (Index Fossil) एवं सह–सम्बन्धन।

(4) जीवाश्मों का काल परास (Range) एवं सह–सम्बन्धन।

'जीवाश्मीय संस्तर विधि' की धारणा जर्मन भूवेत्ता अलबर्ट आपेल की देन है। आपेल ने सन् 1896 में एक पत्र के माध्यम से स्पष्ट किया कि शैलों का स्थूल सह–सम्बन्धन ही किया जाता है। लेकिन यदि उसे सूक्ष्म एककों में विभाजित कर उनकी विभिन्न क्षेत्रों के ऐसे ही एककों से तुलना की जाए तो सह–सम्बन्धन अधिक सुविधाजनक होगा। इन सूक्ष्म एककों को संस्तर स्थिति कहा जाता है। संस्तर स्थिति की स्थापना जीवों के विकास के सिद्धान्त पर आधारित है। इसके अनुसार समस्त क्षेत्रों में जीवों में विकास से सम्बन्धित परिवर्तन एक साथ ही घटित होते हैं। अतः ऐसे परिवर्तन सह–सम्बन्ध के लिये समुचित आधार हैं। संस्तर स्थैतिक जीवाश्मों (Zonal Fossils) की अपनी ही विशेषताएँ होती हैं। उनका बहुतायत में तथा सीमित समयावधि के लिए पाया जाना तथा उनको आसानी से पहचाना जा सके, ऐसी विशेषताएँ होना आवश्यक है। कभी–कभी निर्धारित संस्तर स्थितियाँ एक क्षेत्र विशेष में सीमित होती हैं। इस प्रकार के क्षेत्र को संस्तर स्थैतिक प्रदेश (Zonal Province) कहते हैं।

प्रत्येक प्रजाति के जीवनकाल का एक भाग ऐसा होता है जिसमें वह अपने विकास की पराकाष्ठा में होता है। इस पराकाष्ठा काल को 'दिवा' (Hemera) कहते हैं। इस काल में निक्षेपित शैलों को एपिबोल (Epibole) कहेंगे। दिवा काल में प्रजाति की अपनी संख्या अधिकतम होती है। समूचे विश्व में प्रजाति विशेष के 'दिवा' और 'एपिबोल' ज्ञात किये जा सकते हैं। यह काल समूची धरती पर एक साथ ही होगा। अतः दिवा और एपिबोल भी सह–सम्बन्ध में सहायक होंगे। लेकिन प्रत्येक स्पिशीज के एपिबोल निर्धारित करने में व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं। हर स्पिशीज का 'दिवाकाल' उनकी संख्या के द्वारा ज्ञात किया जा सके, आवश्यक नहीं। अतः इस धारणा का व्यावहारिक महत्त्व अधिक नहीं है।

'सूचक जीवाश्म' (Index Fossil) की धारणा भी सह–सम्बन्धन के लिए उपयोगी है। 'सूचक जीवाश्म' के दो अर्थ हैं। यूरोप में जीवाश्मीय संस्तर स्थिति के प्रारूपिक तथा एपिबोल के अभिलाक्षणिक जीवाश्म को सूचक जीवाश्म मानते हैं। अमरीकी भूविदों के अनुसार संस्तर स्थैतिक जीवाश्म ही सूचक जीवाश्म हैं। सूचक जीवाश्मों की सहायता से सह–सम्बन्धन में सबसे बड़ी कठिनाई स्पिशीज का अभिनिर्धारण है। सूचक–जीवाश्मों में सही अभिनिर्धारण के लिए पुराजीवाश्मिकी का समुचित ज्ञान आवश्यक है।

सभी विलुप्त जीवों के अवशेष समूचे अतीत को तीन भागों में विभाजित करते हैं। सम्बन्धित जीव की उत्पत्ति के पहले काल, जीव का जीवनकाल और जीव के विलुप्त होने के बाद का काल। जीव के समस्त जीवनकाल और उसमें निक्षेपित शैल को जीव संस्तर स्थिति (Biozone) कहते हैं। यह उसके अस्तित्व की सम्पूर्ण अवधि है। लेकिन शैलों में परिरक्षित जीवाश्मों की सहायता से ज्ञात अवधि को स्तर–वैन्यासिक अवधि (Stratigraphic Range) नाम देना उचित होगा। क्योंकि आवश्यक नहीं कि जीव संस्तर स्थिति और स्तर–वैन्यासिक अवधि दोनों पूर्णतया बराबर हों। यह स्पष्ट है कि जीवाश्मों के सन्दर्भ में दो काल सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं– आगमन और विलोपन। इस प्रकार विभिन्न सेक्शन और क्षेत्रों के शैलों में परिरक्षित जीवाश्मों की अवधि का अध्ययन ही सह–सम्बन्धन में सहायक होगा।

इस सब पर भी जीवाश्मों के आधार पर सह–सम्बन्धन की अपनी कठिनाइयाँ और कमियाँ हैं। जीव एक स्थान या क्षेत्र विशेष में उत्पन्न होकर प्रवसित हुए होंगे और अन्ततः समूची पृथ्वी पर, बाधाएँ होने पर भी, वितरित हुए होंगे। इस प्रकार उनके प्रवसन में भले ही कम, लेकिन कुछ न कुछ समय अवश्य लगा होगा। अतः वे शैल जिनसे विशेष स्पिशीज प्रतिवेदित हैं, आवश्यक नहीं कि वे समकालिक हों। डार्विन ने जीवाश्मों के अभिलेख को अपर्याप्त माना था। लेकिन उसके समय से अब तक जीवाश्मिकी में अनेक शोध–कार्य हो चुके हैं। फलस्वरूप उसके वर्तमान रूप में जीवों की उत्पत्ति और विकास के विषय में पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं। अन्ततः जीवाश्म सह–सम्बन्धन और भौमिकीय अतीत के मापन के लिए सबसे सरल आधार है।

रेडियो एक्टिव आयु–निर्धारण एवं सह–संबंधन

रेडियो एक्टिव तत्व विघटन के पश्चात् दूसरे स्थिर तत्वों में परिवर्तित हो जाते हैं। किसी शैल में उपस्थित मूल तत्व तथा उत्पाद तत्व की मात्रा एवं मूल तत्व के उत्पाद तत्व में विघटन दर के ज्ञात होने पर किसी शैल की आयु ज्ञात की जा सकती है। इन विधियों का संक्षिप्त विवरण भौतिक भू–विज्ञान परिच्छेद के 'पृथ्वी की आयु' नामक अध्याय में किया गया है। दो विभिन्न क्षेत्रों में स्थित शैलों की आयु यदि रेडियो एक्टिव विधि से एक ही निकले तो उनको समकालीन कहा जा सकता है।

शैलों की अश्म–वैन्यासिक विशेषता एवं सह–संबंधन

एक निश्चित समय में विभिन्न क्षेत्रों में निर्मित होने वाले शैलों में एक समान लक्षण मिल सकते हैं। इसी प्रकार एक विशाल श्रेणी में निक्षेपित होने वाले शैलों के लक्षण भी एक जैसे होते हैं। लेकिन श्रेणी की गहराई एवं अन्य स्थितियों में परिवर्तन के कारण शैलों में कुछ क्षैतिज परिवर्तन हो सकता है, इसे संलक्षणी परिवर्तन (Facies Change) कहते हैं। विभिन्न क्षेत्रों के रासायनिक एवं अश्म–वैन्यासिक लक्षणों में समानता उनको सह–सम्बन्धित करने का आधार हो सकती है।

स्तर–वैन्यासिक सातत्य एवं सह–संबंध

यदि दो सुदूर स्थित क्षेत्रों में मिलने वाले शैलों को चाहे वे विभिन्न संलक्षणों के ही हों, पूर्णरूपेण एक–दूसरे से जुड़ा हुआ और सातत्य में प्रमाणित किया जा सके तो वे शैल समकालीन होंगे।

विषम–वैन्यासिक एवं सह–संबंध

भौमिकीय शैल अनुक्रम के विकास में विषम विन्यासों का विशेष महत्त्व है। स्तर–वैन्यासिक अध्ययन की दृष्टि से विषम विन्यासों को दो प्रमुख वर्गों में रखा जा सकता है–(1) स्थानीय विषम विन्यास, (2) क्षेत्रीय या व्यापक विषम विन्यास। आद्य महाकल्पेतर (Eparchaean) विषम विन्यास के सदृश कुछ विषम विन्यास तो विश्वव्यापक है। कुछ विषम विन्यास क्षेत्र या निश्चित भू–भाग में ही सीमित रहते हैं। विषम–विन्यास निक्षेपण में अन्तराल के द्योतक होने के कारण विवर्तनिक हलचलों से भी उनका सीधा सम्बन्ध होता है। यदि दो विलग क्षेत्रों में एक जैसी स्थितियों में पाए जाने वाले विषम विन्यासों के मध्य कोई शैल पाया जाता है तो उन्हें सह–संबंधित किया जाता है।

कायान्तरण की कोटि और सह–संबंधन

कायान्तरण के प्रक्रम शैलों की विशेषताओं को नष्ट करने का प्रयास करते हैं। विभिन्न कोटि के कायान्तरण पर एक ही मूल शैल विभिन्न प्रकार के कायान्तरित शैलों में परवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार कायान्तरण के पूर्व जिन शैलों को आसानी से सह–संबंधित किया जा सकता था, उन्हीं शैलों के कायान्तरण से प्रभावित होने पर उनका सह–सम्बन्धन कठिन हो जाता है। ऐसी स्थितियों में कायान्तरण से पहले मूल शैल की विशेषताओं को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। अन्यथा सह–संबंधन असम्भव हो जाएगा।

संरचनात्मक एवं विवर्तनिक विक्षोभ तथा सह–संबंधन

विवर्तनिक एवं संरचनात्मक हलचले एक सीमित समय तक चलती हैं तथा केवल पूर्व निर्मित शैलों को प्रभावित कर पाती हैं। बाद में निर्मित होने वाले शैल उनसे अछूते रह जाते हैं। इस प्रकार संरचनात्मक एवं विवर्तनिक विक्षोभ भी शैलों के सह–संबंधन में सहयोगी हो सकते हैं।

आग्नेय अन्तर्वेधों से संबंध एवं पश्च–जात धातु निक्षेपों एवं खनिजों से संबंध भी शैलों के सह–संबंधन में उपयोगी हैं। इन विभिन्न अध्ययनों के आधार पर क्षेत्र विशेष एवं समूची पृथ्वी पर शैल–अनुक्रम निर्धारित किया जा सकता है। अतः सह–संबंधन एवं उनकी सही व्याख्या स्तरित शैल–विज्ञान का आधार है।

शैल स्तरिक इकाईयां

सीमांकित शैल समूह जैसे आग्नेय बहिर्वेधी शैल (Extrusive rock), अवसादी शैल (Sedimentary rock) व कायांतरित शैल (Metamorphic rock) में पाये जाने वाले अश्मिक गुण एवं स्तरिक स्थान से उनको पहचानना एवं आलेखन को शैल स्तरिक इकाईयां कहते हैं।

शैल स्तरिक इकाईयां निम्न हैं–

महासंघ	(Supergroup)
संघ	(Group)
शैल समूह	(Formation)
मेम्बर	(Member)
संस्तर	(Bed)
मार्कर बेड	(Marker bed)

समय स्तरिक इकाईयां

वे संस्तर या शैल समूह जो कि एक निश्चित भौमिकीय काल अवधि के अन्दर निक्षेपित/जमा होते हैं एवं उनके अन्दर द्योतक जीवाश्म मिलते हैं, उनको समय स्तरिक इकाईयां कहते हैं। दूसरे शब्दों में एक निश्चित भौमिकीय काल में निर्मित शैलों, जैसे कि जैव स्तरिकी शैल, शैल एकक (Litho units) अथवा शैल का अन्य कोई विशेष गुण जो कि उस काल को दर्शाता हो को समय स्तरिक इकाईयां कहते हैं (तालिका 5.1)।

तालिका 5.1: भौमिकीय कालानुक्रम

महाकल्प	कल्प	युग	काल अवधि (मिलियन वर्षों में*)
नूतन जीवी महाकल्प (CENOZOIC ERA)	चतुर्थ (Quaternary)	होलोसिन (Holocene)	0.01 से वर्तमान
		प्लीस्टोसिन (Pleistocene)	3.0 से 1.0
	तृतीयक (Teritary)	प्लायोसिन (Pliocene)	12 से 3.0
		मायोसिन (Miocene)	25 से 12
		ओलिगोसिन (Oligocene)	40 से 25
		इओसिन (Eocene)	60 से 40
		पेलियोसिन (Palaeocene)	68 से 60
मध्य जीवी महाकल्प (MESOZOIC ERA)	द्वितीयक (Secondary)	क्रिटेशियस (Cretaceous)	135 से 68
		जुरैसिक (Jurassic)	180 से 135
		ट्रायेसिक (Triassic)	225 से 180
पुरा जीवी महाकल्प (PALAEOZOIC ERA)	प्राथमिक (Primary)	परमियन (Permian)	270 से 225
		कार्बनी (Carboniferous)	350 से 270
		डिवोनी (Devonian)	400 से 350
		सिलुरियन (Silurian)	440 से 400
		आर्डोविसियन (Ordovician)	500 से 440
		केम्ब्रियन (Cambrian)	600 से 500
कैम्ब्रियन पूर्व महाकल्प (PRECAMBRIAN ERA)		प्राग्जीवी (Proterozoic)	2500 से 600
		आध्य (Archaean)	4000 से 2500

* (1 मिलियन वर्ष = 10 लाख वर्ष)

जैव स्तरिक इकाईयां

वे शैल समूह जिनको उसमें पाये जाने वाले विशिष्ट जीवाश्मों से पहचाना जाए या परिभाषित किया जावे उनको जैव स्तरिक इकाईयां कहते हैं। जैव स्तरिकी की आधारभूत इकाई जैव क्षेत्र (Bio-zone) है। एक शैल समूह को विभिन्न प्रकार एवं श्रेणी के जैव क्षेत्र एवं उपक्षेत्र (Sub zone) में बांटा जा सकता है।

जैव स्तरिक इकाईयां तीन प्रकार की होती है–

(i) अन्तराल मण्डल/क्षेत्र (Interval zone)

(ii) एकत्रित मण्डल/क्षेत्र (Assemblage zone)

(iii) प्रचुरता मण्डल/क्षेत्र (Abundance zone)

(i) अन्तराल मण्डल/क्षेत्र (Interval zone) – शैल संस्तर के बीच का वह भाग जिसके नीचे अथवा ऊपर के शैल संस्तर में किसी एक वंश के जीवाश्म निम्न या/अथवा उच्च उपस्थिति दर्ज कराते हों को अन्तराल मण्डल/क्षेत्र कहते हैं।

(ii) एकत्रित मण्डल/क्षेत्र (Assemblage zone) – शैल समूह के अंदर वे जैव क्षेत्र (Bio-zone) जिसके अंदर तीन या इससे अधिक वंश या समूह के जीवाश्म पाये जाते हैं।

(iii) प्रचुरता मण्डल/क्षेत्र (Abundance zone) – शैल समूह के अन्दर वे जैव क्षेत्र जिसमें कोई एक या उससे अधिक वंश या समूह के जीवाश्म बहुत अधिक प्रचुर मात्रा में पाये जाते हों, उसको प्रचुरता क्षेत्र कहते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्न में से किसमें तीन या अधिक वंश/समूह के जीवाश्म पाये जाते हैं–
   (अ) अन्तराल मण्डल (ब) एकत्रित मण्डल
   (स) प्रचुरता मण्डल (द) जैव क्षेत्र
2. निम्न में से जैव स्तरिकी आधारभूत ईकाई कौनसी है–
   (अ) शैल एकक (ब) जैव क्षेत्र
   (स) एकत्रित क्षेत्र (द) प्रचुरता क्षेत्र
3. निम्न में से शैल स्तरिकी की ईकाई नहीं है–
   (अ) शैल समूह (ब) संघ
   (स) संस्तर (द) अश्म एकक
4. निम्न में से कौनसा कल्प या समूह नहीं है–
   (अ) परमियन (ब) आर्डोविसियन
   (स) पेलियोजोईक (द) सिलुरियन

5. निम्न में से कौनसा महाकल्प नहीं है–
   (अ) पेलियोजोईक (ब) केम्ब्रियन
   (स) मिसोजोईक (द) सिनोजोईक

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. स्तरिकी की परिभाषा दीजिये।
2. स्तरिकी का प्रमुख उद्देश्य बताईये।
3. सह–संबंधन या समक्रम कैसे निर्धारित किया जाता है?
4. अध्यारोपण का सिद्धान्त किसने और कब दिया था?
5. संस्तर व शैल समूह किसे कहते हैं।
6. सह–संबंधन की विभिन्न कसौटियां बताईये।
7. दिवा व एपिबोल किसे कहते हैं?
8. शैल एकक से क्या अभिप्राय है?
9. अश्म एककों की परिभाषा दीजिये।
10. इन्टरवेल जोन या अन्तराल मण्डल से क्या अभिप्राय है?
11. प्रचुरता मण्डल से आप क्या समझते हैं?
12. जैव स्तरिकी की आधारभूत इकाई क्या है?
13. एकत्रित मण्डल या असमेब्लेज जोन से क्या अभिप्राय है?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. स्तरिकी की सहायता से किसी क्षेत्र विशेष का पुरा–भूगोल किस प्रकार निश्चित किया जाता है।
2. संस्तर द्वारा किसी क्षेत्र का निक्षेपण कैसे ज्ञात किया जाता है?
3. अध्यारोपण के सिद्धान्त को समझाइये।
4. सह–संबंधन की कुल कसौटियां कितने प्रकार की है? एवं जीवाश्म सह–संबंधन का वर्णन कीजिये।
5. विषम विन्यास सह–संबंधन से क्या अभिप्राय है?
6. स्तर वैन्यासिक अवधि से क्या अभिप्राय है? समझाइये।
7. संलक्षणी परिवर्तन से क्या अभिप्राय है?
8. सह–संबंधन की विभिन्न विधियां बताइये।
9. समय स्तरिकी ईकाइयां किसे कहते हैं? इसका वर्गीकरण उदाहरण सहित समझाइये।
10. भौमिकीय कालानुक्रम समय श्रेणी को समझाइये।
11. रेडियो एक्टिव आयु निर्धारण को समझाइये।
12. सूचक जीवाश्म की सहायता से सह–संबंधन को समझाइये।
13. अन्तराल व प्रचुरता मण्डल को समझाइये।

निबंधात्मक प्रश्न

1. स्तरिकी के मुख्य सिद्धान्त क्या है? व इनकी विवेचना कीजिये।
2. शैल स्तरिकी ईकाइयों से क्या अभिप्राय है? विस्तार से समझाइये।
3. समय स्तरिकी ईकाइयां किसे कहते हैं? एवं वे किस प्रकार सह–संबंधन ज्ञात करने में सहायक है?
4. जैव स्तरिकी ईकाइयों को परिभाषित कीजिये। एवं उनका वर्णन कीजिये।

उत्तरमालाः 1. (ब) 2. (ब) 3. (द) 4. (स) 5. (ब)

अध्याय – 6

जीवाश्म विज्ञान
(Palaeontology)

जीवाश्म की परिभाषा (Definition of Fossil)

ऐसे प्राणियों और वनस्पतियों के अवशेषों को जो पुरातनकाल में कभी इस पृथ्वी पर पाये जाते थे, जीवाश्म कहते हैं। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि जीवाश्म में विलुप्त प्राणियों के अवशेष का अर्थ निहित नहीं है। ऐसी जातियाँ जो पुरातन काल से लेकर वर्तमान काल तक पायी जाती हैं, उनके अवशेषों को भी जीवाश्म कहते हैं। उदाहरणस्वरूप नाटिलस आधुनिक काल में जीवित है और इसके जीवाश्म भी प्राप्य हैं। आदर्श जीवाश्म के लिये पृथ्वी पर प्राणियों और वनस्पतियों की उपस्थिति का सूचक होना ही पर्याप्त नहीं है। उन अवशेषों को ऐसा होना चाहिए जिससे प्राणियों और वनस्पतियों के साइज, आकार, संरचना और अलंकरण आदि के विषय में भी ज्ञान हो सके। उत्तम और आदर्श जीवाश्म के लिए आयु तीसरा प्रतिबन्ध है। जीवाश्म की भू–वैज्ञानिक आयु अत्यन्त आवश्यक है। जब जीवाश्म की आयु बतलायी जाती है तब उसका अर्थ दो–चार या केवल सौ वर्षों से नहीं होता। भू–वैज्ञानिक आयु लाखों वर्षों में आंकी जाती है। कुछ वर्ष मृत मनुष्य के गाड़े हुए अस्थि–पंजर को जीवाश्म नहीं कहा जा सकता, परन्तु यूरोप की गुफाओं में पाये गये क्रो–मैगनॉन (Cromagnon) मनुष्यों के अवशेषों को जीवाश्म कहा जा सकता है, क्योंकि भू–वैज्ञानिक दृष्टि से उन अवशेषों की कुछ आयु है।

कुछ जीवाश्म–वैज्ञानिकों के अनुसार केवल उन्हीं अवशेषों को जीवाश्म कहना चाहिए जिनका परिरक्षण केवल प्राकृतिक कारकों और प्रक्रियाओं द्वारा हुआ हो, परन्तु यह तर्क महत्वपूर्ण नहीं है। किसी अवशेष के परिरक्षण में केवल प्रकृति का हाथ है अथवा मनुष्य या अन्य किसी जीव का, यदि यह जीवाश्म सम्बन्धी अन्य सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तो उसे जीवाश्म की परिभाषा के अन्तर्गत माना जा सकता है।

सबसे प्राचीन जीवाश्म (The Oldest Fossils)

केम्ब्रियन कल्प से पूर्व की शैलों के अध्ययन से पृथ्वी पर जीवन के प्रमाण सम्बन्धी जानकारी मिलती है, जबकि जीवन की उत्पत्ति अभी भी रहस्यमय बनी हुई है। अधिकांश वैज्ञानिक विचारधाराओं के अनुसार जीवन की शुरूआत कार्बनिक पदार्थों (Organic Compounds) के वायुमण्डल (Atmosphere) एवं धरातल (Earth Surface) पर संश्लेषण (Synthesis) से हुई है।

जीवन के प्रमाण पृथ्वी पर रासायनिक अवशेष के रूप में जैव पदार्थों (Organic Compounds) के रूप में जबकि जैव अवसादी (Organo Sedimentary) प्रमाण स्ट्रोमेटोलाइट के रूप में मिलते हैं।

आर्कियन समय के अवसादों से 3.76 Ga पूर्व के जीवन सम्बन्धी प्रमाण मिले हैं, जिनके जैव होने सम्बन्धी विवाद हैं, जबकि अविवादास्पद सूक्ष्मदर्शी साइनोफीसियन (Cyanophycean) अवशेष जो कि पश्चिमी आस्ट्रेलिया के नार्थपोल डोम क्षेत्र से मिले हैं तथा 3556 Ma आयु के हैं, दूसरी ओर भारत में 3000 Ma पूर्व के प्रमाण उड़ीसा के भद्रशाही क्षेत्र से (Iron ore Supergroup) मिले हैं।

सूचक–जीवाश्म (Index-fossil or Guide-fossil)

स्तरित शैल–समूहों की कुछ इकाइयों में कभी–कभी जीवाश्मों की कुछ विशिष्ट जातियाँ, वंश या समूह पाये जाते हैं। ये जीवाश्म शैलों के सह–सम्बन्ध स्थापित करने में अत्यधिक महत्व के होते हैं। जीवाश्मों की इन तीन जातियों, वंशों या समूहों को सूचक जीवाश्म या निर्देशक जीवाश्म (guide-fossil) कहते हैं।

सूचक–जीवाश्मों में निम्नलिखित लक्षण पाये जाते हैं–

1. सूचक जीवाश्मों का भू–वैज्ञानिक वितरण सीमित होता है, अर्थात् उनका अस्तित्व अधिक काल तक नहीं रहता।

2. उनका भौगोलिक वितरण विस्तृत होता है, अर्थात् उस न्यून काल में ही वे पृथ्वी के दूर–दूर के क्षेत्रों में वितरित हो जाते हैं।

3. उनमें विभिन्न वातावरण के अनुसार स्वयं को अनुकूलित करने की क्षमता होती है। चूंकि पृथ्वी के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न वातावरण पाये जाते हैं, अतएव वे ही प्राणी एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में अभिगमन करते हैं जिनमें स्वयं को वातावरण के अनुसार ढालने की क्षमता होती है।

4. सूचक–जीवाश्म के अन्य लक्षणों में, उनका सरलता से पहचानने योग्य होना तथा पर्याप्त संख्या में नमूने प्राप्य होना मुख्य हैं। दूसरे शब्दों में उनका परिरक्षण उत्तम होना चाहिए।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर सूचक–जीवाश्म को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है :– सरलता से प्राप्य एवं सरलता से पहचानने योग्य, सीमित भू–वैज्ञानिक वितरण तथा विस्तृत भौगोलिक वितरण वाले ऐसे जीवाश्मों को सूचक–जीवाश्म कहते हैं। इसमें विभिन्न वातावरण के अनुसार अनुकूलन की क्षमता होती है।

ऐसे जीवाश्मों की संख्या बहुत ही कम है जो उपर्युक्त शर्तों को पूरा करते हैं। सूचक या अन्य किसी भी जीवाश्म का भौगोलिक या भू–वैज्ञानिक वितरण (1) उनके अस्तित्व–काल (जो विकासीय परिवर्तन अथवा उनके विलोप द्वारा नियन्त्रित होता है), (2) वातावरण, (3) अभिगमन मार्ग एवं (4) ऐसे अवरोधों, जिन्हें पार न किया जा सके, पर निर्भर करता है।

ट्राइलोबाइट, ग्रेप्टोलाइट, अमोनाइट एवं कोरल की कुछ जातियाँ महत्वपूर्ण सूचक–जीवाश्म की उदाहरण हैं।

जीवाश्म बनने के कारक (Factors for fossilization)

इसके पूर्व कि हम जीवाश्म की विभिन्न विधियों के विषय में पढ़ें, जीवाश्म की विविध आवश्यकताओं (Essentials of fossilisation) के विषय में जान लेना आवश्यक है। किसी प्राणी के जीवाश्म बनने के लिए उसका परिरक्षण होना आवश्यक है। परिरक्षण कुछ विशेष परिस्थितियों पर निर्भर करता है, उनमें से निम्नलिखित मुख्य हैं–

1. अस्थिपंजर या कवच (Skeleton or shell) – प्राणियों की देह बहुधा मांसल अथवा कोमल और कठोर भागों की बनी होती है। कठोर भाग को अस्थिपंजर या कवच कहते हैं। मृत्यु के उपरान्त मांसल भाग शीघ्र ही क्षय होकर नष्ट हो जाता है। यदि प्राणी की देह केवल मांसल भाग की ही बनी हो, जैसे जैलीफिश (Jellyfish) तो स्वाभाविक है कि कुछ समयोपरान्त उसका कोई अवशेष नहीं बचेगा। अतः जीवाश्मन के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि देह में कोई ऐसा कठोर भाग हो, जैसे अस्थियाँ, जो मरणोपरान्त सरलता से नष्ट न हों।

2. दबना (Burial) – जीवाश्म के लिए केवल कठोर भाग का होना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् उसका पृथ्वी के अन्दर किसी प्रकार दबना (Burial) भी आवश्यक है, अन्यथा वह इधर–उधर शीघ्र ही बिखरकर नष्ट हो जायेगा। थल–चर प्राणियों की अपेक्षा जलचर प्राणियों के जीवाश्मन की सम्भावना अधिक होती है क्योंकि समुद्र और झील आदि में मिट्टी और बालू का निक्षेपण अधिक होता है। यही कारण है कि जीवाश्म के रूप में थलचर की अपेक्षा जलचर प्राणियों की बहुतायत है।

3. अस्थिपंजर की भौतिक संरचना और रासायनिक संघटन – अस्थिपंजर की भौतिक संरचना और रासायनिक संघटन का भी जीवाश्मन की क्रिया में महत्वपूर्ण स्थान है। यदि कवच अत्यन्त पतला और कमजोर है, जैसे – आर्गोनाटा (Argonauta) का कवच तो वह सरलता से टूट–फूट जायेगा। इसी प्रकार स्पंज (Sponges) का अस्थिपंजर जालीदार होता है। जो अनेक छोटी–छोटी सिलिका की सुइयों जैसे भागों का बना होता है। ये सुइयाँ जीवित अवस्था में पेशियों की सहायता से एक दूसरे से जुड़ी रहती हैं, परन्तु मरणोपरान्त ये सुइयाँ बिखरकर नष्ट हो जाती हैं। दूसरी ओर जिन प्राणियों के कवच सुदृढ़ होते हैं, जैसे – प्रवाल और मोलस्का (Corals and Mollusca), वे जीवाश्म के रूप में बहुतायत से पाये जाते हैं।

अस्थिपंजर की भौतिक संरचना से भी अधिक महत्वपूर्ण उसका रासायनिक संघटन है। कुछ प्राणियों, जैसे – ट्राइलोबाइट्स (Trilobites) के बाह्य–कवच (Exoskeleton) एक प्रकार के कड़े पदार्थ, काइटिन (Chitin) के बने होते हैं, रेडियोलेरिया (Radiolaria) में सिलिका के तथा कशेरुकी प्राणियों के कवच बहुधा चूने के कार्बोनेट ($CaCO_3$) और फास्फेट्स के बने होते हैं। काइटिन सरलता से नहीं घुलता इसलिए इसके अस्थिपंजरों के जीवाश्म की सम्भावना अधिक होती है। क्रिस्टलित सिलिका (Crystillised Silica) सबसे अधिक प्रतिरोधी खनिजों में से एक है, परन्तु अस्थिपंजर में बहुधा यह अक्रिस्टलीय और काँचाभ (Glassy) होता है। जिन प्राणियों के अस्थिपंजर चूने के कार्बोनेट और फास्फेट के बने होते हैं वे इनके सरलता से घुलनशील होने के कारण अत्यन्त शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

जीवाश्मन की विधियाँ / जीवाश्म संरक्षण के प्रकार (Modes of Fossilisation)

जीवाश्म विषयक उपरोक्त तथ्य जान लेने के उपरान्त हम जीवाश्म की विभिन्न विधियों के विषय में पढ़ेंगे।

किसी भी प्राणी के जीवाश्म–अभिलेख के दो मुख्य प्रकार हो सकते हैं– स्वयं देह का परिरक्षित होना, अथवा उसकी देह के किसी भाग का परिरक्षित होना। नीचे वर्णित विधियों में दोनों प्रकार के अवशेषों का समावेश है, तथापि देह के किसी भाग का परिरक्षित होना सर्वाधिक सामान्य है।

1. अपरिवर्तित सम्पूर्ण अवशेष (Unaltered Remains or Fossil in toto) – कुछ विशेष परिस्थितियों में प्राणी के शरीर बिना किसी परिवर्तन के सम्पूर्ण रूप से परिरक्षित हो जाते हैं। ध्रुवीय प्रदेशों में हिम लाखों–करोड़ों वर्षों से जमा हुआ है। ये प्रदेश एक प्रकार के प्राकृतिक शीत संग्रहागार हैं। इन्हीं हिम प्रदेशों में अनेक ऐसे उदाहरण मिले हैं जहाँ प्राणी के अस्थिपंजर के साथ–साथ देह का सम्पूर्ण मांसल भाग भी अपनी मूल स्थिति में परिरक्षित पाया गया है। यह तभी सम्भव है जब प्राणी पूर्णरूपेण निरन्तर हिम के नीचे दबा रहे।

सम्पूर्ण जीवाश्म के सबसे उत्तम उदाहरण साइबेरिया के लोमश मैमथ (Woolly Mammoths) हैं जो हिमभूत टुन्ड्रा में परिरक्षित पाये गये हैं। इस सदी के प्रारम्भ के कुछ वर्षों में ये इतने अधिक संख्या में प्राप्त हुए कि रूस में एक हास्य प्रचलित हो गया था कि वैज्ञानिक सम्मेलनों के भोज में इन जीवाश्म मैमथ के मांस की बोटियाँ परोसी जाती हैं। ये जीवाश्म इस सीमा तक परिरक्षित थे कि इनके पेट के अधपची वनस्पति के अंश तक देखे गये।

2. अपरिवर्तित अस्थिपंजर (Unchanged Skeleton) – अपरिवर्तित सम्पूर्ण अवशेष की अपेक्षा ऐसे उदाहरण अधिक मिलते हैं जिनमें मांसल भाग तो नष्ट हो जाते हैं, परन्तु अस्थिपंजर प्रायः बिना किसी वास्तविक परिवर्तन के पाये जाते हैं। मृत्यु के उपरान्त, सिवाय जैव पदार्थ के नष्ट होने के, अस्थिपंजर में प्रायः कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता। इंग्लैण्ड की प्लायोसीन शैलों (Pliocene rocks) में पाये जाने वाले कवच ऐसे जीवाश्मों के उत्तम उदाहरण हैं, परन्तु शत–प्रतिशत अपरिवर्तित अस्थिपंजर के उदाहरण उपेक्षाकृत कम ही पाये जाते हैं क्योंकि उनमें बहुधा किसी न किसी खनिज पदार्थ, जैसे चूने का कार्बोनेट का योग हो जाता है।

3. परमिनरलाइज्ड अस्थिपंजर (Permineralized Skeleton) – कई अस्थिपंजर और कवच छिद्रयुक्त (Porous) और भेद्य या पारगम्य (Permeable) होते हैं, जिनमें बहुधा अकार्बनिक पदार्थों का निक्षेपण हो जाता है। अकार्बनिक पदार्थ सामान्यतया चूने का कार्बोनेट और सिलिका होते हैं। अस्थिपंजर या कवचों के छिद्रों में इन पदार्थों के निक्षेपण से उनके मूल संगठन में तो कोई भी परिवर्तन नहीं होता परन्तु उनके भार तथा सूक्ष्म रूप से कभी–कभी साइज में वृद्धि हो जाती है। उपर्युक्त प्रकार के परिवर्तन को, जिसमें अवशेष चूने के कार्बोनेट या अन्य किसी खनिज के घोल में संसिक्त (Impregnate) हो जाता है, परमिनरलाइजेशन कहते हैं। सीनोजोइक शैलों (Cenozoic) में पायी जाने वाली जीवाश्म अस्थियाँ और मोलस्का के कवच परमिनरलाइजेशन के अच्छे उदाहरण हैं।

4. साँचा और ढालित (Moulds and casts) – कभी–कभी प्राणी के अस्थिपंजर का केवल साँचा या ढालित ही बचा रहता है। इन्हें भी जीवाश्म माना जाता है। कवच या अन्य ठोस अस्थिपंजर यदि किसी नर्म पदार्थ, जैसे – मृत्तिका आदि में दब जाये और मूल अवशेष किसी प्रकार घुलकर अपनयित हो जाये जो इस प्रकार मूल अवशेष के आकार की गुहिका शेष रहेगी। इस गुहिका की दीवार पर मूल अवशेष की बाह्य सतह की छाप आ जायेगी। गुहिका की इस छाप को सामान्यतया बाह्य साँचा (External mould) कहते हैं। बाद में अन्तःस्त्रावी जल (Percolating water) में घुले खनिज इस गुहिका में निक्षेपित हो जाते हैं। इस प्रकार जो साँचा निर्मित होगा उसे प्राकृतिक–प्रतिकृति (Natural replica) कहते हैं। मोम या गटापार्चा जैसे किसी पदार्थ से इस गुहिकर को भरने से जो साँचा बनेगा उसे कृत्रिम प्रतिकृति कहते हैं। यह याद रखना चाहिए कि इन प्रतिकृतियों की बाह्य सतह पर मूल अवशेष की बाह्य सतह पर छाप होगी। दूसरी संभावना के अनुसार यदि मोलस्का जैसे प्राणियों के कवच किसी महीन अवसादी शैल में सन्निहित हो जाये तो मांसल भाग के क्षय होने के फलस्वरूप खाली हुआ स्थान भी उन्हीं अवसादों से भर जायेगा। तदुपरान्त यदि कवच अन्तःस्त्रावी जल से पूर्णरूपेण घुल जाये तो जो स्थान कवच द्वारा पहले घेरा हुआ था, रिक्त हो जायेगा। मूल कवच के घुलने से बनी यह गुहिका यदि कृत्रिम रूप से भर दी जाये तो इस प्रकार बने ढालित को कृत्रिम ढालित और यदि वह अन्तःस्त्रावी जलों में घुले खनिजों के निक्षेप से भर जाये तो उसे प्राकृतिक ढालित (Natural cast) कहते हैं।

5. अश्मीभवन (Petrification) – अश्मीभवन की क्रिया कवच या अस्थिपंजर और खनिजयुक्त जल या अन्य किसी अन्तःस्त्रावी घोलों के बीच रासायनिक प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न होती है। यह प्रक्रिया अत्यन्त मन्द गति से होती है जिसमें प्रतिस्थापन की इकाई अणु या परमाणु होती है। जब खनिजयुक्त जल अवशेष के सम्पर्क में आते हैं तो प्रथम, अवशेष का एक अणु या परमाणु घुलकर अपनयित हो जाता है और उसका स्थान खनिज का अणु या परमाणु ले लेता है। अन्त में सम्पूर्ण अवशेष उस खनिज द्वारा प्रतिस्थापित हो जाता है। जिन खनिजों द्वारा अवशेष का प्रतिस्थापन होता है उनमें चूने का कार्बोनेट, सिलिका पाइराइट आदि मुख्य हैं। अश्मीभवन की क्रिया में प्रतिस्थापन की इकाई चूंकि अत्यन्त सूक्ष्म होती है इसलिए मूल अस्थिपंजर के आकार के साथ–साथ उसकी सूक्ष्म संरचना भी अश्मीभूत जीवाश्म में परिरक्षित हो जाती है। अश्मीभूत काष्ठ इस प्रकार के जीवाश्म का उत्तम उदाहरण है।

6. कार्बनीकरण (Carbonization) – कई प्राणियों का बहिःकंकाल (Exoskeleton) एक विशेष प्रकार के कड़े पदार्थ काइटिन का बना होता है, जैसे – ग्रेप्टोलाइट (Graptolites)।

ग्रेप्टोलाइट के बहिःकंकाल के काइटिन का प्रायः कार्बनीकरण हो जाता है। पेड़–पौधों से कोयले का निर्मित होना कार्बनीकरण का महत्वपूर्ण उदाहरण है। पेड़–पौधों के कार्बनिक पदार्थ का ताप और दबाव के कारण जैसे–जैसे अपघटन होता जाता है, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन गैसें वायुमंडल में लीन होती जाती है और कार्बन का अनुपात क्रमशः बढ़ता जाता है। अन्ततः वनस्पति शुद्ध कोयले में परिवर्तित हो जाती है।

7. छाप का चिह्न (Prints) – प्राणियों के पद–चिह्न (Footprints) तथा पेड़–पौधों, पत्तियों और ऐसे प्राणियों की छापें जिनमें कवच या अस्थिपंजर नहीं होता, भी शिलाओं में परिरक्षित हो जाती है। ऐसे छापों की, बहुधा महीन अवसादों वाली शिलाओं जैसे – मृत्तिका और शेल (Shale) आदि में मिलने की सम्भावना अधिक होती है। यद्यपि ये छापें प्राणी की देह का कोई भाग नहीं होती तथापि ये प्राणी का किसी न किसी रूप में परिचय देती हैं, इसलिए इन्हें भी जीवाश्म माना जाता है। गोंडवाना शैलों में प्राप्त पौधों तथा उनके तनों की छाप इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

8. बिल, वेधन और नलिकाएं (Burrows, Borings and Tubes) – कुछ प्राणी ठोस शिलाओं में बिल अथवा वेधन बनाकर रहते हैं। कुछ अन्य अपनी देह के आस–पास काइटिन अथवा चूनेदार पदार्थ (Calcareous material) का आच्छाद (sheath) या नलिका बनाकर रहते हैं। इन बिलों, वेधन अथवा नलिकाओं के अवशेषों की वर्तमान प्राणियों के बिलों आदि की तुलना कर पुरातनकाल के प्राणियों की प्रकृति और निवास के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है। इसलिये इन्हें भी जीवाश्म माना जाता है।

9. पद–चिह्न, पद चिह्न लीक इत्यादि (Trail, Track etc.) – नर्म परत तथा महीन रेत पर विभिन्न कीट, केंचुए तथा अन्य प्राणियों के रेंगने या चलन के फलस्वरूप उनके पद या देह के किसी भाग के चिह्न बन जाते हैं जो कालान्तर में यदाकदा परिरक्षित पाये जाते हैं। ये किसी प्राणी के अवशेष नहीं होते, तथापि इनसे प्राणी की प्रकृति तथा उनके चलन–अंगों के विषय में जानकारी मिलती है। अतः इन्हें भी जीवाश्म माना जाता है।

जर्मनी में राइन नदी के किनारे बलुआ पत्थर में किसी कीट तथा छिपकली–समूह के पद–चिह्न मिले हैं जिससे जीवाश्म–विज्ञानियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि छिपकली ने पीछा करते हुए कीट का अन्ततः शिकार कर डाला। उत्तर भारत के हिमालय क्षेत्र के केम्ब्रियन–पूर्व शैलों में कुछ चिह्न मिले हैं जिन्हें ट्राइलोबाइट के उपांग–चिह्न माना गया है।

10. कोपरोलाइट एवं अपशिष्ट (Coprolite and Castings) – प्राणियों की मुख्य आँतों से होकर बाहर निकला पदार्थ कभी–कभी परिरक्षित पाया जाता है। इस पदार्थ को कोपरोलाइट और अपशिष्ट कहते हैं।

जीवाश्मों के उपयोग और महत्व
(Uses and Importance of Fossils)

भू–विज्ञान, पुराप्राणि–विज्ञान और पुरा–वनस्पति– विज्ञान के अध्ययन में जीवाश्म का अपना विशेष महत्व है। जीवाश्म के अध्ययन के बिना उपर्युक्त विषयों का ज्ञान प्रायः अपूर्ण रहता है। जब हम यह जानने का प्रयत्न करते हैं कि पृथ्वी के धरातल पर जैव उद्भव के उपरान्त कौन–कौन से परिवर्तन हुए, चाहे वे प्राणी–विकास से सम्बन्धित हों, अथवा जलवायु, परिस्थिति–विज्ञान या वातावरण परिवर्तन से, हम देखते हैं कि जीवाश्म एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आगे के पृष्ठों पर दिये हुए वर्णन से जीवाश्म का महत्व स्पष्ट होता है।

1. कालानुक्रम महत्व (Chronological Significance) – सम्पूर्ण–भूवैज्ञानिक इतिहास को पाँच वृहत् इकाइयों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक इकाई को महाकल्प (Era) कहते हैं जो क्रमशः आर्कियोजोइक (Archeozoic), प्राग्जीवी या प्रोटेरोजोइक (Proterozoic), पुराजीवी या पैलियोजोइक (Palaeozoic), मध्यजीवी या मेसोजोइल (Mesozoic), नूतनजीवी या सीनोजाइक (Cenozoic) महाकल्प के नाम से जाने जाते हैं।

उपरोक्त इकाइयों की शब्दावली से ही स्पष्ट है कि इनका नामकरण प्राणी–विकास की विभिन्न अवस्थाओं पर आधारित है। यथा, प्राग्जीवी अर्थात् प्राणी–विकास की प्रारम्भिक अवस्था, पुराजीवी अर्थात् पुरातन अवस्था, मध्यजीवी अर्थात् बीच की अवस्था इत्यादि। प्रत्येक महाकल्प को क्रमशः छोटे–छोटे अनुविभागों में विभाजित किया गया है जिन्हें क्रमशः कल्प (Period), युग (Epoch) और काल कहते हैं। उपर्युक्त अनुविभागों की अवधि में निर्मित शैल–समूहों को क्रमशः समूह (System), श्रेणी (Series) और समुदाय (Stage) कहते हैं। ऊपर वर्णित अवधि–इकाइयों (Time units) और शैल–अवधि–इकाइयों (Time-Rock Units) को निम्नलिखित रूप से सारणीबद्ध किया जा सकता है।

अवधि–इकाई	शैल–अवधि–इकाई
महाकल्प	संघ
कल्प	समूह
युग	श्रेणी
काल	समुदाय

स्तरित शैलों (Stratified rocks) के प्रत्येक समूह में कुछ अभिलक्षणिक जीवाश्म–समुच्चय (Characteristic assemblage) पाया जाता है। जीवाश्म समुच्चय के वंश और जातियों में कुछ ऐसे वंश और जातियाँ होती हैं जो केवल समूह विशेष की शैलों तक ही सीमित होती हैं। जीवाश्म के ये वंश और जातियाँ समूह

के अभिनिर्धारण (Identification) में सहायक होती हैं। इन जीवाश्मों को सूचक जीवाश्म कहते हैं। सूचक जीवाश्मों का विस्तृत वर्णन पिछले पृष्ठों में हम पढ़ चुके हैं।

शैल–अवधि की छोटी इकाइयाँ, श्रेणी और समुदाय भी जीवाश्म विशेष के वंश और जातियों की उपस्थिति से अभिलक्षणित होती हैं। ये अभिलक्षणिक जीवाश्म उस इकाई से निम्न अथवा उच्च इकाइयों में नहीं पाये जाते हैं।

कभी–कभी ऐसे उदाहरण मिलते हैं जब स्तरित शैल के गुणों में तो परिवर्तन नहीं होता, परन्तु ऊपर अथवा नीचे की ओर जाने से जाति विशेष के जीवाश्म की अधिकता पायी जाती है, अथवा वह क्रमशः पूर्णरूपेण अदृश्य हो जाती है। उपर्युक्त जीवाश्म–जातियों पर आधारित शैलों को अत्यन्त छोटी–छोटी इकाइयों में विभाजित किया जाता है जिन्हें प्राणि–समूह–कटिबन्ध (Faunal zones) कहते हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि प्राणि–समूह–कटिबन्धों के जीवाश्म सामान्य रूप में एक दूसरे से भिन्न होते हैं, परन्तु इन कटिबन्धों के बीच कोई भौतिक अथवा जीवाश्मीय–भंग (Palaeontological break) नहीं होता।

2. स्तरीय–सहसम्बन्ध (Stratigraphic correlation) – अवसादी शैलों को सहसम्बन्धित करने में जीवाश्म अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जीवाश्मों को उनकी आयु के अनुसार व्यवस्थित करने से पूर्व यह आवश्यक है कि जीवाश्ममय शैलों (Fossiliferous rocks) की आपेक्षिक स्थिति का निर्धारण कर लिया जावे। ऐसे क्षेत्रों में जो वलित (Folded) अथवा प्रतिलोमित नहीं है, निम्नतम शैल सबसे प्राचीन और उपरितम शैल सबसे नवीन होते हैं। एक बार किसी क्षेत्र विशेष के शैलों का अनुक्रम तथा उसमें अन्तः स्थापित जीवाश्मों की आयु का निर्धारण हो जाने के पश्चात् किसी नये क्षेत्र के शैलों के जीवाश्मों के अध्ययन, और प्रारूपित क्षेत्र के जीवाश्मों से उनकी तुलना कर, उस नये क्षेत्र के शैलों की आयु का निर्धारण तथा मानक भू–वैज्ञानिक स्तम्भिका में उनकी स्थिति निश्चित की जा सकती है।

यद्यपि, सह–सम्बन्ध का उपर्युक्त नियम अत्यन्त महत्वपूर्ण है तथापि इसके उपयोग में कुछ व्यवधान भी हैं जिनका सूक्ष्म निरीक्षण कर समाधान करना अत्यन्त आवश्यक होता है। जीवाश्मों की सहायता से शैलों को सहसम्बन्धित करने में सबसे प्रमुख अवरोध विभिन्न ऐसे समकालीन जीवाश्म–समुच्चयों की आयु का निर्धारण करने में है जो विभिन्न वातावरणों को दर्शाते हैं। प्राणियों के गुण तथा आकार–प्रकार, जलवायु, तापमान, समुद्र की गहराई, प्रकाश आदि भौतिक परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं। उपर्युक्त भौतिक परिस्थितियों पर निर्भर समकालीन परन्तु विभिन्न वातावरण में पाये जाने वाले प्राणि–समुच्चय के गुण धर्म भिन्न–भिन्न होंगे। उदाहरणतः बंगाल की खाड़ी में वर्तमान काल में जिस प्रकार के प्राणियों का जीवाश्मन हो रहा है वह इंग्लैण्ड के समुद्र में होने वाले जीवाश्मन से भिन्न होगा क्योंकि इन समुद्रों की भौतिक परिस्थितियों भी भिन्न हैं। जीवाश्मों का उपर्युक्त वैभिन्नय, आयु वैभिन्नय नहीं दर्शाता। ऐसी समस्या आने पर हर सम्भव उपायों और प्राप्त सूचनाओं के आधार पर शैलों को सहसम्बन्धित किया जाना चाहिए। बहुधा जीवाश्मों में सामान्य वैभिन्नय होने के बावजूद भी सूक्ष्म अध्ययन से कुछ ऐसे वंश और जातियाँ प्राप्त हो जाती हैं जो दोनों क्षेत्रों में उपस्थित होती हैं। उपर्युक्त वंश और जातियाँ सहसम्बन्ध में अत्यन्त सहायक होती हैं।

दूसरी समस्या जीवाश्मों के परिवहन (Transportation) से सम्बन्धित है। यह आवश्यक नहीं कि जिस स्थान पर प्राणी जीवनकाल में निवास करते हैं वहीं उनका जीवाश्म भी हो। कभी–कभी मृत्यु के उपरान्त उनके अवशेष परिवहन के फलस्वरूप निवास स्थान से दूर ऐसे शैलों में अन्तःस्थापित हो जाते हैं। जिनका निर्माण ऐसे वातावरण में हुआ हो जिसमें उक्त प्राणियों के निवास के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ नहीं पायी जाती हों। यदि इन शैलों और उनमें अन्तःस्थापित उक्त प्रकार के वाहित (Transported) जीवाश्मों का सूक्ष्म अध्ययन न किया गया तो तनिक–सी असावधानी से उन अवसादी शैलों के वातावरण को ही उनमें पाये जाने वाले जीवाश्मों का वातावरण मान लेने की गलती हो सकती है।

उपर्युक्त वर्णन से यह निष्कर्ष निकलता है कि जीवाश्म पर आधारित सहसम्बन्ध के विषय में अन्तिम निश्चय लेने में अत्यन्त सावधानी से कार्य करना चाहिए। साथ ही साथ जीवाश्मों के स्वरूप का – वे स्वस्थाने (*In Situ*) है अथवा वाहित – भी निश्चित ज्ञान होना चाहिए।

3. प्राणि–भूगोल तथा प्राणि–समूह–प्रवास (Zoogeography and Faunal migration) – वर्तमान की तरह प्राचीन काल में भी प्राणि–समूहों (faunas) के भौगोलिक वितरण में भौतिक परिस्थितियों के अनुसार विभिन्नता पायी जाती थी। जीवाश्मों की सहायता से विभिन्न भू–वैज्ञानिक काल में पाये जाने वाले प्राणि–समूहों का भौगोलिक वितरण नक्शों पर दर्शाया जा सकता है। यदि ऐसे नक्शे की एक श्रृंखला तैयार की जाये, जो विभिन्न भू–वैज्ञानिक काल में प्राणि–समूहों का भौगोलिक वितरण दर्शाते हो, तो प्राचीन से वर्तमान काल तक के उत्तरोत्तर नक्शे विभिन्न भू–वैज्ञानिक काल में प्राणि–समूहों के प्रवास की भिन्न–भिन्न अवस्थाओं को दर्शायेंगे, अर्थात् विभिन्न भू–वैज्ञानिक काल में पाये जाने वाले जीवाश्मों के भौगोलिक वितरण के अध्ययन की सहायता से प्राणि–समूहों के प्रवास की विभिन्न अवस्थाएं ज्ञात की जा सकती हैं। वर्तमान भारतीय घोड़ा मूलतः उत्तर अमेरिका का निवासी है। घोड़े के प्रवास का अध्ययन उसके जीवाश्मों से ही सम्भव हो सका।

4. पुरातन वातावरण और पुरा–भूगोल (Ancient environments and Palaeogeography) – जीवाश्मों के रूप और बनावट से प्राणी के निवास सम्बन्धी वातावरण का बहुत कुछ अनुमान लगाया जा सकता है, अर्थात् जिन शैल समूहों (Formations) में ये जीवाश्म पाये जाते हैं उनके अवसादन की परिस्थितियों का अनुमान लगाया जा सकता है। समुद्रीय वातावरण में निक्षेपित शैल–समूहों के जीवाश्म अलवण जलीय वातावरण और स्थलीय वातावरण से भिन्न होंगे। उपर्युक्त तथ्यों की सम्पुष्टि जीवाश्मों और उनकी ऐसी जीवित जातियों के तुलनात्मक अध्ययन से की जा सकती है, जो वर्तमान काल में, समुद्री अलवण जलीय अथवा स्थलीय वातावरण में पायी जाती है। इतना ही नहीं वरन् जीवाश्म–साहचर्य की सहायता से ऐसी जातियों के भी वातावरण का अनुमान लगाया जा सकता है जो पूर्णरूपेण विलुप्त हो चुकी हैं तथा जिनके वातावरण के प्रभाव के विषय में वर्तमान काल की जातियों से अनुमान लगाना सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ यदि कुछ जीवाश्म रेडियोलेरिया (Radiolaria), प्रवाल (Corals) अथवा ब्रेकियोपॉड (Brachiopods) के साहचर्य में पाये जाते हैं, तो स्वभावतया यह साहचर्य समुद्रीय वातावरण की ओर इंगित करता है, क्योंकि उपुर्यक्त प्राणी केवल समुद्री वातावरण में पाये जाते हैं।

गुजरात के कच्छ, दक्षिण भारत के त्रिचनापल्ली एवं मध्यप्रदेश के धार और उमरिया के समीप के क्षेत्रों में ऐसे जीवाश्म प्राप्त हुए हैं जिनसे सिद्ध होता है कि इन क्षेत्रों में जुरैसिक, क्रिटेसियस और पेलीयोजोईक (पर्मीयन) काल में समुद्र था। इसी प्रकार जीवाश्मों के अध्ययन से सिद्ध होता है कि आज जहाँ संसार का सर्वाधिक ऊँचा पर्वत हिमालय स्थित है, वहाँ तृतीय महाकल्प में कभी लम्बा परन्तु संकरा सागर था जिसे टेथिस (Tethys) नाम से जाना जाता है।

यदि शैल समूह का अवसादन उथले समुद्र तथा तट के समीप के क्षेत्र में हुआ हो तो उस क्षेत्र के समुद्री–जीवाश्म स्थलीय प्राणियों और वनस्पतियों के जीवाश्मों के साहचर्य में पाये जायेंगे। वहाँ ऐसे प्राणियों के जीवाश्मों के मिलने की सम्भावना होगी जो उथले जल में चट्टानों में बिल बनाकर रहते हैं। उदाहरणतः फोलस (Pholus), लिथोफागा (Lithophaga) आदि।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जीवाश्मों की सहायता से प्राचीन काल में समुद्री तट की स्थिति तथा जल और थल के वितरण अर्थात् पुरा–भूगोल का अनुमान भी लगाया जा सकता है।

5. पुरा–जलवायु (Palaeoclimate) – जीवाश्मों के अभिलक्षणों की सहायता से प्राचीनकाल जलवायु का भी अनुमान लगाया जा सकता है। वातावरण के अनेक घटकों में जलवायु सबसे महत्वपूर्ण घटक है। चूंकि समुद्री प्राणियों की अपेक्षा वनस्पतियों का वितरण तापमान पर अधिक निर्भर करता है अतः पुरा–जलवायु को ज्ञात करने में स्थलीय वनस्पति–समूह (Land flora) के जीवाश्म सबसे अधिक महत्व के सिद्ध हुए हैं। यह सर्वविदित है कि पर्मियन और कार्बनी कल्पों में गोण्डवाना महाखण्ड (Gondwanaland) एक विशेष प्रकार के वनस्पति–समूह से आच्छादित था, जिसे पर्मोकार्बोनिफेरस (Permocarboniferous) वनस्पति–समूह कहते हैं। यह वनस्पति–समूह पर्मियन और कार्बनी कल्पों में उष्ण–कटिबन्धी जलवायु की उपस्थिति की ओर इंगित करता है।

प्राणि–समूहों में भी कुछ ऐसे हैं जिनका विकास तथा वितरण जलवायु के सीमित परिसर में ही सम्भव होता है। प्रवाल ऐसे प्राणियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। प्रवाल की अधिकांश जातियाँ उष्ण प्रदेशों के उथले जल में 80 मीटर की गहराई तक पायी जाती हैं। भित्ति निर्माणकारी–प्रवाल (Reaf-building corals) की अधिकतम वृद्धि के लिए अनुकूलतम तापमान (Optimum temperature) 77° से 86° F और गहराई 30 मीटर है। फोरामिनिफेरा (Foraminifera) तथा मोलस्का की कुछ किस्में भी जलवायु–विशेष की ओर इंगित करती हैं।

6. प्राचीन जीवन–अभिलेख (Record of ancient life) – जीवाश्म प्राचीन और वर्तमान जीवन की एक महत्वपूर्ण कड़ी सिद्ध हुए हैं। जीवाश्मों का अध्ययन जीव–वैज्ञानिकों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि जीवाश्म के अन्तर्गत न केवल वर्तमान में पाये जाने वाले प्राणियों के पूर्वज, वरन् कुछ ऐसे प्राणी भी आते हैं, जो ग्रेप्टोलाइट (Graptolites), ट्राइलोबाइट (Trilobites) आदि, जो अब पूरी तरह से विलुप्त हो चुके हैं। इन विलुप्त प्राणियों का अध्ययन केवल उनके जीवाश्मों की सहायता से सम्भव है। इनका अध्ययन वर्तमान काल में पाये जाने वाले प्राणियों और वनस्पतियों के आपसी सम्बन्ध के विषय में महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। यदि जीवाश्मों का ज्ञान नहीं होता तो प्राणियों की वर्तमान विविधता तथा उनके वितरण की विशिष्टता को समझना अत्यन्त कठिन होता। कुछ प्रकरणों में जीवाश्म यह सिद्ध करने में सहायक हुए हैं कि बाह्य रूप से भिन्न दिखाई देने वाले आधुनिक प्राणि–समूहों के पूर्वज वास्तव में सम्बन्धित थे। उदाहरणतः आधुनिक पक्षी और सरीसृप (Reptiles) दो भिन्न प्राणी संघों के अन्तर्गत आते हैं, परन्तु उपरी जुरैसिक (Upper Jurassic) में पाये गये प्रथम पक्षी, आर्किऑप्टेरिक्स (Archaeopteryx) के अवशेष से यह सिद्ध होता है कि पक्षियों के पूर्वज सरीसृप हैं।

7. विकासीय महत्व (Evolutionary importance) – प्राणि–विकास के पक्ष में जो मूलभूत और अभिगृहीत प्रमाण जीवाश्मों से प्राप्त होते हैं, वे अन्य किसी वस्तु से नहीं मिलते। पुराजीवी महाकल्प (Palaeozoic Era) से अभिनव महाकल्प (Recent Era) की उत्तरोत्तर–स्तरित शैलों में पाये जाने वाले जीवाश्मों के अध्ययन से प्राणियों के विकास का एक अत्यन्त

सुस्पष्ट चित्र हमारे समक्ष उभरकर आता है कि कैसे एक के बाद एक अनगिनत जातियाँ अस्तित्व में आयीं, विकसित होकर अपनी जटिलता की सीमा और चरमोत्कर्ष पर पहुंची और फिर ह्रासोन्मुख हो, धीरे–धीरे पूर्णरूपेण विलुप्त हो गयीं, अथवा नये वातावरण और जलवायु के अनुसार स्वयं को अनुकूलित कर नये रूप और किस्मों में विकसित हो पुनः स्थापित हो गयीं। विकास का यह क्रम अनन्त है और अभी भी चल रहा है।

जीवाश्म अभिलेख पूर्णरूपेण दोषमुक्त नहीं है, तथापि सूक्ष्म अध्ययन से जातिवृत्त (Phylogeny) या जाति–इतिहास (Race History) केवल उत्तरोत्तर स्तरित शैलों के जीवाश्मों की सहायता से ही ज्ञात किया जा सकता है। उपर्युक्त अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राणियों की आकारिकी तथा अन्य आन्तरिक गुणों में वातावरण और जलवायु के अनुसार क्रमिक विकासीय परिवर्तन होते रहे हैं। उदाहरणतः स्लावोनिया (Slavonia) नामक स्थान के अतिनूतन शैलों (Pliocene rocks) में विविपैरस (Viviparus) के अनेक जीवाश्म–नमूने (Fossil specimens) पाये जाते हैं। इस आयु के निम्नतम और उपरितम संस्तर के विविपैरस के नमूनों में इतनी अधिक भिन्नता है कि प्रतीत होता है कि जैसे ये दोनों भिन्न–भिन्न जातियों के जीवाश्म हैं, परन्तु मध्यवर्ती संस्तरों के जीवाश्मों के श्रृंखलाबद्ध अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि विकासीय परिवर्तनों के परिणामस्वरूप निम्नतम संस्तर की जाति, भिन्न दिखाई देने वाली उपरितम संस्तर की जाति में कैसे क्रमशः विकसित हुई।

तृतीय महाकल्प (Tertiary Era) के स्तनपायी प्राणियों में भी वातावरण और जलवायु के अनुसार क्रमिक विकासीय परिवर्तन हुए हैं। घोड़ा इसका सबसे उत्तम उदाहरण है। आदिनूतन (Eocene) संस्तर में आधुनिक घोड़े के पूर्वजों के जीवाश्म सर्वप्रथम पाये जाते हैं। इन जीवाश्मों में अग्र चार पदांगुलियाँ पायी जाती हैं, परन्तु बाद के संस्तरों में इनकी पदांगुलियों की संख्या क्रमशः तीन, दो और अन्त में घटकर, अतिनूतन शैलों के जीवाश्मों में आधुनिक घोड़ों की तरह केवल एक पदांगुली शेष रही। संख्या के उपर्युक्त परिवर्तनों के साथ–साथ प्राणी की साइज तथा दांतों की संख्या आदि में भी परिवर्तन हुए। ये सब परिवर्तन जीवाश्मों की सहायता से निर्धारित किये गये हैं।

8. वर्गीकरण (Classification) – साधारणतया, प्राणियों का वर्गीकरण उनके बाह्य लक्षणों, अर्थात् आकारिकी को आधार मानकर किया जाता है, परन्तु विकासीय प्रतिरूप और विकासीय सिद्धान्तों के अनुसार, जिनका वर्णन पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है, केवल बाह्य लक्षणों पर आधारित वर्गीकरण वैज्ञानिक कसौटी पर पूर्णरूपेण खरा नहीं उतरता। बाह्य लक्षणों पर आधारित वर्गीकरण में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। उदाहरणतः समरूपता (Homoeomorphism) के अनुसार विकसित प्राणियों के बाह्य गुण इतने अधिक समान होते हैं कि केवल उनके आधार पर इन प्राणियों का अभिनिर्धारण करना असम्भव सा होता है। ऐसी स्थिति में समरूपी (Homoeomorphs) जातियों के, जो यथार्थ में दो विभिन्न जातियों से विकसित हुई हैं, एक ही संघ, वर्ग या अन्य किसी इकाई के अन्तर्गत वर्गीकृत किये जाने की भूल हो सकती है। इसी प्रकार की भूल समाभिरूपता तथा अपसरण इत्यादि विकासीय प्रवृत्ति वाले प्राणियों के वर्गीकरण में भी हो सकती हैं। उपर्युक्त उदाहरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राणियों के आदर्श और शुद्ध वर्गीकरण के लिए उनकी उत्पत्ति विषयक ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। प्राणियों की जातियों का उत्पत्ति विषयक ज्ञान उनके विकासीय इतिहास पर निर्भर करता है जो बहुत कुछ केवल जीवाश्मों के अध्ययन से प्राप्त होता है। जीवाश्म और उनके विकास संबंधी महत्व का वर्णन पिछले पृष्ठों में भी किया जा चुका है। प्राणियों के वर्गीकरण के लिए उनकी उत्पत्ति और विकास के विषय में ज्ञान होना अनिवार्य है। उपर्युक्त ज्ञान की प्राप्ति में जीवाश्म अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

जैव संसार का वर्गीकरण (Classification of Organic World)

जीवाश्म–विज्ञान विषय चूंकि पुरातन काल में पाये जाने वाले प्राणियों और वनस्पतियों दोनों के अवशेषों से सम्बन्धित हैं इसलिए इसका प्राणी–विज्ञान एवं वनस्पति विज्ञान से गहरा सम्बन्ध होना स्वाभाविक है।

किसी भी वर्गीकरण का उद्देश्य वस्तुओं को विभिन्न संवर्गों (categories) में व्यवस्थित ढंग से निर्दिष्ट करना होता है। जैसे–जैसे विभिन्न विषयों के ज्ञान में वृद्धि होती जा रही है, व्यवस्थित ढंग से अध्ययन का महत्व भी बढ़ता जा रहा है और वर्गीकरण क्रमशः विज्ञान की एक स्वतन्त्र शाखा के रूप में विकसित होता जा रहा है। इस शाखा को वर्गीकरण–नियम (Taxonomy or systematics) कहते हैं। प्राणियों और वनस्पतियों का वर्गीकरण उनके विभिन्न अभिलक्षणों के आधार पर किया जाता है। वर्गीकरण–जीवाश्म–विज्ञान (Systematic Palaeontology) में विभिन्न जीवाश्म–समूहों का अध्ययन उनकी क्रमिक जटिलता (Increasing complexity) के आधार पर किया जाता है।

जैव संसार को दो मुख्य भागों में विभाजित किया गया हैः प्राणि–जगत (Animal kingdom) और वनस्पति–जगत् (Plant kingdom)। जीवाश्म–विज्ञान के पारिस्थितिकी (environmental and ecology) पर आधारित वर्गीकरण अधिक महत्वपूर्ण है।

प्राणि और वनस्पति–जगत अधिक बड़ी इकाइयाँ हैं। इन्हें क्रमशः छोटी इकाइयों में विभाजित किया गया है। जाति (species) ऐसी सबसे छोटी इकाई है जिसके अन्तर्गत वे प्राणी आते हैं

जिनमें एक या एक से अधिक विशिष्ट गुण विद्यमान हों। कई जातियाँ जो एक दूसरे से कुछ विशिष्ट गुणों द्वारा सम्बन्धित होती हैं, वंश (genus) बनाती हैं। समान गुणों वाली अनेक जातियों क मिलने से कुल (family) अनेक कुलों से गण (order) और सम्बन्धित गणों के मेल से वर्ग (class) बनते हैं। समान गुण वाले वर्गों से संघ (phylum) बनता है। इस प्रकार संघ मिलते–जुलते प्राणियों की सबसे बड़ी इकाई है।

उदाहरणतः मनुष्य को निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत किया गया है :

जगत् (kingdom)	एनीमैलिया (animalia)
संघ (phylum)	कार्डेटा (chordata)
वर्ग (class)	मेमालिया (mammalia)
गण (order)	प्राइमेटिडा (primatida)
कुल (family)	होमिनिडी (hominidae)
जाति (species)	सेपियन्स (sapiens)
व्यक्ति (individual)	मोहन (Mohan)

विकासीय सिद्धान्त (Evolutionary Theory)

प्रत्येक प्राणी में, चाहे वह किसी भी प्रकार के वातावरण में रहता हो, समय के साथ–साथ विकासीय परिवर्तन होते रहते हैं। ये परिवर्तन डार्विन के सिद्धान्त के अनुसार निम्नलिखित घटकों द्वारा नियन्त्रित होते हैं :

1. आनुवंशिकता (Heredity), 2. विविधता (Variation),

3. जीवन संघर्ष अथवा प्रतिस्पर्धा (Struggle for existence or competition),

4. प्राकृतिक वरण और योग्यतम की उत्तरजीविका (Natural selection and survival of the fittest)।

1. आनुवंशिकता – आनुवंशिकता विकास की एक स्थिर घटक है। इसका महत्व सर्वप्रथम ग्रेगर मेंडल (Gregor Mendle, 1822-1884, Chekoslovakian monk) ने स्पष्ट किया। यह एक साधारण अनुभव की बात है कि बच्चों में अपने माता–पिता के अनेक गुण पाये जाते हैं। घोड़े का बच्चा घोड़ा ही होगा, गाय नहीं। इस प्रकार जनक (Parents) के गुणों के अपनी संतान में पारगमन (Transmission) को आनुवंशिकता कहते हैं। विज्ञान की इस शाखा को आनुवंशिक विज्ञान कहते हैं।

आनुवंशिक विज्ञान के अनुसार मनुष्य का प्रत्येक कोष (cell) अपने–आप में पूर्ण होता है, अर्थात् उसमें भी वे सब घटक उपस्थित होते हैं जो मनुष्य के गुणों जैसे नेत्रों का रंग, देह का रंग, बाल झड़ने की प्रवृत्ति, स्वादों की पसंद आदि का निर्धारण कहते हैं। ये सब गुण जनक के जीन्स के साथ–साथ संतान में पारगमित हो जाते हैं। इन गुणों का निर्धारण कोष के क्रामोसोम्स (Chromosomes) की संख्या पर निर्भर करता है।

2. विविधता – विविधता परिवर्तन और प्रकृति की एक प्रवृत्ति है। यद्यपि जनक की संतान जनक जैसी होती है, तो वह उससे इतनी भिन्न अवश्य होती है कि उसे व्यक्तिगत रूप से सरलता से पहचाना जा सकता है। मनुष्य का स्वभाव विविधता का उत्तम उदाहरण है। कोई मनुष्य सरल स्वभाव का होता है, तो कोई दुष्ट स्वभाव का, किसी में कठिन से कठिन कार्य करने की क्षमता है तो किसी में नहीं। एक साहसी है तो दूसरा कायर। उक्त और अन्य सैकड़ों ऐसे आनुवंशिक गुण हैं जो विभिन्न गुणों वाले जीन्स के आपस में विनिमय के फलस्वरूप व्यक्ति विशेष में विकसित होते हैं। विभिन्न गुणों वाले जीन्स के विनिमय के फलस्वरूप प्राणी की पीढ़ियों के गुणों में क्रमशः परिवर्तन आता जा रहा है।

3. जीवन संघर्ष और प्रतिस्पर्धा – अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये प्राणियों को सर्वदा आपस में तथा प्रकृति की विषम परिस्थितियों के विरुद्ध अविरत संघर्ष करना पड़ता है। जनसंख्या की निरन्तर वृद्धि के कारण मनुष्य को भी स्थान, भोजन, वायु, प्रकाश और अन्य आवश्यक वस्तुओं के लिये कठिन संघर्ष करना पड़ रहा है।

4. प्राकृतिक वरण और योग्यतम की उत्तरजीविका– प्रायः प्रत्येक प्राणी गुण, स्वभाव और विषमताओं को सहने की शक्ति में दूसरे प्राणी से भिन्न होता है। कुछ ऐसे प्राणी होते हैं जिनकी वृद्धि का प्रारम्भ शीघ्र और तीव्र गति से होता है। उनकी पाचन शक्ति तीव्र और गतिशीलता अधिक होती है। अर्थात् ऐसे प्राणियों में अनुकूलशीलता (Adaptability) अधिक होती है तथा उनके विषम परिस्थितियों में जीवित रहने की सम्भावना अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक होती है, परन्तु इसके विपरीत ऐसे प्राणी शीघ्र नष्ट हो जाते हैं जिनमें प्राकृतिक वातावरण के अनुसार अनुकूलता की क्षमता नहीं होती।

योग्यतम और उत्तरजीविता और प्राकृतिक वरण का आपस में सीधा सम्बन्ध है। योग्यतम (Fittest) वही प्राणी होगा जिसमें विषय परिस्थितियों और परिवर्तित वातावरण के अनुसार स्वयं को अनुकूलित करने की सबसे अधिक क्षमता होगी। उदाहरणार्थ घोंघों (Snails) में विभिन्न वातावरण में जीवित रहने की उद्‌भुत क्षमता होती है। ये समुद्र की 5,000 मीटर की गहराई से पर्वतों की 5,480 मीटर की ऊँचाई तक पाये जाते हैं तथा समुद्र से लेकर खारे जल (Brackish waters) अलवण जल और थलीय वातावरण–जैसी विभिन्न परिस्थितियों में पाये जाते हैं।

विकासीय प्रतिरूप या विकासीय पैटर्न (Evolutionary Patterns)

विकासीय प्रतिरूपों को सामान्यतया वंश–परम्परा (Lineage) भी कहा जाता है। जातिवंश–वृक्ष (Phylogenetic tree) की

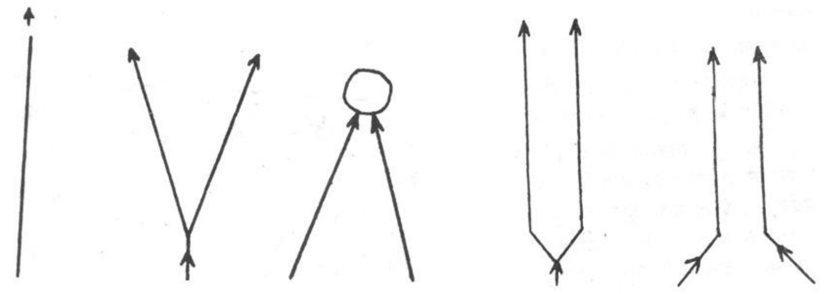

चित्र 6.1

सहायता से सर्वप्रथम फ्रेंच वैज्ञानिक लामार्क (Lamark, 1809) ने विकासीय प्रतिरूपों को दर्शाने की पद्धति का प्रतिपादन किया। उसने यह भी सिद्ध किया कि सामान्यतया सरल दिखने वाले विकासीय प्रतिरूप वास्तव में अत्यन्त जटिल होते हैं। लामार्क के अनुसार जातिवंश–वृक्ष की पीढ़ (Trunk) मूल प्रभव (Original stock) तथा शाखाएँ मूल प्रभव से विकसित विभिन्न प्राणी–समूहों को दर्शाती हैं। जाति–वंश–वृक्ष की शाखाओं से यदि पीढ़ की ओर क्रमशः अनुरेखित (trace) किया जाये तो उसके मूल प्रभव तक पहुँचाया जा सकता है।

जाति वंश–वृक्ष का सूक्ष्म रूप से अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उसमें अनेक उप–प्रतिरूप (Sub patterns) पाये जाते हैं, जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं (चित्र 6.1) :

1. अपसरण (Divergence) – अपसरण में दो या दो से अधिक वंश परम्पराओं (lineages) का विकास इस ढंग से होता है कि वे अपने मूल पूर्वज (Original ancestral) जातियों से क्रमशः भिन्न होती जाती हैं।

2. समाभिरूपता (Convergence) – समाभिरूता अपसरण का विरुद्ध प्रतिरूप है जिसमें विकास एक केन्द्र की ओर इस प्रकार होता है कि दो या दो अधिक असम्बद्ध (Unrelated) जातियों से समान गुण वाली जातियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

3. समान्तर अवरोह (Parallel descent) – इनमें विकास मूल रूप से अपसरित (Divergent) या असम्बद्ध वंश–परम्पराओं का विकास समान्तर रूप से एक ही दिशा में होता है।

4. समरूपता (Homoeomorphy) – मूल रूप से असम्बद्ध, दो भिन्न समाभिरूपी (convergent) जातियों की एक ही दिशा में विकास की प्रवृत्ति को समरूपता कहते हैं। इस प्रकार विकसित जातियों के बाह्य गुण इतने अधिक समान होते हैं कि उन्हें केवल बाह्य गुणों के आधार पर एक दूसरे से पहचानना कठिन होता है। ऐसी स्थिति में उनके अभिनिर्धारण के लिये उनकी उत्पत्ति का ज्ञान होना आवश्यक है। ऐसी जातियों को समरूपी कहते हैं तथा इस घटना को समरूपता (Homoeomorphism) कहते हैं। समरूपता के उदाहरण ब्रेकियोपॉड और अमोनाइट में बहुतायत से मिलते हैं।

5. नियत–विकास (Orthogenesis) – एक दिशीय (Unidirectional) विकास–प्रवृत्ति को नियत–विकास कहते हैं। नियत–विकास के सिद्धान्त के अनुसार कुछ जातियों में अनेक अपसरित दिशाओं की अपेक्षा केवल एक दिशा में विकसित होने की जन्मजात प्रवृत्ति पायी जाती है।

प्राणी–विज्ञानी और कुछ जीवाश्म–विज्ञानी भी नियत विकास के सिद्धान्त की उपयोगिता को पूर्णरूपेण स्वीकार नहीं करते।

6. अनुत्क्रमणीयता का नियम (Law of Irreversibility) – इस नियम के अनुसार विकासीय दिशा में कभी भी उत्क्रमण नहीं होता, अर्थात् विकास सर्वदा अग्र दिशा में ही होता है। यदि किसी प्राणि समूह के किसी अंग विशेष अथवा अस्थिपंजर के किसी भाग का लोप हो जाता है तो उस वंश के प्राणि समूह में वह अंग कभी दोबारा विकसित नहीं होता।

अनुत्क्रमणीयता के नियम को सर्वप्रथम डोलो (Dollo) ने प्रतिपादित किया इसलिए यह डोलो का अनुत्क्रमणीयता का नियम के नाम से जाना जाता है।

निम्नलिखित समूहों की आकारिकी एवं भू–वैज्ञानिक इतिहास –

संघ : सीलेन्टरेटा
(Phylum : Coelenterata)

वर्ग एन्थोजोआ (Class: Anthozoa)

Anthozoa ग्रीक उद्‌भव का शब्द है (Anthos = पुष्प, Zoon = प्राणी)। पॉलिप के स्पर्शक फैलने के बाद वह पुष्प के समान दिखने लगता है, इसीलिए इन प्राणियों को एन्थोजोआ नाम प्राप्त हुआ है।

एन्थोजोआ वर्ग के अन्तर्गत आने वाले प्राणियों में प्रवाल और समुद्री एनीमोन मुख्य हैं। ये पूर्णरूपेण पॉलिपरूप (Polypoid) और समुद्री प्राणी हैं। बाह्य रूप से ये अरीय सममितिक दिखते हैं, परन्तु सूक्ष्म रूप से देखने पर विदित होता है कि वास्तव में ये द्विपार्श्विक सममितिक होते हैं। मुख–पथ (Stomodaeum) की उपस्थिति, आन्त्र–गुहिका या अंत्र (Coelenteron or Enteron) का खड़े अरीय विभाजनों (Radiating Partition), जिन्हें आन्त्र–योजी या मेसेन्टरी (Mesenteries) कहते हैं, द्वारा अनेक कोष्ठों में विभाजित होना तथा जनना तत्वों का मेडूसा की अपेक्षा आन्त्र–योजनी की अन्तस्त्वचा पर विकसित होना, एन्थोजोआ के कुछ ऐसे लक्षण हैं, जो हाइड्रोजोआ में नहीं पाये जाते।

सामान्य समुद्री एनीमोन या सरल प्रवाल की देह बेलनाकार होती है जिसका एक छोर संलग्न होता है तथा दूसरा छोर खुला होता है। खुले छोर को मुख कहते हैं। मुख के चारों ओर स्पर्शक पाये जाते हैं। मुखपथ द्वारा मुख अन्दर आन्त्र–गुहिका में खुला रहता है। आन्त्र–गुहिका खड़े अरीय आन्त्र–योजनी द्वारा कोष्ठों में विभाजित होती है। आन्त्र–योजनी नीचे आधार की ओर मुक्त होते हैं, परन्तु ऊपर की ओर मुखपथ से जुड़े रहते हैं। स्पर्शक आन्त्र–योजनी द्वारा निर्मित कोष्ठों के ऊपर स्थित होते हैं तथा प्रत्येक स्पर्शक के अन्दर का खाली स्थान अपने नीचे स्थित कोष्ठ से संलग्न होता है।

प्राणी की देह की तीन परतों – बाह्य त्वचा, मेसोग्लिया और अन्तस्त्वचा की बनी होती है। समुद्री एनीमोन में अस्थिपंजर नहीं पाया जाता, परन्तु एन्थोजोआ में बहिःकंकाल (Exoskeleton) बहुतायत से पाये जाते हैं जिनका निर्माण बाह्य कवच कोषों द्वारा होता है। कुछ एन्थोजोआ में आन्तरिक अस्थिपंजर पाया जाता है

चित्र 6.2: जॉएन्थेरियन (हेक्साकोरल) प्रवाल का पॉलिप–बाह्य एवं आंतरिक आकारिकी

जिसका निर्माण मेसोग्लिया के कोशों द्वारा होता है। एन्थोजोआ के सम्पूर्ण अस्थिपंजर को प्रवाल या कोरलम (Corallum) कहते हैं। संयुक्त प्रवाल में प्रत्येक पॉलिप के अस्थिपंजर को प्रवालनाल या कोरलाइट (Corallite) कहते हैं।

एन्थोजोआ वर्ग को पांच मुख्य उपवर्गों में विभाजित किया गया है –

(1) जोएन्थेरिया
(2) एल्सियोनेरिया
(3) टैबुलेटा
(4) रूगोसा
(5) साईजोकोरालिया

इनमें जोएन्थेरिया, रूगोसा व टैबुलेटा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

उप–वर्ग जोएन्थेरिया

जोएन्थेरिया के अन्तर्गत आने वाले प्राणियों में प्रवाल सबसे मुख्य है। इनके अन्तर्गत समुद्री एनीमोन जैसे अन्य प्राणी भी आते हैं परन्तु इनमें अस्थिपंजर नहीं पाया जाता। जोएन्थेरिया को हेक्साकोरल (Hexacoral) के नाम से भी जाना जाता है।

1. गण स्क्लैरेक्टिना

जीवित एन्थीजोआ में स्क्लैरेक्टिना की संख्या सर्वाधिक है। इनके अन्तर्गत अश्म–प्रवाल (Stony Corals) और अन्य अनेक जीवाश्म–जातियाँ आती हैं। स्क्लैरेक्टिना के पॉलिप की संरचना प्रारूपिक समुद्री एनामोन जैसी ही होती है (चित्र 6.2)। अन्तर केवल इतना ही होता है कि स्क्लैरेक्टिना में अस्थिपंजर पाया जाता है, समुद्री एनीमोन में नहीं। इनमें एकल और कालोनी, दानों में अस्थिपंजर कैल्शियम के कार्बोनेट का बना होता है जो बाह्य त्वचा से स्त्रावित होता है।

अस्थिपंजर

प्रारूपिक सामान्य प्रवाल का अस्थिपंजर शंक्वाकार होता है, जिसका आधार थोड़ा अवनमित होता है। इस अवनमित भाग को कलश या कैलिक्स (Calyx) कहते हैं। जीवित अवस्था में पॉलिप इस कैलिक्स पर बैठने वाली जैसी स्थिति में पाया जाता है। प्रवाल या कोरलम बाह्य भित्ति से परिबद्ध होता है। कभी–कभी इस बाह्य भित्ति को परिबद्ध करते हुए एक चूनेदार परत और पाई जाती है, जिसे अधिप्रावरक (Epitheca) कहते हैं। अधिप्रावरक से घिरे स्थान को आंतरांग कोष्ठ (Visceral chamber) कहते हैं, जो विभिन्न प्रकार के विभाजनों द्वारा अनेक भागों में विभाजित होता है। इन विभाजनों में खड़ी पट्टिकाएँ, जिन्हें पट (Septa) कहते हैं, सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। ये खड़े पट अस्थिपंजर के उपान्त से केन्द्र तक जाते हैं तथा इनकी स्थिति आन्त्र–योजनी से एकान्तर होती है। पट विभिन्न साइज के होते हैं। कुछ केन्द्र

तक पहुँचते हैं परन्तु कुछ की साइज छोटी होती है और ये केन्द्र तक नहीं पहुँचते। साइज के आधार पर इन्हें बहुधा श्रेणियों या चक्रों में विभाजित किया जाता है। बड़ी साइज के पटों को द्वितीयक और तृतीयक चक्र के पट कहते हैं। पटों की तरह आन्त्र–योजनी भी प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक आदि चक्रों में पाये जाते हैं। प्राथमिक आन्त्र–योजनी का निर्माण सर्वप्रथम होता है तथा ये मुखपथ तक जाते हैं। द्वितीयक और तृतीयक चक्रों के आन्त्र–योजनी क्रमशः छोटी साइज के होते हैं तथा ये मुख–पथ तक नहीं जाते। आन्त्र–योजनी युग्मों में पाये जाते हैं। साधारणतः प्राथमिक और द्वितीयक आन्त्र–योजनी के छह युग्म तथा तृतीयक के बारह युग्म पाये जाते हैं। एक युग्म के दो आन्त्र योजनी के बीच के संकीर्ण स्थान को एन्टोसील (Entocoel) और दो निकटवर्ती युग्मों के बीच के चौड़े स्थान को एक्सोसील (Exocoel) कहते हैं।

पट और आन्त्र–योजनी के चक्रों की स्थिति में निश्चित सम्बन्ध होता है। प्राथमिक पट प्राथमिक आन्त्र–योजनी के एन्टीसील में तथा द्वितीयक और तृतीयक पट प्रमशः द्वितीय और तृतीयक आन्त्र–योजना के एन्टोसील में स्थित होते हैं।

प्रवाल के मध्य में, जहाँ प्राथमिक पट मिलते हैं, बहुधा एक छड़ जैसी संरचना होती है जिसे स्तम्भिका या कोलूमेला (Columella) कहते हैं। यह स्तंभिका प्रवाल के आधार से नीचे तक जाती है। इसकी संरचना में अत्यधिक विभिन्नता पाई जाती है। अविरल ठोस तथा कलश में घुंडीदार या नुकीली स्तंभिका को शूकाकार (Styliform) स्तंभिका कहते हैं। परन्तु कभी–कभी इसका ऊपरी भाग रंध्रयुक्त होता है, तब इसे स्पंजी स्तंभिका कहते हैं। जो स्तंभिका पटों से निकले प्रवर्धों के आपस में ऐंठन से निर्मित होता है उसे कूट स्तंभिका कहते हैं।

पटों के अलावा प्रवाह के अस्थिपंजर में एक और खड़े विभाजन पाये जाते हैं जिन्हें पाली (Pali) कहते हैं। पाली, स्तंभिका से संलग्न खड़ी अरीय पटलिकाएँ (Lamellae) होती हैं जो लघु पटों के अभिमुख स्थित होती हैं। पाली पटों के विकास से सूक्ष्म रूप से संबंधित होती हैं। निकटवर्ती पट के अभिमुख फलक छड़ों के द्वारा एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। इस छड़ जैसी संरचना को पटबंध या साइनेप्टीकुलम (Synapticulum) कहते हैं।

पटबन्ध पटों के बीच में स्थित आंत्र–योजनी की छिद्रित करते हुए जाते हैं। पटबंध के समान ही निकटवर्ती पट बहुधा क्षैतिज या तिर्यक और सामान्यतः वक्र पट की सहायता से जुड़े रहते हैं। इन पटों को भित्ति–योजिका (Dissepiments) कहते हैं। कुछ जातियों में भित्तियों जिकाओं की संख्या, आन्तरंग कोष्ठ के उपान्त के पास, सबसे अधिक होती है जिसके फलस्वरूप स्पंजी या आशयी ऊतक (Vesicular tissue) का निर्माण होता है। ये भित्तियोजिकायें प्राणी के मांसल भाग को आधार प्रदान करती हैं। उपरोक्त संरचनाओं के अतिरिक्त आंतरांग कोष्ठ के मध्य में क्षैतिज पट पाये जाते हैं जिन्हें टैबुली (Tabulae) कहते हैं। पूर्ण विकसित होने पर इनका विस्तार आंतरांग कोष्ठ की सीमा के बाहर तक होता है। टैबुली सपाट, अवतल या उत्तर होते हैं तथा एक के ऊपर एक विन्यस्त होते हैं जिसके फलस्वरूप आंतरांग कोष्ठ अनेक क्षैतिज कक्षाओं में विभाजित हो जाता है। कुछ जातियों में पट प्रवाल–भित्ति के बाहर निकले होते हैं जिसके कारण भित्ति का बाह्य सतह पर कटक जैसी संरचना का निर्माण हो जाता है। इन कटकों को पर्शुका (Costae) कहते हैं।

भू–वैज्ञानिक वितरण

रूगोसा के पर्मियन में विलुप्त होने के पश्चात् कुछ काल तक प्रवाल नहीं पाये जाते। स्क्लैरेक्टिना का अभ्युदय मध्य ट्राइएसिक में हुआ। जुरैसिक में इनकी संख्या बढ़ी तब से वर्तमान तक ये बहुतायत से पाये जाते हैं।

2. उप वर्ग रूगोसा या टैट्राकोरल

रूगोसा विलुप्त प्रवाल का एक महत्वपूर्ण और विस्तृत समुदाय है। इसका वितरण केवल पुराजीवी महाकल्प तक ही सीमित है। प्रवाल–नाल की परिधि पर चार मुख्य पटों की उपस्थिति तथा कलश में सुविकसित पटों का चार क्षेत्रों में विन्यास इनका मुख्य लक्षण है। कलश के चार क्षेत्रों में विभाजन के कारण ही इन्हें टैट्राकोरला कहते हैं। प्रत्येक क्षेत्र को चतुर्थांश कहते हैं। अध्ययन की सुगमता की दृष्टि से इन चतुर्थांशों को क्रमशः वाम–मुख्य चतुर्थांश, दक्षिण मुख्य चतुर्थांश, वामप्रति चतुर्थांश और दक्षिण–प्रति चतुर्थांश कहते हैं। सरल प्रवाल में प्रति चतुर्थांशों की अभिवृद्धि मुख्य चतुर्थांशों की अपेक्षा बहुधा अधिक तीव्र होती है, इसलिए कलश का झुकाव मुख्य चतुर्थांशों की ओर अधिक होता है तथा प्रति–चतुर्थांशों में पटों की संख्या अधिक होती है। एकल रूप में बहुधा सीधा या वक्र शंक्वाकार बहिःकंकाल अथवा अस्थिपंजर पाया जाता है, जैसे जैफ्रेंटिस (Zaphrentis) में। उपरोक्त आकार के कारण इन्हें श्रृंग प्रवाल (Horn corals) भी कहते हैं।

अस्थिपंजर

प्रारूपिक रूगोसा–प्रवाल साधारणतः शंक्ककार या बेलनाकार होता है जो अरीय और संकेन्द्री पट्टिकाओं द्वारा अनेक कक्षों में विभाजित होता है। इसके अतिरिक्त रूगोसा प्रवाल की निम्नलिखित आकृतियाँ भी पाई जाती है (चित्र 6.3)।

1. टरबिनेट
2. डिस्कोईड
3. पेटेलेट
4. सिलेन्ड्रीकल
5. केल्सियोलोइड
6. सिरेटोइड
7. पिरेमिडल

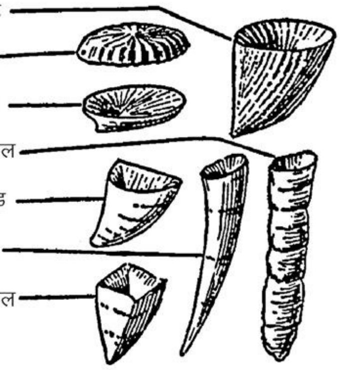

चित्र 6.3ः रूगोसा (टेट्राकोरल) प्रवाल की विभिन्न आकृतियाँ

ये पट्टिकायें क्षैतिज, आनत और वक्र आदि विभिन्न रूप में विन्यस्त होती हैं। इनका वर्णन करने के लिए भिन्न–भिन्न पारिभाषिक शब्दावली का उपयोग किया जाता है। कंटक, कटक, गाँठ और नलिका आदि के विकास के कारण अस्थिपंजर की संरचना और जटिल हो जाती है।

अस्थिपंजर चूनेदार पदार्थ का बना होता है तथा इसकी संरचना रेशेदार होती है। एकल प्रवाल सरल तथा संयुक्त प्रवाल दुमाकृतिक या संपुजित होता है। प्रवाल–नाल के अन्त में अवनमित भाग को कलश या कैलिक्स कहते हैं (चित्र 6.4)। प्रवालनाम अधिप्रावरक से ढँका रहता है। सम्पूर्ण प्रवाल साधारणतः एक चूनेदार आच्छद से परिबद्ध होता है, जिसे पूर्ण–प्रावरक (Holotheca) कहते हैं। पट, विकसित होने वाली प्रथम आंतरिक संरचना है, इसलिए इनके गुण और लक्षण वर्गीकरण की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

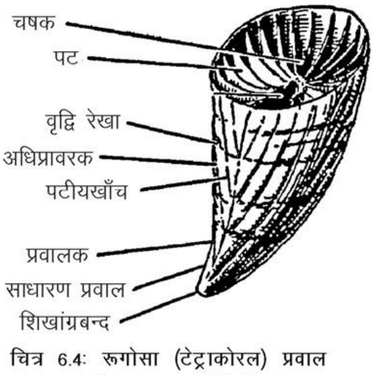

चित्र 6.4ः रूगोसा (टेट्राकोरल) प्रवाल की बाह्य आकारिकी

पटों का विस्तार शीर्ष से कलश के आधार तक तथा प्रवाल–नाल की परिधि से अक्ष की दिशा में, अथवा पूर्णरूपेण अक्ष तक होता है। कभी–कभी ये केन्द्र में संलग्न और ऐंठनदार होकर अक्षीय–स्तम्भ अर्थात् स्तम्भिका का निर्माण करते हैं। पटों की दो मुख्य श्रेणियाँ होती हैं – अपेक्षाकृत अधिक लम्बे पट को मुख्य पट (Major septum) और छोटे पट का गौण पट (Minor septum) कहते हैं। पटों के विकास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वृद्धि की स्थिति में द्विपार्श्विक सममिति के तल में एक पट का निर्माण होता है जिसे अक्षीय पट कहते हैं। बाद में यह दो व्यासतः अभिमुख पटों में विभाजित हो जाता है। इसमें से जिस पट की लम्बाई अर्धव्यास से अधिक होती है उसे मुख्य पट (Cardinal septum) और जिसकी लम्बाई अर्धव्यास से कम होती है उसे प्रति–पट (Counter septum) कहते हैं। अक्षीय पट के विकास के कुछ समय उपरान्त उसके दोनों पार्श्वों में मुख्य छोर (Cardinal) की ओर एक–एक छोटी, खड़ी पट्टिकाओं का विकास होता है जिन्हें पक्ष पट (Alarsepta) कहते हैं। विकास की तीसरी अवस्था में प्रति छोर (Counter end) की ओर अक्षीय तट के दोनों पार्श्वों में एक–एक खड़ी पट्टिकाओं का निर्माण होता है जिन्हें प्रति पार्श्व पट (Counter Lateral Septa) कहते है। इसके उपरान्त विकास में थोड़ा अवरोध उत्पन्न होता है। इस अवरोध के पूर्व विकसित छह पटों (मुख्य, प्रति, दो पक्ष और दो प्रति–पार्श्व) का आद्य–पट (Protosepta) तथा अवरोध के उपरान्त विकसित मुख्य पटों को पश्च–पट (Metasepta) कहते हैं। आद्य पटों के विकास के बाद विभिन्न विधियों से अनेक पश्च और गौण पटों का निर्माण होता है और इस प्रकार प्रौढ़ प्रवाल में इनकी संख्या एक दर्जन से सौ या उससे भी अधिक होती है।

अनेक रूगोसा प्रवालों में, जैसे– जैफ्रेंथिस (Zaphrenthis), पटों के अर्ध या पूर्व वृद्धिरोध (Absorption) के कारण कलश के धरातल पर एक अवनमन का निर्माण हो जाता है, जिसे खातिका (Cardinal fossula) कहते हैं। साधारणतः केवल मुख्य खतिका ही पायी जाती है, परन्तु कुछ जातियों में पक्ष–खातिका (Alar fossula) और प्रति–खातिका (Counter Fossula) भी पायी जाती है जो प्रति पूर्व पाटों बीच स्थित होती है। एक से अधिक खातिकाओं के विकास के फलस्वरूप अस्थिपंजर की द्विपार्श्विक सममिति का लोप हो जाता है।

रूगोसा में भित्ति–योजिका, टैबुली, स्तम्भिका आदि सामान्यतः सुविकसित होती है।

भू–वैज्ञानिक वितरण

रूगोसा सर्वप्रथम निम्न आर्डोविशन में पाये गये। सिल्यूरियन और डिवोनी कल्पों में ये अपने चरम विकास पर पहुँच गये, परन्तु डिवोनी कल्प के बाद इनका ह्रास प्रारंभ हो गया तथा पर्मियन

के अन्त तक ये पूर्ण रूप से विलुप्त हो गये। सिल्यूरिन काल में यद्यपि रूगोसा अपने चरमोत्कर्ष पर थे तथापि टैबुलेटा की तुलना में इनकी संख्या गौण ही थी।

रूगोसा का भू–वैज्ञानिक वितरण सीमित होने के कारण इनमें से अनेक विश्वसनीय सूचक–जीवाश्म हैं। निम्न कार्बनी कल्प में ये विशेष रूप से स्तरित शैलविज्ञान की दृष्टि से महत्व के हैं, क्योंकि इस काल में अनेक उत्तम सूचक–जीवाश्म उपलब्ध हैं जिनका उपयोग कटिबन्धीय जीवाश्म (Zonal fossil) के रूप में किया गया है। इसमें जैफ्रेंटिस, जैफ्रेंटाइटीज (Zaphrentites) इत्यादि मुख्य हैं।

इंग्लैण्ड में निम्नकार्बनी कल्प के बाद रूगोसा कोरल नहीं पाये जाते। अन्य देशों की उपरि कार्बनी और पर्मियन शैलों में पाये जाते हैं परन्तु पर्मियन के अन्त तक वे विलुप्त हो चुके थे।

उप–वर्ग टैबुलेटा

टैबुलेटा विलुप्त प्रवाल है जो केवल पुराजीवी महाकल्प में ही सीमित है। आन्तरिक वेदी या मध्य पट जैसी संरचना की उपास्थिति इनका मुख्य लक्षण है। इन मध्य पटों को टैबुली कहते हैं जो अत्यन्त सुदृढ़ी होती है। इन टैबुली के कारण ही इनका नाम टैबुलेटा पड़ा।

टैबुलेटा के प्रवाल का आकार बहुधा प्रिज्मीय होता है। कभी–कभी प्रवाल का प्रत्येक–नाल एक दूसरे से असम्बद्ध रहता है। ऐसी स्थिति में प्रवाल–नाल एक दूसरे से सरलतापूर्वक अलग किये जा सकते हैं, परन्तु बहुधा प्रवाल–नाल आपस में भित्ति रन्ध्रों (Mural Pores) द्वारा सम्बन्धित रहते हैं (चित्र 6.5)।

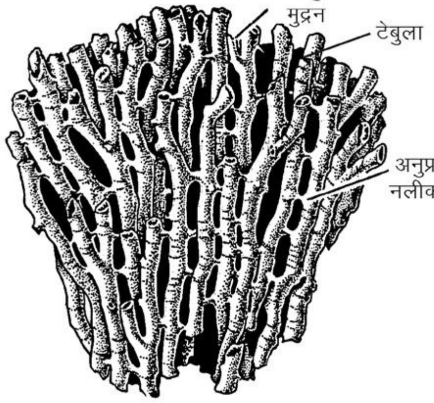

चित्र 6.5: टेबुलेटा प्रवाल (सीरिन्गोपोरा) की बाह्य आकारिकी

फैवोसाइटीज (Favosities), सिरिंगोपोरा (Syringopora) और हैलीसाइटीज (Halysites) आदि इस उपवर्ग की प्रमुख जातियाँ हैं।

टैबुलेटा के वर्गीकरण के विषय में वैज्ञानिक एकमत नहीं है, क्योंकि विलुप्त होने के कारण इनके पॉलिप और मांसल भाग के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इस उपवर्ग और एल्सियोनैरिया की कुछ जीवित जातियों में अत्याधिक समानता है, उदाहरणतः सिरिंगोपोरा और ट्यूबीपोरा (Tubipora) तथा हैलियोलाइटीज और हैलियोपोरा अत्यधिक मिलते–जुलते हैं। अतः कुछ लेखक इन्हें एल्सियोनैरिया से सम्बन्धित करते हैं, परन्तु कुछ अन्य लेखक इस मत से सहमत नहीं है और इन्हें फैवोसाइटीज और जीवित एल्वियोपोरा (Alveopora) की संरचना में समानता के आधार पर जोएन्थेरिया के अधिक निकट मानते हैं।

भू–वैज्ञानिक वितरण

टैबुलेटा अपने अस्तित्व में सर्वप्रथम मध्य–आर्डोविशन में आये। सिल्यूरियन एवं डिवोनी में ये बहुतायत से पाये जाते हैं। इसके बाद इनकी संख्या में कमी होती गयी तथा पुराजीवी महाकल्प के अंत तक ये पूर्णरूप से विलुप्त हो गये।

संघ : आर्थ्रोपोडा
(Phylum : Arthropoda)

वर्ग ट्राइलोबाइटा (Class Trilobita)

ट्राइलोबाइट समुद्री जल में पाये जाने वाले प्राणियों का समूह है। यह समूह पूर्णरूपेण विलुप्त हो चुका है जो केवल पैलिओजोइक तक ही सीमित है। ट्राइलोबाइट सर्वप्रथम इस धरातल पर अवतरित तथा सरलता से प्राप्त जीवाश्मों में से होने के कारण वैज्ञानिकों की रुचि के विशेष विषय रहे, जिसके फलस्वरूप इनका अध्ययन अत्यन्त विस्तार से हुआ।

ट्राइलोबाइट की देह का आकार बहुधा अण्डाकार होता है। देह को अनुदैर्ध्य खाँचों, जिन्हें अक्षीय–खाँच (Axial-furrow) कहते हैं, के द्वारा तीन भागों में विभाजित रहती है। मध्य भाग को अक्षीय पालि (Axial lobe) और बाजू के दोनों भागों को पार्श्व पालि (Pleural lobe) कहते हैं। इस त्रिविभागीय विभाजन के कारण ही इन प्राणियों का नाम ट्राइलोबाइट पड़ा। इनका पृष्ठ (Dorsal) थोड़ा उन्नत तथा अधर चपटा होता है। ट्राइलोबाइट का बहिःकंकाल (Exoskeleton) काइटिन का बना होता है, जिसे दृढ़ता प्रदान करने हेतु बहुधा कैल्शियम कार्बोनेट और कैल्शियम फास्फेट भी पाया जाता है। बहिःकंकाल कई खण्डों (Segments or Somites) में विभाजित रहता है खण्डों के बीच का अध्यावरण (Integument) नर्म और लचीला होता है जिससे प्राणी को संचलन में सरलता होती है। जीवित अवस्था में प्राणी के अधर

भाग पर प्रायः प्रत्येक खण्डों में एक–एक उपांग–युगल (Pair of appendages) तथा शीर्ष (Head) के नीचे अग्र भाग की ओर एक युगल लघु–शृंगिकाओं (Antennules) को होता है। उपांग तथा शृंगिकाएँ अत्यन्त सुकुमार होने के कारण विरल स्थिति में ही जीवाश्म में परिरक्षित हो पाती हैं। ऐसा ही जीवाश्म ट्राईआरर्थस (Triarthrus) है जिसमें उपांग और लघु–शृंगिकायें भी परिरक्षित हैं।

बहिःकंकाल (Exoskeleton)

ट्राइलोबाइट का बहिःकंकाल पृष्ठ परिरक्षक (Dorsal Shield) और अधर परिरक्षक (Ventral Shield) इन दो भागों का बना होता है। अधर–परिरक्षक चूंकि चूनेदार नहीं होता, इसलिए मृत्यु के उपरान्त यह भाग बहुधा नष्ट हो जाता है और साधारणतः जीवाश्म में परिरक्षित नहीं होता। पृष्ठ–परिरक्षक प्राणी के पूरे उपान्त पर कुछ दूरी तक अधर भाग पर मुड़ा होता है। इस शेल्फ जैसे मुड़े भाग को डबल्योर (Doublure) कहते हैं।

पृष्ठ–परिरक्षक को मुख्य तीन भागों में विभाजित किया जाता है। अग्र भाग को शीर्ष (Head or Cephalon), मध्य भाग को वक्ष (Thorax) और पश्च भाग को पाइजिडियम (Pygidium) कहते हैं (चित्र 6.6)। शीर्ष और पाइजिडियम के खंड एक दूसरे से संयुक्त होते हैं परन्तु वक्ष के खंड मुक्त होते हैं। वक्ष के खंडों में एक दूसरे पर सूक्ष्म रूप से सरकने (Slide) की क्षमता होती है जिससे प्राणी के चलन में सहूलियत होती है।

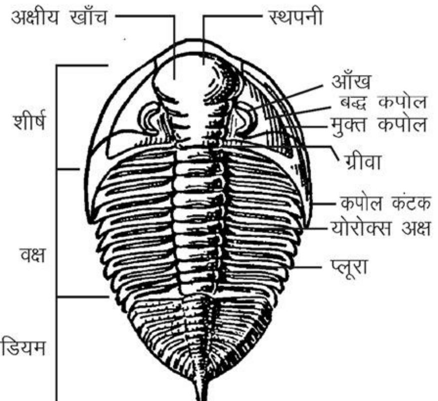

चित्र 6.6: ट्राइलोबाइटा का बाह्य कंकाल

शीर्ष (Head or Cephalon)

शीर्ष बहिःकंकाल का सबसे अग्र भाग है। ट्राइलोबाइट का सबसे महत्वपूर्ण अंग शीर्ष ही है, क्योंकि प्राणी के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन इसी भाग में होते हैं। केवल शीर्ष के अध्ययन की सहायता से ही अनेक ट्राइलोबाइट का अभिनिर्धारण किया जा सकता है। शीर्ष बहुधा अर्ध वृत्ताकार (Semi-Circular), अर्ध–दीर्घ–वृत्ताकार (Semi-Elliptical) या कभी–कभी त्रिभुजीय होता है जो पाँच से सात अग्र शीर्षखंडों (Cephalic segments) का बना होता है। ट्राइलोबाइट के सम्पूर्ण बहिः कंकाल की तरह यह भी दो अक्षीय खाँचों के द्वारा तीन भागों में विभाजित होता है। अक्षीय भाग शेष पार्श्व भागों से अपेक्षाकृत अधिक उन्नत होता है जिसे स्थपनी (Glabella) कहते हैं।

स्थपनी अनुप्रस्थ खाँचों की सहायता से बहुधा एक अग्र पालि (Anterior lobes) और दो या तीन पश्च पालि (Posterior lobes) में विभाजित होता है। स्थपनी का पश्च भाग, देह के शेष भाग से, अनुकपाल खाँच (Occipital furrow) द्वार अनुकपाल वलय (Occipital ring) में विभाजित होता है। स्थपनी की अनुप्रस्थ खाँचें, जिन्हें स्थपनी खाँच कहते हैं, कभी–कभी मध्य में एक दूसरे से नहीं मिलती और इस प्रकार वे केवल पार्श्व–खाँचों के रूप में ही पाई जाती हैं। इन खाँचों का विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। प्राणी के विकास के साथ–साथ स्थपनी–खाँचों की प्रवृत्ति क्रमशः अस्पष्ट होने की ओर होती है और अन्त में अनुकपाल खाँचों को छोड़कर, शेष पूर्णरूपेण लुप्त हो जाती है। खाँचों के विलोप की यह प्रवृत्ति स्थपनी के अग्र से प्रारंभ होकर क्रमशः पश्च भाग की ओर होती है। अगेती और आदिम ट्राइलोबाइट में ये खाँचें सुस्पष्ट और साफ पाई जाती हैं परन्तु बाद की जातियों में क्रमशः अस्पष्ट होती जाती है और अन्त में उनका लोप हो जाता है।

स्थपनी की आकृति और साइज में विभिन्न जातियों में भिन्नता पाई जाती है। यह छोटा, पूरे शीर्ष के केवल सूक्ष्म भाग को घेरे अथवा बड़ा शीर्ष के अधिकतम भाग को घेरे हुए हो सकता है। साधारणतः यह अग्र की ओर चौड़ा और पश्च की ओर संकरा, उदाहरणतः पैराडाक्साइडीज (Paradoxides), अथवा इसके विपरीत, अग्र की ओर संकरा और पश्च की ओर चौड़ा हो सकता है, उदाहरणतः जेकेन्थाइडीज (Zacanthoides)।

स्थपनी के दोनों पर्श्वों में स्थित, शीर्ष भाग को कपोल (Cheeks) कहते हैं जो स्थपनी से दो अक्षीय–खाँचों के द्वारा विलगित होते हैं। ये कपाल शीर्ष के अग्र भाग में स्थित उपान्त–खाँच के द्वारा शेष भाग से पृथक होते हैं। कपोलों का आकार बहुत कुछ त्रिकोणीय होता है। कपोल स्थपनी की अपेक्षा कम उन्नत होते हैं तथा बहुधा चपटे अथवा थोड़े अवतल सीमान्त के द्वारा परिवेष्ठित (Bordered) होते हैं। ये सीमान्त ट्राइन्यूक्लियस (Trinucleus) और हारपेस (Harpes) में अपेक्षाकृत अधिक चौड़े होते हैं।

प्रत्येक कपाल एक सीवन के द्वारा दो भागों में विभाजित होता है। इस सीवन को आननी सीवन (Facial Suture) कहते हैं। कपोल के बाह्य भाग को मुक्त–कपोल (Free-Check) और

स्थपनी के निकटवर्ती भाग को बद्धकपोल (Fixed-Cheek) कहते हैं। मुक्त–कपोल बद्ध–कपोल पर सूक्ष्म रूप से इधर–उधर सरक सकता है तथा शेष शीर्ष से अलग हो सकता है। स्थपनी और बद्ध–कपोल के सम्मिलित भाग को उर्ध्व कपाल (Cranidium) कहते हैं। शीर्ष के पार्श्व और पश्च उपान्त के बीच के कोण को कपोल कोण (Genal Angle) कहते हैं। कपोल–कोण गोलाई लिये हुए होते हैं, उदाहरणतः कालीमिनी (Calymene)। परन्तु जब ये लम्बे नुकीले शूल जैसे होते हैं, जैसे – पैराडाक्साइडीज (Paradoxides), तब इन्हें कपोल कंटक (Genal Spines) कहते हैं।

आननी–सीवन की स्थिति विभिन्न जातियों में एक जैसी नहीं होती। बद्ध–कपोल और मुक्त–कपोल का छोटा अथवा बड़ा होना आननी–सीवन की स्थिति पर ही निर्भर करता है। उदाहरणस्वरूप इल्लिनस (Illaennus) में मुक्त कपोल छोटा तथा फिलिप्सिया (Phillipsia) में बहुत बड़ा होता है। कपोल–कोण बद्ध–कपोल का भाग होगा अथवा मुक्त–कपोल का, यह भी आननी–सीवन की स्थिति पर निर्भर करता है। यदि आननी सीवन शीर्ष के पश्च भाग से प्रारंभ होकर उग्र उपान्त तक जाती है तो कपोल–कोण मुक्त कपोल का भाग होगा, परन्तु यदि यह शीर्ष के पार्श्व उपान्त से प्रारंभ होकर अग्र की ओर जाती है तो इस स्थिति से प्रारंभ होकर अग्र की ओर जाती है तो इस स्थिति में कपोल–कोण बद्ध कपोल का भाग होगा। प्रथम स्थिति को ऑपिस्थोपैरियन (Opisthoparian) और बाद वाली स्थिति को प्रोपैरियन (Proparian) कहते हैं।

शीर्ष–सीवनों (Cephalic sutures), विशेष रूप से आननी–सीवन का ट्राइलोबाइट के वर्गीकरण और व्यक्ति–वृत्त की दृष्टि से बड़ा महत्व है। ऊपर के विवरण के अनुसार आननी–सीवन शीर्ष के पश्च अथवा पार्श्व भाग से प्रारंभ होकर अग्र उपान्त पर एक दूसरे से मिल जाती है अथवा अधर में स्थित डबल्योर तक जाती है। डबल्योर के आननी–सीवन के इस भाग को संयोजी–सीवन (Connecting Suture) कहते हैं। शीर्ष डबल्योर (Cephalic Doublure) के मध्य में तथा मुख के सामने और नीचे की ओर स्थित एक अण्डाकार पट्टिका होती है जिसे हाइपोस्टोम (Hypostome) या लेब्रम (Labrum) कहते हैं। हाइपोस्टोम डबल्योर से हाइपोस्टोमी सीवन (Hypostomal Suture) के द्वारा पृथक होता है कभी–कभी संयोजी–सीवन एक अनुप्रस्थ सीवन के द्वारा जुड़ जाती है और हाइपोस्टोम से अग्र एक पट्टिका पृथक हो जाती है जिसे रोस्ट्रम (Rostrum) तथा अनुप्रस्थ सीवन को रोस्ट्रमी सीवन (Rostral Suture) कहते हैं।

नेत्र ट्राइलोबाइट का एक महत्वपूर्ण अंग है जो मुक्त–कपोल पर उस स्थान पर स्थित होते हैं जहाँ आननी–सीवन कोण–सा बनाती है। नेत्र बहुधा संयुक्त होते हैं और अनगिनत लैन्सों के बने होते हैं। कभी–कभी इन लैन्सों की संख्या 15 हजार तक पाई जाती है, उदाहरणतः रेमोप्लुराइड (Remopleuride)। नेत्रों की संरचना अत्यन्त जटिल होती है तथा विभिन्न जातियों में इनका आकार और स्थिति भिन्न–भिन्न होती है। ये बहुधा शंक्वाकार होते हैं। शंकु का शीर्ष गोलाई लिए हुए या रुंडित (Truncated) होता है। कभी–कभी नेत्र, सरल, केवल एक या एक से कुछ अधिक लैन्सों के बने होते हैं। उदाहरणस्वरूप, ट्राइन्यूक्लियस (Trinucleus) के नेत्र केवल एक और हारपेस (Harpes) के दो या तीन लैन्सों के बने होते हैं।

निम्न और मध्य केम्ब्रियन में पाये जाने वाले ट्राइलोबाइट पूर्णरूपेण नेत्रहीन होते हैं परन्तु इनमें नेत्र के स्थान पर स्थपनी के अग्र भाग के बीच एक महीन कटक पाया जाता है जिसे आननी–कटक (Facial Ridge) कहते हैं।

वक्ष (Thorax)

प्राणी के विकास की प्रथम अवस्थाओं में ही वक्ष के विकास के प्रायः सभी महत्वपूर्ण परिवर्तन हो चुके होते हैं इसलिए ट्राइलोबाइट में वक्ष के अध्ययन का महत्व अन्य भागों की अपेक्षा कम है। वक्ष अनेक खण्डों का बना होता है। खण्डों की संख्या विभिन्न जातियों में भिन्न–भिन्न पाई जाती है जो कम से कम दो, जैसे – एगनॉस्टस (Agnostus) से लेकर अधिकतम चौवालिस, जैसे – पीड्युमियस (Paedumias) तक होती है। खण्डों का संधि (Articulation) कुछ इस प्रकार की होती है कि वे एक दूसरे पर सूक्ष्म रूप से सरक सकते हैं। खण्डों की इस प्रकार की सन्धि खतरे के समय प्राणी के बेल्लित (Rolled) होने में सहायक होती है तथा बेल्लित अवस्था में अन्दर के मांसल भागों की रक्षा करती है। दो खण्डों के बीच की इस सन्धि को सन्धि–खाँच कहते हैं। वक्ष दो अक्षीय–खाँचों के द्वारा तीन भागों में विभाजित करता है। मध्य के अपेक्षाकृत अधिक उन्नत भाग को अक्षीय पालि और पार्श्व के दो भागों को अक्षीय पालि की अपेक्षा कम उन्नत होते हैं, पार्श्वक (Pleura) कहते हैं। पार्श्वक चिकने अथवा खाँचदार होते हैं। इस खाँच को पार्श्वक–खाँच (Pleural furrow) कहते हैं प्रत्येक अक्षीय –पालि का अग्र भाग आगे कुछ इस भांति बढ़ा हुआ होता है और सामने के खण्ड के पश्च भाग के नीचे निविष्ट (Inserted) होता है कि यह केवल प्राणी की बेल्लित अवस्था में ही दिखता है प्रत्येक पार्श्वक अक्ष से कुछ दूरी पर नीचे ओर पीछे की ओर मुड़ा होता है। इस प्रकार से बनी वक्रता को आलम्ब (Fulcrum) कहते हैं आलम्ब से बाह्य तक पार्श्वक के शेष भाग का फलक (Facet) कहते हैं। पार्श्वक का छोर कुछ जातियों में गोलाईदार और कुछ में नुकले शूल की तरह बढ़ा होता है।

वक्ष के खण्डों की संख्या और पाइजिडियम की साइज में विशेष सम्बन्ध है। जिन प्राणियों में वक्ष के खण्डों की संख्या कम होती उनकी पाइजिडियम ऐसे प्राणियों की पाइजिडियम से

तुलनात्मक दृष्टि से बड़ी होती है जिनमें वक्ष के खण्डों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है। उदाहरणस्वरूप, एगनास्टस (वक्ष–खण्डों की संख्या दो) और इओडिस्कस (Eodiscus) (वक्ष–क्षण्डों की संख्या दो या तीन) (चित्र 6.7) की पाइजिडियम, पेराडाक्साइडीज (वक्ष–खण्डों की संख्या सोलह से बीस) की पाइजिडियम से बड़ी होती है।

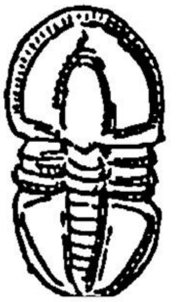

चित्र 6.7: इओडिस्कस

नये खण्डों की उत्पत्ति वक्ष के अंतिम खण्ड और पाइजिडियम के प्रथम खण्ड के मध्य से होती है। कुछ ट्राइलोबाइट में विकास के साथ–साथ वक्ष के खण्डों की संख्या में वृद्धि होती है, परन्तु अधिकांशतः वक्ष के खण्ड पाइजिडियम से संयुक्त होते जाते हैं और इस तरह के खण्डों की संख्या क्रमशः घटती और पाइजिडियम के खण्डों की संख्या तथा उसकी साइज बढ़ती जाती है। वैज्ञानिकों का यह अनुमान कि कम वक्ष–खण्डों वाली जातियाँ, जैसे – एगनास्ट्स, अधिक वक्ष–खण्डों वाली प्रजातियों, जैसे – पेराडक्साइडीज की अपेक्षा अधिक विकसित और विशिष्ट (Specialized) हैं, उपर्युक्त तथ्य पर आधारित है।

पाइजिडियम (Pygidium)

पाइजिडियम ट्राइलोबाइट के बहिःकंकाल का तीसरा और अन्तिम पश्च भाग है यह बहुधा त्रिकोणीय या अर्धगोलाकार होती है। यह वक्ष की तरह अनेक खण्डों की बनी होती है। खण्डों की संख्या दो से इक्कीस तक पायी जाती है। ये एक दूसरे से दृढ़तापूर्वक संलग्न होते हैं और इस प्रकार वक्ष के खण्डों की तरह एक दूसरे पर सरक (Move) नहीं सकते। संलग्न होने के कारण एक दूसरे से उतने स्पष्ट रूप से पृथक भी नहीं दिखते। कुछ प्रजातियों में वक्ष और पाइजिडियम में इतनी अधिक समानता होती है कि उन्हें एक दूसरे से पहचानना कठिन होता है, जैसे – एगनास्ट्स (Agnostus) परन्तु अन्य में ये एक दूसरे से अत्यधिक भिन्न होते हैं। कुछ ट्राइलोबाइट में शीर्ष के बाद के सभी खण्ड एक दूसरे से अलग होते हैं और इस तरह यह शेष भाग वक्ष और पाइजिडियम में विभक्त नहीं होता, अर्थात् इनमें पाइजिडियम नहीं पायी जाती है, जैसे – आलिनेल्लस (Olenellus)।

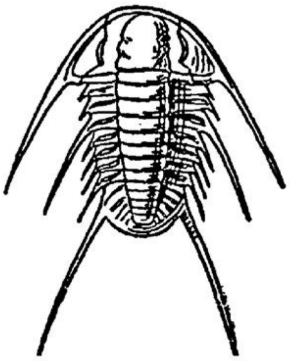

चित्र 6.8: अल्बरटेला

वक्ष की तरह पाइजिडियम भी दो अक्षीय–खाँचों के द्वारा तीन भागों में विभाजित रहती है जिन्हें क्रमशः मध्य या अक्षीय–पालि और पार्श्व–पालिक कहते हैं। कुछ ट्राइलोबाइट में अक्षीयपालि का भाग बहिःकंकाल के पश्च तक जाता है, जैसे – कालीमिनी (Calymene) परन्तु अन्य में पश्च तक पहुँचने के पूर्व ही लुप्त हो जाता है, जैसे स्कुटेलम (Scutellum)। पाइजिडियम का पश्च उपान्त या तो सरल (Entire) होता है अथवा एक पश्च शूल या दो पार्श्व शूलों (Lateral Spines) सहित होता है। इन शूलों को पुच्छीय शूल (Caudal Spines) कहते हैं (चित्र 6.8)। अल्बरटेला पाइजिडियम का पश्च पृष्ठ–उपान्त शीर्ष के उपान्त की तरह अधर की ओर कुछ दूरी तक मुड़ा होता है जिसे पाइजिडियम का डबल्योर (Pygidial doublure) कहते हैं।

ट्राईलोबाइटा भू–वैज्ञानिक वितरण

ट्राईलोबाईट एक महत्वपूर्ण सूचक जीवाश्म (Index fossil) के रूप में उपयोगी है। इनकी भू–वैज्ञानिक आयु अत्यन्त सीमित होते हुए, ये भौगोलिक दृष्टि से विस्तृत क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इनका भू–वैज्ञानिक वितरण केवल पैलियोजोईक तक ही सीमित है। सर्वप्रथम ये निम्न केम्ब्रियन काल में पाये गये। उस काल के महत्वपूर्ण जीवाश्म में ओलेनेलस, होलमिया, एगनोसटस, माईक्रोडिसकस एवं रेडलीचिया थे। मध्य केम्ब्रियन काल में पेराडॉक्साईड, एगनोसटस, सोलेनोप्लुरा, कोनोकोरीफी एवं माइक्रोडिसकस थे। ऊपरी केम्ब्रियन काल में ओलेनस, पेलटूरा, ट्राईआरथस, डाईकिलोसिफेलस एवं एसाफैलस जीव महत्वपूर्ण थे। ओर्डोविसीयन काल में ये चरमोत्कर्ष पर थे। इस काल में एगनोसटस, ट्राईन्यूक्लीयस, ओजीगिया, एसाफस, ईलीयानुज, केलीमिन, लाईकाज एवं एमपिक्स की बहुतायत थी। सिलुरियन काल में कैलीमिन, फेकोप्स, डालमानाईटिज, चैरूरस, एसीडासपीस, प्रोईटस वंश की कई जातियाँ थी। डिवोनियन कालखण्ड के

अन्तर्गत फेकोफ्स, ट्राईमेरोसिफेलस, प्रोईटस एवं चेरूरस वंश विद्यमान थे। कार्बोनीफेरस काल में फिलीपसिया, ग्रिफीथीडस एवं ब्रेकीमेटोपस मुख्य वंश उपस्थित थे। पर्मियन काल में फिलीपसिया एवं नियोप्रोईटस मुख्य वंश की जातियाँ विद्यमान थी। पर्मियन के अन्त तक ट्राईलोबाईट पूर्ण रूप से विलुप्त हो चुके थे।

संघ : ब्रेकियोपोडा
(Phylum : Brachiopoda)

वर्ग (Class)	गण (Order)
I. इनआर्टिकुलेटा (अदंती) (Inarticulata)	1. आट्रेमेटा (Atremata) 2. नियोट्रेमेटा (Neotremata)
II. आर्टिकुलेटा (दंती) (Articulata)	1. प्रोट्रेमेटा (Protremata) 2. टेलोट्रेमेटा (Telotremata)

कुछ विशेष कारणों से अन्य प्राणी–समूहों की अपेक्षा ब्रेकियोपोडा के प्रति जीवाश्म–वैज्ञानिकों की रुचि निरन्तर अधिक बनी रही। अध्ययन के लिए इनके उत्तम जीवाश्मों की सरलता से प्राप्ति, सीमित भू–वैज्ञानिक वितरण तथा विस्तृत भौगोलिक वितरण के फलस्वरूप इनकी भू–वैज्ञानिक उपयोगिता, इस रुचि के मुख्य कारण रहे। ब्रेकियोपॉड दो ग्रीक शब्दों, ब्रेकियान (Brachion = arm) और पॉड Pod = Foot, के संयोग से बना है। प्रारंभ में वैज्ञानिकों ने इसके बाहु या ब्रेकिया को गलती से मोलस्का संघ के अन्तर्गत आने वाले प्राणियों के पद के समरूप मान लिया था, इसीलिए इनका नाम ब्रेकियोपॉड पड़ा। परन्तु यथार्थतः इनमें पद जैसी कोई संरचना नहीं पाई जाती। ब्रेकियोपॉड नाम इतना सामान्य और प्रचलित हो गया है कि गलत नामकरण के बावजूद यह संघ अभी भी इसी नाम से जाना जाता है। अपने लैम्प जैसे विशिष्ट आकार के कारण ब्रेकियोपॉड को लैम्पशैल (Lamp shells) भी कहते हैं।

ब्रेकियोपॉड तल में रहने वाले समुद्री प्राणी हैं। इनका कवच या चोल द्विपार्श्व–सममित होता है। साधारणतः यह एक ही भाग का बना हुआ दिखता है, परन्तु ध्यानपूर्वक निरीक्षण करने पर विदित होता है कि वास्तव में ये दो भागों का बना होता है। प्रत्येक भाग को कपाट या वाल्व कहते हैं। अर्थात् ब्रेकियोपॉड का कवच द्विकपाटीय होता है (चित्र 6.9)। ये कपाट असमकपाटीय (Inequivalent) तथा स्थिति में पृष्ठ (Dorsal) और अधर (Ventral) होते हैं। अधरकपाट अधिकांशतः पृष्ठ कपाट से बड़ा होता है। दोनों कपाटों का पश्च भाग चोंच (Beak) के आकार का होता है जिसे ककुद या अम्बो (umbo) कहते हैं। अधर कपाट का ककुद पृष्ठ कपाट के ककुद से बड़ा होता है तथा इसके शीर्ष या शीर्ष से कुछ नीचे एक द्वारा होता है। जीवित अवस्था में इस द्वार से एक छड़ जैसी लचीली संरचना निकली रहती है जिसे वृन्तक या पैडिकल (Pedicle) तथा द्वार को वृन्तक द्वार या पैडिकल द्वार (Pedicle Opening) कहते हैं। पैडिकल की सहायता से प्राणी किसी आधार से संलग्न रहता है। अधर कपाट में चूंकि पैडिकल पाया जाता है इसलिए इसे पैडिकल कपाट भी कहते हैं। इसी प्रकार अधर कपाट में एक विशिष्ट संरचना बाहु–कंकाल (Brachial Skeleton) पायी जाती है, इसलिये इसे बाहु–कपाट (Brachial valve) भी कहते हैं। ये दोनों कपाट पश्च उपान्त के साथ–साथ एक दूसरे से संलग्न रहते हैं। इस उपान्त को कब्जा या हिन्ज रेखा (Hinge-Line) कहते हैं।

कुछ अपवादों को छोड़ कवच की अध्ययन स्थित में ककुद

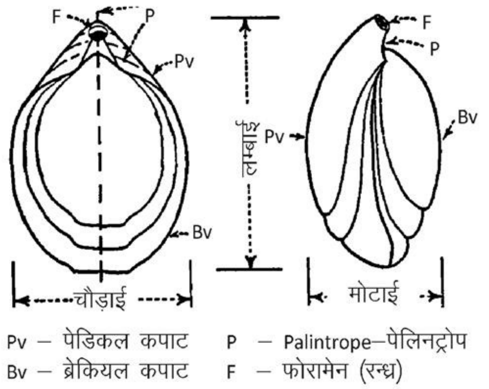

चित्र 6.9: ब्रेकियोपॉड कवच की बाह्य आकारिकी

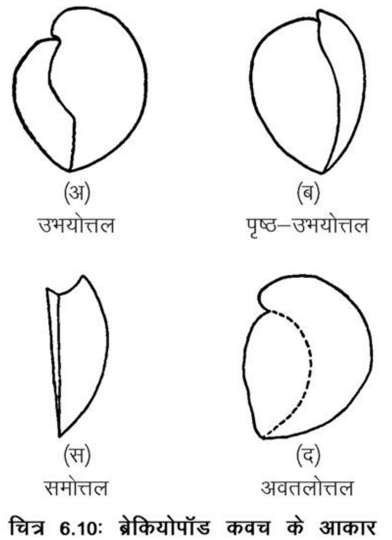

चित्र 6.10: ब्रेकियोपॉड कवच के आकार

ऊपर की ओर दिष्ट होते हैं। परम्परागत शब्दावली के अनुसार ककुद से अग्र भाग तक की लम्बवत् दूरी को कवच की लम्बाई, हिन्ज की लम्बाई की दिशा में अधिकतम दूरी की चौड़ाई तथा पृष्ठ से अधर तक की अधिकतम दूरी की मोटाई कहते हैं।

कवच के आकार

ब्रेकियोपॉड के कवच विभिन्न आकार के पाये जाते हैं (चित्र 6.10)। इनमें निम्नलिखित मुख्य हैं : ऐसे कवच को जिनके दोनों कपाट समान रूप से उत्तल होते हैं, उभयोत्तल (Biconvex) कहते है। जिनके पृष्ठ कपाट अधर कपाट की अपेक्षा अधिक उत्तल होते हैं उन्हें पृष्ठ–उभयोत्तल (Dorsi-boconvex) कहते हैं। पृष्ठ कपाट सम तथा अधर सपाट उत्तल वाले कवच को समोत्तल (Plano-convex) तथा पृष्ठ कपाट अवतल और अधर कपाट उत्तल वाले कवच को अवतलोत्तल (Concavo-convex) कहते हैं।

समरूपता (Homoeomorphy)

समरूपता प्राणी के विकास की वह प्रवृत्ति है जिसमें दो विभिन्न असम्बद्ध वंश परम्पराओं का विकास एक ही दिशा में होता है जिसके फलस्वरूप इनकी आकारिकी में अत्यधिक समानता पायी जाती है। अतः ऐसे प्राणियों को, जो यथार्थ में दो विभिन्न वंश परम्पराओं के होते हैं तथापि बाह्य रूप से समान दिखते हैं, समरूपी (Homoeomorphs) कहते हैं। समरूपी प्राणियों के विकास की विभिन्न अवस्थाओं और उनकी संरचनात्मक विशेषताओं के विस्तृत अध्ययन से ही यह निश्चित किया जा सकता है कि ये किस वंश–परम्परा के वर्तमान समरूपी अवस्था में पहुँचे हैं। समरूपी प्राणियों को दो संवर्गों में विभाजित किया जा सकता है : समकालिक समरूपी (Isochronous Homoeomorphs) ये समरूपी प्राणी हैं जो एक ही भू–वैज्ञानिक काल में पाये जाते हैं। विभिन्न भू–वैज्ञानिक कालों में पाये जाने वाले समरूपी प्राणियों को असमकालिक समरूपी (Heterochronus Homoeomorphs) कहते हैं। ब्रेकियोपॉड और ऐमोनाइड में इस घटना के उदाहरण विशेष रूप से पाये जाते हैं।

आकारिकी (Morphology)

कपाटों के बाह्य लक्षण (External Characters of Valves)

अलंकरण (Ornamentation) – अलंकरण शब्द का उपयोग केवल अलंकरण तक ही सीमित न होकर उन सभी विशेषताओं के लिए होता है जो कवच की बाह्य सतह पर दिखाई देती हैं। ब्रेकियोपॉड के अभिनिर्धारण में अलंकरण अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। साधारणतः अदंती (Inarticulates) और लैम्प जैसे कवच युक्त ब्रेकियोपॉड के कवच बहुधा चिकने रहते हैं।

ब्रेकियोपॉड के अलंकरण को मुख्य दो प्रकारों, संकेन्द्रों और अरीय में विभेदित किया जा सकता है। वृद्धि–रेखाएँ संकेन्द्री अलंकरण का सबसे मुख्य अंग हैं। वृद्धि–रेखाएँ कवच के उपान्त की क्रमिक वृद्धि की विभिन्न स्थितियाँ दर्शाती हैं। कभी–कभी ये परतदार एक दूसरे का अतिव्यापन करती हुई होती हैं, उदाहरणतः एथाइरिस (Athyris)। इन परतों को स्तरिका या लैमेली (Lamellae) कहते हैं। वृद्धि–रेखाएँ कभी–कभी कुछ उभरी हुई कटक जैसी होती हैं। ऐसी महीन वृद्धि रेखाओं को फाइला (Filasing-filium) तथा अपेक्षाकृत मोटी रेखाओं को वलि या रूगी (Rugae) कहते हैं।

संकेन्द्री की अपेक्षा अरीय अलंकरण ब्रेकियोपॉड के अभिनिर्धारण में अधिक सहायक होते हैं। इनमें विभिन्न आकार की उभरी हुई रेखाएँ ककुद से प्रारंभ होकर कवच के उपान्त की ओर जाती हैं। वृद्धि रेखाओं के समान इन्हें भी, जब ये लघु और महीन होती हैं, फाइला या कोस्टेली (Costellae) तथा जब कुछ बड़ी और मोटी और हैं, पर्शुका या कोस्टी (Costae) कहते हैं। संकेन्द्री और अरीय अलंकरण अलग–अलग स्वतंत्र रूप से या दोनों एक साथ पाये जा सकते हैं। दोनों प्रकार के अलंकरण साथ–साथ होने पर उसे जालिकारूपी अलंकरण कहते हैं। संकेन्द्री और अरीय अलंकरण के प्रतिच्छेद बिन्दुओं पर यदि गुलिकाएँ (Tubercles) विकसित पाई जाती हों, अथवा वृद्धि–स्तरिकाएँ, उत्थित (Raised) हों तो ऐसे अलंकरण को खपरैली (Squamose) या इम्ब्रीकेट (Imbricate) कहते हैं। प्रतिच्छेद बिन्दुओं पर कभी–कभी शूल पाये जाते हैं। ऐसे शूल प्रोडक्टस कुल (Productus) की विशेषता है, परन्तु जीवाश्मों में ये यदाकदा ही परिरक्षित हो पाते हैं।

कपाटों के अग्र भाग जिस उपान्त के साथ–साथ मिलते हैं उसे परियोजी (Commissure) कहते हैं। परियोजी का सम्बन्ध बहुधा अलंकरण से होता है। यह सरल, तरंपित (Wavy) या क्रकची (Serrate) होती है। किसी–किसी जीवाश्मों में ये तरंगें बड़ी और गहरी होती हैं तथा दोनों कपाटों को प्रभावित करती हैं। उपरोक्त स्थिति में उत्तल भाग को वलन (Fold) या प्लाइका (Plica) तथा अवतल भाग को खाँच या सल्कस (Sulcus) कहते हैं।

हिन्ज रेखा या कार्डिनल मार्जिन (Hinge Line or Cardinal Margin)

दोनों कपाट, जिस रेखा के साथ–साथ दाँत और गर्तिकाओं (Sockets) की सहायता से संलग्न रहते हैं उसे हिन्ज रेखा या कार्डिनल मार्जिल कहते हैं। उपर्युक्त प्रकार से दाँत और गर्तिकाओं की सहायता से संलग्न कपाट वाले ब्रेकियोपॉड को दंती या आर्टिकुलेट (Articulates) कहते हैं। कुछ अन्य ब्रेकियोपॉड के कपाट केवल पेशियों और प्रावर (Mantle) की सहायता से संधित रहते हैं। ऐसे समूह को अदंती या इनआर्टिकुलेट (Inarticulate)

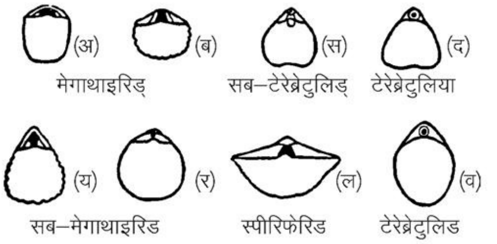

चित्र 6.11: ब्रेकियोपॉड में हिन्ज–रेखा की विभिन्न किस्में

कहते हैं।

हिन्ज रेखा सीधी और लम्बी, जैसे स्पिरिफर (Spirifer) में या छोटी और वक्र, जैसे टेरेब्रैटुला (Terebratula) में होती है। चित्र 6.11 में हिन्ज रेखा की विभिन्न किस्में दर्शायी गई हैं। ऐसे कवच जिनमें हिन्ज–रेखा की लम्बाई कवच की अधिकतम चौड़ाई से अधिक होती है, अनुप्रस्थ कवच कहलाते हैं, जैसे – स्पिरिफर।

कुछ ब्रेकियोपॉड, उदाहरणतः स्पिरिफर वंशक (Spiriferids) और सिर्टिया (Cyrtia) में ककुद और हिन्ज रेखा के बीच समतल या थोड़ा अवतल क्षेत्र होता है। इस क्षेत्र को हिन्ज क्षेत्र (Hinge Area) या कार्डिनल–क्षेत्र कहते हैं। यह क्षेत्र बहुधा त्रिभुजाकार और चिकना अथवा हिन्ज–रेखा के समान्तर वृद्धि–रेखाओं से अलंकृत होता है। कवच के शेष भाग पाया जाने वाला अलंकरण इस क्षेत्र में नहीं पाया जाता। यह क्षेत्र दोनों कपाटों में पाया जाता है, जैसे – ऑर्थिस (Orthis), परन्तु अधर कपाट क्षेत्र पृष्ठ कपाट के क्षेत्र से सदैव अपेक्षाकृत बड़ा होता है। कुछ ब्रेकियोपॉड में यह क्षेत्र केवल अधर कपाट में ही पाया जाता है।

वृंतक द्वार (Pedicle Opening)

वृंतक–द्वार, वर्गीकरण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि भिन्न–भिन्न जातियों में इसके गुणों में भी अत्यधिक विभिन्नता पाई जाती है। कुछ प्रारम्भिक ब्रेकियोपॉड में यह कवच के पश्च उपान्त के मध्य में स्थित सामान्य विदर (Gap) के रूप में पाया जाता है।

कुछ अन्य में यह सीमित द्वार के रूप में पाया जाता है तथा दोनों कपाट उसके भागीदार होते है। अधर कपाट में स्थित भाग को त्रिकोणी छिद्र (Delthyrium) तथा पृष्ठ कपाट वाले भाग को नोटोथाइरिम (Notothyrium) कहते हैं। ये बहुधा त्रिभुजाकार होते हैं। कुछ जातियों में पैडिकल द्वार केवल अधर कपाट में सीमित, एक गोल छिद्र के रूप में पाया जाता है। ऐसे विशिष्ट द्वार को रंध्र या फोरैमेन (Foraman) कहते हैं। उदाहरण – स्वरूप टेरेब्रेटुला (Terebratula)। यह ध्यान देने योग्य बात है कि केवल पृष्ठ कपाट में सीमित रंध्र किसी भी जाति में नहीं पाया

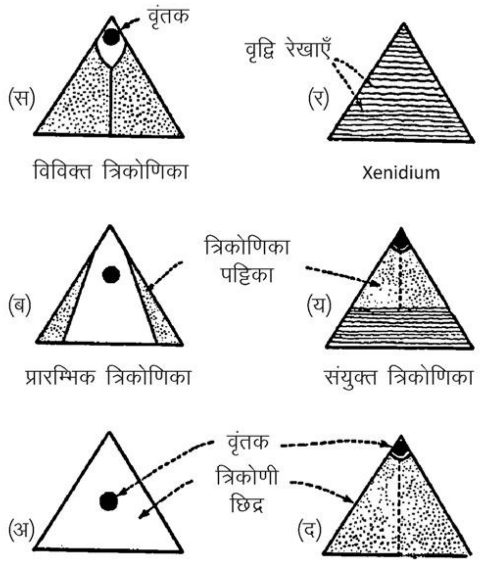

चित्र 6.12: ब्रेकियोपॉड में वृंतक द्वार

जाता।

रंध्र की स्थिति सभी ब्रेकियोपॉड में समान नहीं होती। डिसाइना (Discina) में यह कपाट के मध्य में स्थित होता है जिसके फलस्वरूप वृंतक कपाट से लम्बवत रहता है। आर्थिस में ये त्रिभुजाकार और ककुद के नीचे तथा मैजेलैनिया (Magellania) में ककुद के शीर्ष पर स्थित रहता है।

त्रिकोणी छिद्र की स्थिति तथा आकार भी परिवर्तनशील है। टेलोट्रेमेटा (Telotremata) ब्रेकियोपॉड की तरूण अवस्था में त्रिकोणी छिद्र पाया जाता है परन्तु विकास की आगे की अवस्थाओं में, इसके पार्श्व से विकसित दो पट्टिकाओं द्वारा क्रमशः यह बन्द होता जाता है। इन पट्टिकाओं को त्रिकोणिका (Deltidium) कहते हैं। त्रिकोणिका त्रिकोणी–छिद्र के पार्श्वों से एक दूसरे की ओर विकसित होती हुई कभी–कभी आपस में संघित भी हो जाती हैं (चित्र 6.12)।

प्रोट्रेमेटा (Protremata) और नियोट्रेमेटा (Neotremata) के अन्तर्गत आने वाले प्राणियों में त्रिकोणी छिद्र प्रायः एक पट्टिका के द्वारा पूर्णरूपेण बन्द होता है। इस एकल पट्टिका को कूट त्रिकोणिका (Pseudodeltidium) कहते हैं। बाह्यरूप से यह त्रिकोणिका जैसी ही दिखती है, परन्तु इसके विकास की अवस्थाएँ त्रिकोणिका की अवस्थाओं से भिन्न होती हैं।

कपाटों के आंतरिक लक्षण
(Internal Characters of the Valves)

ब्रेकियोपॉड के कपाट पेशियों की सहायता से बन्द होते और खुलते हैं। जिन पेशियों की सहायता से कपाट खुलते हैं उन्हें अनावरक (Divaricators) और जिनसे बन्द होते हैं उन्हें अभिवर्तनी (Adductors) कहते है।

पृष्ठ कपाट के आंतरिक लक्षण

पृष्ठ कपाट के आंतरिक लक्षण अधर कपाट की अपेक्षा अधिक जटिल होते हैं। इनके संरचनात्मक लक्षणों को सामूहिक रूप से कार्डिनेलिया (Cardinalia) नाम दिया गया है। कार्डिनेलिया का अध्ययन निम्नलिखित तीन भागों में किया जा सकता है :

1. संधि उपकरण (Articulation Apparatus),
2. हिन्ज प्रवर्ध (Cardinal Process),
3. ब्रेकिडिया (Brachidia)।

अधर कपाट के दाँतों के लिए कपाट के बाह्य उपान्त पर स्थित संगत (Corresponding) गर्तिकायें होती हैं (चित्र 6.13)। बाहु–कपाट अथवा पृष्ठ कपाट की चोंच पर या उसके समीप, इन गर्तिकाओं के बीच में स्थित अग्र की ओर बहिर्वेशित संरचना को हिन्ज–प्रवर्ध अथवा कार्डिनल प्रवर्ध कहते हैं। हिन्ज प्रवर्ध अनावरक पेशियों को संलग्न के लिए आधार प्रदान करता है। यह कपाटों के खोलने की क्रिया में सदैव उपयोग में आता है। विभिन्न जातियों में इसके आकार, साइज तथा संरचना में अत्यधिक भिन्नता पाई जाती है।

गर्तिकाओं के कटक से प्रारंभ होकर मध्य रेखा की ओर बढ़ी हुई लगभग क्षैतिज पट्टिकाओं को हिन्ज पट्टिकायें कहते हैं।

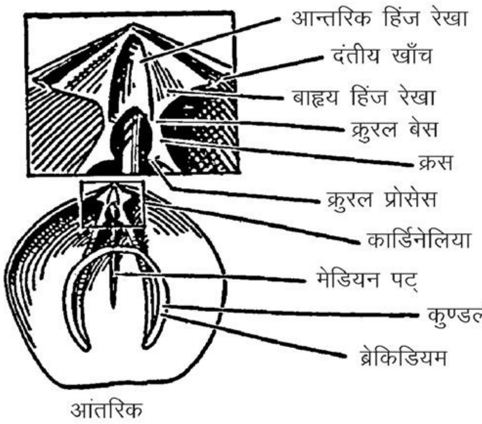

चित्र 6.13: ब्रेकियोपॉड कवच की आन्तरिक आकारिकी

बाहु–आधार (Brachial support) के समीपस्थ हुक जैसे भाग को, जो हिन्ज–पट्टिका से संलग्न होता है, क्रूरा (Crura) कहते हैं तथा हिन्ज–पट्टिका से बहिर्वेशित भाग को, जो क्रूरा को आधार प्रदान करने के लिए होता है, क्रूरा आधार (Crural Base) कहते हैं।

अनेक प्रोट्रेमेटा और टेलोट्रेमेटा ब्रेकियोपॉड में लोफोफोर (Lophophore) को आधार प्रदान करने के लिए बाहु–कपाट में कैल्सियममय पट्टीदार संरचना पाई जाती है जिसे ब्रेकिडियम या बाहु–कंकाल (Brachial Skeleton) कहते हैं। बाहु–कंकाल पृष्ठ कपाट के पश्च भाग पर स्थित हिन्ज प्रवर्ध के दोनों पार्श्वों संलग्न रहता है। रिंकोनेला (Rhynchonella) और हेमीथाइरिस (Hemithyris) में बाहु–कंकाल सबसे सरल, दो मुड़ें हुए हुक जैसा होता है, जिसे क्रूरा कहते हैं। टेरेब्रेटुला में यह क्रूरा से प्रारंभ होकर पट्टी के छोटे लूप (loop) जैसा तथा स्ट्रिगोसिफैलस (Stringocephalus) में यह बड़ा तथा कवच उपान्त के समान्तर होता है। मैजेलैनिया (Megellania) का बाहु कंकाल पहले अग्र भाग तक जाकर स्वयं के ऊपर पश्च की ओर पलट जाता है। स्पिरिफर में यह सर्पिल स्प्रिंग (Spiral spring) जैसा होता है। स्पिरिफर में सर्पिल स्प्रिंग के शीर्ष कपाट के पार्श्वों की ओर ग्लैसिया (Glassia) में अन्दर की ओर एट्राइपा (Atrypa) में केन्द्र की ओर दिष्ट होते हैं।

पेशीय–तंत्र (Musculature)

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि ब्रेकियोपॉड के कपाट विशेष पेशियों की सहायता से खुलते और बंद होते हैं। मृत्युपरान्त कोमल भाग नष्ट हो जाते हैं, परन्तु कपाटों के अभ्यन्तर में, जहाँ–जहाँ इनका संलग्न होता है, ये अपनी छाप छोड़ जाते हैं। ये छापें कपाट के अभ्यन्तर से कुछ उत्तल अथवा अवतल तथा विशिष्ट रूप से धारीदार (Striated) होती हैं।

अभिवर्तनी पेशियाँ (Adductor Muscles) कपाटों को बन्द करने में सहायक होती हैं। इनके संलग्न से जो छापें बनाती हैं उन्हें अभिवर्तनी छाप (Adductor Impression) कहते हैं। अभिवर्तनी पेशियों का एक युगल होता है जो अधर कपाट के मध्य में संलग्न रहने के कारण एक छाप छोड़ता है। यह छाप एक मध्य रेखा द्वारा दो भागों में विभाजित रहती है। पृष्ठ कपाट तक पहुँचने के पूर्व प्रत्येक अभिवर्तनी पेशी दो पेशियों में विभाजित हो जाती है और इस प्रकार पृष्ठ कपाट में अभिवर्तनी पेशियों की चार छापें पाई जाती हैं।

जो पेशियाँ कपाटों को खोलने में सहायक होती हैं उन्हें अनावरक (Divaricator) पेशियाँ कहते हैं। अधर कपाट से पृष्ठ कपाट तक पहुँचने के पूर्व अनावरक पेशियाँ दो युगलों (कुल चार) में विभाजित हो जाती हैं। अधर कपाट में ये अभिवर्तनी के पास तथा पृष्ठ कपाट में पश्च भाग पर स्थित, हिंज–प्रवर्ध से संलग्न

रहती है। हिंज–प्रवर्ध पर इनकी छाप अत्यन्त सूक्ष्म होती है और इसलिए जीवाश्मों में ये छाप दृष्टिगोचर नहीं होती।

वृंतक या पेडिकल को संकुचित करने और फैलाने के लिए भी पेशियाँ पाई जाती हैं जिन्हें वृंतक समयोजी पेशियाँ (Pedicle Adjustor Muscles) कहते हैं। इनकी छाप अधर कपाट में ककुद के पास, मुख्य क्षेत्र से पश्च तथा अनावरण छाप के पीछे स्थित होती हैं। पृष्ठ कपाट में ये छाप बाह्य अभिवर्तनी छाप के पीछे पाई जाती है।

ब्रेकियोपॉड का भू–वैज्ञानिक वितरण

ब्रेकियोपॉड पूर्ण रूप से समुद्र के अन्दर लवणीय जल में रहने वाले प्राणी हैं जो संसार में हर जगह पाये जाते हैं। वर्तमान समय की अपेक्षा पूर्व में इनकी संख्या अपेक्षाकृत अधिक थी। पेलियोजोईक एवं मिसोजोईक काल के अन्दर इनकी संख्या बहुतायत में थी। टरसरी काल में इनकी संख्या कम होती गई तथा वर्तमान काल में पाये जाने वाले ब्रेकियोपॉड का उद्‌भव भी टरसरी काल के ब्रेकियोपॉड से ही हुआ था।

पेलियोजोईक काल ब्रेकियोपॉड के उद्‌भव का महत्वपूर्ण कालखण्ड है। इसके अन्दर केम्ब्रियन काल में इनआर्टिकुलेटा वर्ग महत्वपूर्ण था। इनआर्टिकुलेट (अदंती) वर्ग के गण आट्रेमेटा के महत्वपूर्ण जीवाश्म रूजेला, ओबोलस एवं लीगुंलेला थे। जबकि नियोट्रेमेटा गण के ओबोलेला, आट्रेकोथैल आदि थे। आर्डोविसीयन काल में ब्रेकियोपॉड, केम्ब्रियन की तुलना में अधिक थे। इस काल में आर्टिकुलेटा (दंती) वर्ग के प्रोट्रीमेट गण के महत्वपूर्ण जीवाश्म विद्यमान थे। इसी वर्ग के टेलोट्रीमेटा गण की उपस्थिति सर्वप्रथम मध्य ओड्रोविसियन में दर्ज की गई। वर्ग इनआर्टिकुलेटा के अन्य महत्वपूर्ण जीवाश्म – रेफीनेशक्वीना, लेप्टीना, स्ट्रोफोमीना एवं लीगुंला।

सीलुरीयन कालखण्ड के अन्दर ब्रेकियोपॉड का सर्वाधिक उद्‌भव हुआ। इनआर्टिक्यूलेट ब्रेकियोपॉड की संख्या में कमी दर्ज की गई। इस कालखण्ड के महत्वपूर्ण जीवाश्म – ओरथीस, इओस्पीरीफर, आट्राइपा, लींगुला, कोनीटिस एवं पेन्टामेरस।

डीवोनियम काल में इनकी संख्या में गिरावट दर्ज की गई लेकिन बहुत से सीलुरियन वाले ब्रेकियोपॉड इस काल में उपस्थित थे। इस काल में स्ट्रीगोंसीफेलस, अनसाईटिस एवं मैगालेनटेरिस महत्वपूर्ण ब्रेकियोपॉड थे।

कार्बोनीफेरस काल में ओरथीडस, स्ट्रोफोमेनीडस, प्रोडक्टीडस, स्पीरीफैरीडस एवं रिन्कोनेलीडस वर्ग महत्वपूर्ण थे। परमीयन काल में प्रोडक्टस, स्पीरीफर, स्पीरीफैरेला महत्वपूर्ण जीवाश्म थे।

मध्यजीवी कालखण्ड के प्रारंभ में ट्राईसिक काल में पेलीजोईक के स्पीरीफैरीना एवं सिरटीना के अलावा बाकी जीव विलुप्त हो गये। इसके अतिरिक्त कोईनोथाईरीस महत्वपूर्ण जीवाश्म है। जुरेसिक काल के टैरीब्रेटुला, रिन्कोनैला, स्पीरीफैरीना, लिगुंला आदि जीवाश्म हैं।

क्रिटेशीयस काल में क्रेनीया, मायाज, किगंना, ट्राईगोनोसेमस के अतिरिक्त टेरीब्रेटुलीडस एवं रिन्कोनैलीडस वर्ग के जीव महत्वपूर्ण थे।

तृतीय काल में इनकी संख्या करीब–करीब नगण्य होती गई। इनमें लींगुला, टेरीब्रेटुला, टेरीब्रेटुलीना एवं मेजेलेनिया महत्वपूर्ण थे, जो वर्तमान समय में भी समुद्रों में पाये जाते हैं।

संघ : मोलस्का
(Phylum : Mollusca)

वर्ग गैस्टरोपोडा (Class Gasteropoda)

गैस्टरोपोडा शब्द दो ग्रीक शब्दों (Gastros = जठर एवं Podos = पद) के संयोग से बना है। इस शब्द से प्राणी के अधर भाग पर स्थित पद का निर्देश होता है।

गैस्टरोपोडा जल में और थल पर, दोनों में पाये जाते हैं। इनमें बहुतायत समुद्री प्राणियों की है। अलवण जल में पाये जाने वाले गैस्टरोपोड की संख्या भी कम नहीं है। इनमें विभिन्न वातावरण में अनुकूलन की अद्‌भुत क्षमता होती है, इसलिये ये समुद्र की गहराइयों से लेकर पर्वतों पर 500 मीटर की ऊँचाई तक देखे जा सकते हैं।

जीवित प्राणियों का निरीक्षण करने से विदित होगा कि इनके एक सुस्पष्ट सिर होता है जिसमें नेत्र और स्पर्शक (Tentacles) पाये जाते हैं। चलन के लिए एक पद होता है जो बहुधा पंख जैसा चौड़ा और चपटा होता है। श्वसन क्रिया प्रावार में स्थित गिल की सहायता से होती है, परन्तु कुछ गैस्टरोपोड में श्वसन क्रिया त्वचा की सहायता से भी होती है।

घोंघे, वेल्क, लिम्पेट, स्लग आदि इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाले मुख्य प्राणी हैं।

कवच (The Shell)

कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः सभी गेस्टरोपोड में कवच पाया जाता है। कवच बहुधा बाह्य होता है और आंतरांग गुच्छ को ढंक लेता है। केवल कुछ प्राणियों, जैसे – स्लग, में ये आन्तरिक होता है।

लैमलीब्रेन्क की तरह गैस्टरोपोड का कवच द्वि–कपाटीय और द्वि–पार्श्वीय नहीं होता, वरन् यह एक–कपाटीय (Univalve) होता है। साथ ही साथ यह कुंडलित और असममित होता है। प्रारूपित गैस्टरोपोड का कवच कुंडलित नली (Coiled-Tube) जैसा होता है। कुंडलीकरण मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है, जिन्हें क्रमशः समतल सर्पित (Planispiral) और कुंडलिनी रूप (Helicoid) कहते हैं। समतल सर्पिल में कुण्डलीकरण एक

काल्पनिक अक्ष के चारों ओर एक ही तल पर होता है, जैसे प्लैंनार्बिस (Planorbis)।

कुंडलीनिरूप कुंडलीकरण में यह पेंच के समान होता है। यह कुंडलीकरण दो प्रकार होता है, दक्षिणावर्ती (Dextral) एवं वामावर्ती (Sinistral) = दक्षिणावर्ती कुंडलीकरण में वलन घड़ी के काँटों के घूमने की दिशा (Clockwise) होती है तथा वामावर्ती में यह घड़ी के काँटों के घूमने की दिशा के विरुद्ध (Anticlockwise) होती है (चित्र 6.14)। कुछ अपवादों को छोड़ लगभग सभी गैस्टोरोपोड कवच दक्षिणावर्ती होते हैं। फाइसा (Physa) तथा प्लेनार्बिस (Planorbis) वामावर्ती कुंडलीकरण के प्रमुख उदाहरण हैं।

चित्र 6.14: गेस्ट्रोपोड में कुण्डलीकरण के प्रकार

दक्षिणावर्ती एवं वामावर्ती कुंडलीकरण को निम्न प्रकार पहचाना जा सकता है :

कवच को इस प्रकार पकड़ा जाये कि सर्पिल शीर्ष (Spire) का शिखर (Apex) निरीक्षक से दूर तथा द्वारक (Aperture) निरीक्षक की ओर हो। इस स्थिति में यदि द्वारक निरीक्षक के दायीं ओर हो तो कवच दक्षिणावर्ती और यदि बायीं ओर हो तो वामावर्ती होगा।

कुंडलित कवच के एक सम्पूर्ण वलन को चक्कर (Whorl) कहते हैं। चक्कर एक दूसरे को स्पर्श करते हुए पृथक होते हैं। चक्करों का आपस में स्पर्श करना अथवा पृथक रहना इस बात

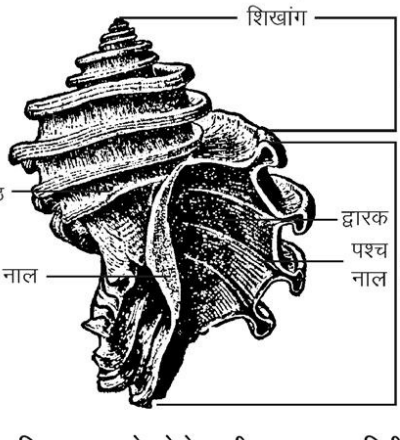

चित्र 6.15: गेस्ट्रोपोड की बाह्य आकारिकी

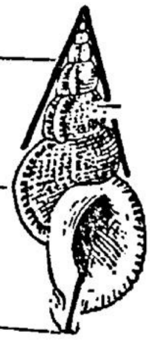

चित्र 6.16: गेस्ट्रोपोड में सर्पिल कोण

पर निर्भर करता है कि कुंडलीकरण कितना बद्ध या कितना अबद्ध या ढीला है। समीपवर्ती दो चक्करों के बीच की स्पर्श रेखा को सीवन (Suture) कहते हैं। अन्तिम चक्कर को छोड़, कवच के शेष भाग को सर्पिल शिखर (Spire) कहते हैं (चित्र 6.15)। अन्तिम चक्र को, जो प्रायः सर्वाधिक बड़ा होता है, देह चक्कर (Body Whorl) कहते हैं। देह–चक्कर में प्राणी का आंतरांग रहता है। सर्पिल–शिखर के नुकीले छोर को शीर्ष (Apex) कहते हैं। देह चक्कर के शीर्ष से सबसे दूरस्थ भाग को आधार (Base) कहते हैं। अन्तिम दो चक्करों की बाह्य सतहों को स्पर्श करती हुई दो अभिमुख रेखायें जो कोण बनाती हैं, उसे सर्पिल कोण (Spiral Angle) कहते हैं (चित्र 6.16)। सर्पिल शिखर की लम्बाई तथा सर्पिल कोण का परिमाण चक्करों की संख्या पर निर्भर करता है। चक्करों की संख्या जब अधिक होती है तब सर्पिल शिखर लम्बा तथा सर्पिल कोण का परिणाम कम होता है, जैसे टूरीटेला (Turritella)। इसके विपरीत जब चक्करों की संख्या कम होती है तब सर्पिल शिखर छोटा और सर्पिल कोण अधिक होता है, जैसे नाटिका (Natica)।

कुण्डलिनीरूप सर्पिल (Helicoid Spiral) कवचों में कुण्डलीकरण काल्पनिक अक्ष के चारों ओर होता है। चक्करों के आन्तरिक भाग का कभी–कभी इस काल्पनिक अक्ष के साथ–साथ सम्मिलन हो जाता है। यह अक्ष तब ठोस स्तम्भ के रूप में होती है, तब इसे स्तम्भिका (Columella) कहते हैं। स्तम्भिका कवच के आधार से शीर्ष तक जाती है। कभी–कभी चक्करों का सम्मिलन पूर्ण रूप से नहीं हो पाता। इस स्थिति में यह अक्ष नली की तरह पोली होती है और तब उसे नाभि (Umbilicus) कहते हैं नाभि आधार की खुली होती है। गैस्टरोपोड के जिन कवचों में स्तम्भिका पाई जाती है उन्हें आछिद्री (Imperforate) तथा जिनमें नाभि पाई जाती है उन्हें छिद्री (Perforate) कवच कहते हैं, अर्ध या पूर्ण रूप से बन्द रहती है। जीवित अवस्था में प्राणी मांसपेशियों द्वारा स्तम्भिका से संलग्न रहता है।

द्वारक या अपर्चर (Aperture)

गैस्टरोपोड के कवच का अन्तिम चक्कर आधार की ओर खुला होता है। इस खुले भाग को द्वारक कहते हैं। द्वारक का आकार विभिन्न जातियों में भिन्न–भिन्न पाया जाता है। इसका आकार वृत्ताकार, दीर्घ वृत्ताकार, अण्डाकार, धन्वाकार (Crescentic) या रेखाछिद्र (Slit) जैसा होता है। द्वारक के सीमान्त को परिमुख (Peristome) कहते हैं। परिमुख के बाह्य स्वतंत्र सीमान्त को बाह्य ओष्ठ (Outer lip) और अन्दर के उस भाग को जो अन्तिम चक्र से संलग्न रहता है, आन्तर–ओष्ठ (Inner lip) कहते हैं। कभी–कभी आन्तर ओष्ठ को दो भागों, भित्तीय–ओष्ठ (Parietal lip) और स्तम्भिकीय–ओष्ठ (Columellar lip), में विभेदित किया जाता है। आन्तर–ओष्ठ का वह भाग जो अन्तिम चक्कर से संलग्न रहता है, भित्तीय–ओष्ठ कहलाता है और जो स्ताम्भिका में संलग्न रहता है स्तम्भिकीय–ओष्ठ कहा जाता है द्वारक का बाह्य–ओष्ठ पतला अथवा मोटा, अन्दर की ओर मुड़ा हुआ, अर्थात् अन्तर्नत (Inflected), या बाहर की ओर मुड़ा हुआ अर्थात् बहिर्नत (Reflected) हो सकता है। कुछ जातियों में, जैसे लैम्बिस (Lambis), यह पंख जैसा या अंगुलियों जैसा बढ़े हुए प्रवर्धों जैसा होता है।

प्राणी की चलन की स्थिति में कवच देह के पृष्ठ भाग पर रहता है, शीर्ष पीछे और ऊपर की ओर तथा द्वारक नीचे की ओर होता है। इस स्थिति में द्वारक के शीर्ष से सबसे दूरस्थ भाग को अग्र और सबसे अमीपस्थ भाग को पश्च कहते हैं।

कभी–कभी द्वारक का उपान्त अछिन्न होता है, जैसे नाटिका। ऐसे द्वारक को पूर्ण परिमुखी (Holostomatous) कहते हैं। इसके विपरीत कुछ कवचों में प्राणी की जीवित अवस्था में, जहाँ जलनाल या साइफन स्थित होता है, जहाँ नाल–सा बन जाता है। इस नाल को जल–नाल खाँच (Siphonal Notch) या केवल नाल कहते हैं। ऐसे द्वारक को जिसमें नाल पाया जाता है नाल परिमुखी (Siphonostomatous) कहते हैं। ऐसे द्वारक के अग्र भाग में स्थित नाल को अग्र नाल (Anterior Canal) और पश्च में स्थित नाल को पश्च नाल (Posterior Canal) कहते हैं। ये नाल सीधी या वक्र होती हैं। साधारणतः नाल–परिमुखी गैस्टरोपोड मांसभक्षी और पूर्णपरिमुखी शाकाहारी होते हैं। नाल और प्राणी के विकास में विशेष सम्बन्ध होता है। प्राणी के विकास के साथ–साथ नाल गहरा होता जाता है। उपर्युक्त तथ्य से यह अनुमान लगाया गया है कि नाल परिमुखी गैस्टरोपोड क्रमशः पूर्णपरिमुखी से विकसित हुए हैं। बैलेरोफॉन कुछ की जातियों में बाह्य ओष्ठ में एक खाँच (Notch) पायी जाती है जो प्रावार–गुहा से उत्सर्ग (Faeces) तथा जल बाहर निकलने हेतु होती है। जैसे–जैसे कवच की वृद्धि होती है। यह खाँच कवचीय पदार्थ से क्रमशः भरती जाती है। जीवाश्मों में यह एक पट्टी के रूप में परिरक्षित पायी जाती है जिसे स्लिट बैंड (Slit Band) या सेलेनीजोन (Selenizone) कहते हैं।

बाह्य ओष्ठ पतला, मोटा या दंतुर (Toothed) होता है। कभी–कभी बाह्य ओष्ठ का कोर या फ्लैंज (Flange) बाहर की ओर मुड़ा होता है। ऐसे बाह्य ओष्ठ को बहिर्नत ओष्ठ (Reflected Lip) कहते हैं और जब यह अन्दर की ओर मुड़ा होता है, तब उसे अन्तर्नत ओष्ठ (Inflected) कहते हैं।

प्रच्छद ढक्कन या ऑपरकुलम (Operculum)

अनेक गैस्टरोपोड में द्वारक को अर्ध या पूर्ण रूप से बन्द करने हेतु चूनेदार या श्रृंगी (Horny) पदार्थ से निर्मित एक पट्टिका होती है जो पद के पृष्ठ भाग के अग्र छोर से संलग्न रहती है। इस पट्टिका को प्रच्छद–ढक्कन कहते हैं। इसकी स्थिति इस प्रकार होती है कि जब शत्रु के आक्रमण की आशंका से या गर्मी की ऋतु में निर्जलीकरण (Dehydration) से बचने के लिए प्राणी कवच के अन्दर प्रविष्ट हो जाता है तब यह द्वारक अर्ध या पूर्ण रूप से प्रच्छद ढक्कन द्वारा बन्द हो जाता है। टर्बो (Turbo) नाटिका, टरीटेला आदि कुछ ऐसी जातियाँ हैं जिनमें प्रच्छद–ढक्कन पाया जाता है। साधारणतः कवच के साथ प्रच्छद–ढक्कन परिरक्षित नहीं हो पाता।

प्रच्छद–ढक्कन का आकार विभिन्न जातियों में भिन्न–भिन्न पाया जाता है। कुछ जातियों में यह चिकना और दीर्घवृत्तीय होता है तथा कुछ में दीर्घाकार होता है जिसका निचला भाग चपटा और ऊपर का भाग उत्तल होता है, जैसे नाटिका अन्य गैस्टरोपोड में, जैसे ट्रोकस (Trochus) और टर्बो, में यह सर्पिल होता है जिसके सर्पिल–शिखर में अनेक चक्कर पाये जाते हैं। कुछ प्रच्छद–ढक्कनों में जटिल अलंकरण भी पाया जाता है जो प्राणी के अलंकरण निर्धारण में सहायक होता है।

अलंकरण की विविधता गैस्टरोपोड के विकास के अध्ययन और अभिनिर्धारण में अत्यन्त महत्व रखती है। साधारणतया आद्य–कवचों में अलंकरण सरल तथा प्रगत कवचों में जटिल होता है, परन्तु इसके विपरीत प्रगत कवच चिकने या सरल रूप से अलंकृत तथा आद्य–कवच अपेक्षाकृत जटिल रूप से अलंकृत हो सकते हैं। इसलिए यह ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि अलंकरण की जटिलता सदैव प्रगत कवच की द्योतक नहीं होती है।

अलंकरण को दो मुख्य भागों – सर्पिल और अनुप्रस्थ – में वर्गीकृत किया जा सकता है। सर्पिल अलंकरण के लक्षण सीवन–रेखा के समान्तर होते हैं, परन्तु अलंकरण में ये सीवन रेखा और चक्करों को काटते हुए जाते हैं। अनुप्रस्थ अलंकरण वृद्धि–रेखाओं के समान्तर भी होते हैं। सर्पिल तथा अनुप्रस्थ अलंकरण में बहुधा महीन से लेकर स्थूल पर्शुकाएँ पाई जाती हैं। जब ये दोनों अलंकरण एक ही जाति में समान रूप से विकसित

होते हैं तब उसे जालिकारूपी अलंकरण कहते हैं। सर्पिल और अनुप्रस्थ पर्शुकाओं के प्रतिच्छेदन पर कभी–कभी गांठें सी पाई जाती है। ऐसे अलंकरण को गांठदार जालिकारूपी अलंकरण कहते हैं। अलंकरण के घटकों के आकार एवं लक्षणों के अनुसार उन्हें भिन्न–भिन्न शब्दावली से वर्णन किया जाता है। उदाहरणतः सुस्पष्ट कोणीय या गोदाईकार कटकों को कूटक (Carina), महीन उभरे धागों जैसी संरचना को लीरा (Lira) तथा कील (Keel), फ्लैन्स (Flange) अथवा शूलों की श्रृंखला को उत्कूट (Varix) कहते हैं। ये सभी अलंकरण अनुप्रस्थ, सर्पिल अथवा दोनों रूपों में पाये जाते हैं। अलंकरण कवच को दृढ़ता प्रदान करता है।

कवचों की आकृति

गैस्टोरोपोड के कवचों की आकृति में अत्यधिक विविधता पाई जाती है। आकृति के आधार पर इनको निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है (चित्र 6.17) –

1. चक्रिकाभ (Discoidal) – चक्रिकाभ कवच में सभी चक्कर एक ही तल में कुण्डलित होते हैं तथा सभी चक्करों का बहिर्भाग लक्षित होता रहता है, जैसे – प्लेनॉर्बिस (Planorbis)।

2. शंक्वाकार या ट्रोकीफार्म (Conical or Trochiform) – ये कवच शंकु के आकार के होते हैं। इनका सपर्लि–शिखर का शीर्ष से आधार की ओर चक्करों की परिधि क्रमशः बढ़ती जाती है, जैसे – ट्रोकस (Trochus)।

3. टर्बिनेट (Turbinate) – टर्बिनेट कवच का आकार भी शंकु जैसा ही होता है, परन्तु इसका आधार उत्तल होता है, जैसे – टर्बो (Turbo)।

4. टरीफार्म (Turriform) – टरीफार्म कवच का सर्पिल–शिखर लम्बा तथा अनेक चक्करों का बना होता है। सर्पिल कोण अत्यधिक न्यून होने के कारण सर्पिल–शिखर का शीर्ष नुकीला होता है। शीर्ष के आधार की ओर चक्करों की परिधि क्रमशः बढ़ती जाती है, जैसे – टरीटेला (Turritella)।

5. तकुआनुमा या फ्यूजीफार्म (Fusiform) – तकुआनुमा कवच के मध्य में मुटाई सबसे अधिक होती है। इस प्रकार कवच तकुआ के आकार (Spindle shaped) का होता है, जैसे – फ्यूजिनस (Fusinus)।

6. गोलाकार या नाटिकॉयाड (Globular or Naticoid) – कवच गोलाकार सर्पिल–शिखर छोटा तथा अन्तिम चक्कर अत्यधिक बड़ा और गोलाकार होता है, जैसे – नाटिका।

7. बेलनाकार या प्यूपीफार्म (Cylindrical or Pupaeform) – बेलनाकार कवचों में प्रारंभ के कुछ चक्करों के बाद शेष चक्करों की परिधि करीब–करीब बराबर होती है और इस प्रकार कवच बेलन के आकार का दिखता है, जैसे –प्यूपिला (Pupilla)।

8. संवलित या कान्वोल्यूट (Convolute) – संवलित कवचों में अन्तिम चक्कर अत्यधिक बड़ा तथा उत्तल होता है जो

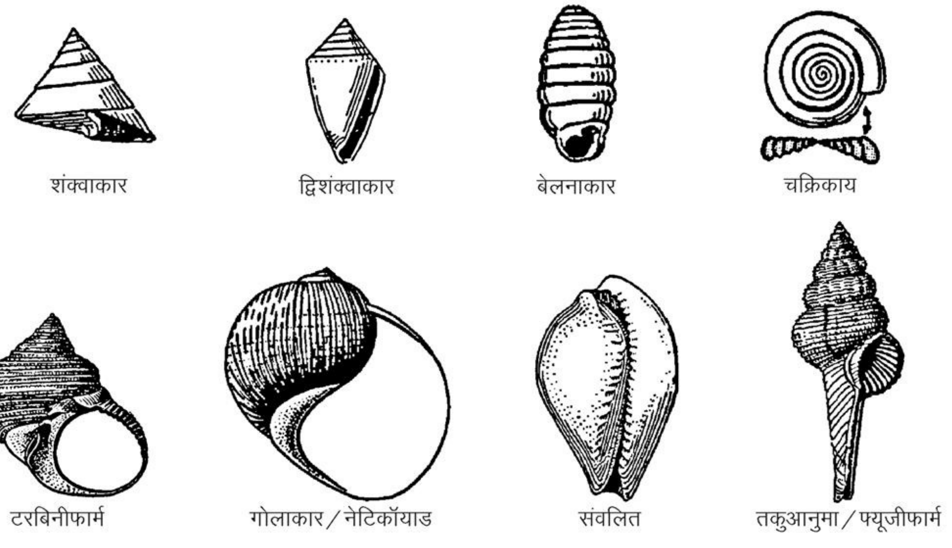

चित्र 6.17: गेस्ट्रोपोडा में कवचों की आकृतियाँ

अग्रिम सभी चक्करों को पूर्णतया आवृत्त कर लेता है। इनमें द्वारक की लम्बाई लगभग कवच की लम्बाई के बराबर होती है, जैसे – कौड़ी (Cypraea)।

गैस्ट्रोपोड का भू–वैज्ञानिक वितरण

गैस्ट्रोपोड मुख्य रूप से समुद्री लवणीय जल में रहते हैं लेकिन इनकी बहुत सी प्रजातियाँ स्थल एवं मीठे जल स्त्रोतों में भी मिलती हैं। समुद्री जल में इनकी बहुतायत गर्म जल एवं छिछले पानी में होती है। इनकी कुछ प्रजातियाँ थल एवं मीठे जल में समान रूप से पाई जाती है जैसे – एम्पूलेरिया। सेरीथियम एवं लिटोरीना खारे पानी के साथ मीठे पानी में भी पाई जाती है। सर्वप्रथम गैस्ट्रोपोड की उपस्थिति निम्न केम्ब्रियन में दर्ज की गई। केम्ब्रियन काल में स्केनैला, टीनोथिका इत्यादि गैस्ट्रोपोड पाये गये। ओर्डोविसीयन काल में क्राईटोलाईटस, रेफीस्टोमा, साईक्लोनीमा एवं सुबुलाईटस पाये जाते हैं। सिलुरीयन काल के प्लूरोटोमारिया, बैलेरोफोन, होलोपैला एवं प्लेटीसीरास की उपस्थिति दर्ज की गई। डिवोनियन काल में प्लूरोटोमारिया, बैलेरोफोन, लोक्सोनिमा एवं केप्यूलस महत्वपूर्ण जीव थे। कार्बोनीफेरस युग के समय लोक्सोनिमा, नाटीकोपसीस एवं केप्यूलस जीवाश्म थे। पर्मियन काल में मेक्रोचिलीना, प्लूरोटोमारिया एवं मरचीसोनिया जीव उपस्थित थे। मध्यकाल के ट्राईसेक में नाटीका, नाटीकैला एवं लोक्सोनिमा जीव थे। जुरेसिक काल में ट्रोकस, नाटीका, स्यूडोमैलानिया, नेरीनिया एवं सेरीथियम महत्वपूर्ण जीवाश्म थे। क्रिटेशीयस काल में आर्चिटेक्टोनिका, विविपोरस, नाटीका एवं एवीलाना महत्वपूर्ण जीवाश्म थे। तृतीय महाकल्प तक गैस्ट्रोपोड एक प्रमुख समूह के रूप में स्थापित हो गये। इओसिन काल के गैस्ट्रोपोड जीवाश्मों में जीनोफेरा, नाटीका, ट्यूरीटैला, सिप्रीया, वोल्यूटोस्पाईना, कोनस इत्यादि महत्वपूर्ण थे। आलीगोसीन काल में नेरीटा, नाटीका, विविपोरस, प्लेनोरबिस एवं हैलीक्स इत्यादि जीव थे। मायोसीन काल में ट्रोकस, एम्पूलिना, स्ट्रोम्बस, फाईकस, ओलीवा, कोनस आदि जीव थे। प्लायोसिन काल में ईमारजिनुला, ट्यूरीटैला, नाटीका, नाशारिया एवं क्राईसोडोमस महत्वपूर्ण जीवाश्म थे।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्न में से कौनसा विकल्प जीवाश्म का उपयोग नहीं है–
   (अ) पुराजलवायु (ब) विकास क्रम
   (स) तेल अन्वेषण (द) खनिज अन्वेषण
2. कार्बोनाइजेशन में क्या होता है–
   (अ) कार्बन का जुड़ना (ब) $CaCO_3$ का जुड़ना
   (स) सिलिका का जुड़ना (द) FeS का जुड़ना
3. निम्न में से ट्राइलोबिटा का लोब नहीं है–
   (अ) थीका (ब) थोरेक्स
   (स) पीजीडियम (द) हेड (सिर)
4. निम्नलिखित में से कौनसी गस्ट्रोपोडस की आकृतिकी है–
   (अ) शंक्वाकार / कोनीकल (ब) तकआनुमा / फ्यूजीफोर्म
   (स) बेलनाकार (द) उपरोक्त सभी
5. कोरल में सेप्टा को कहते हैं–
   (अ) कॉस्टि (ब) डिसीपीमेन्टस
   (स) पाली (द) स्टाईलीफार्म

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. जीवाश्म की परिभाषा बताइये?
2. सूचक–जीवाश्म की परिभाषा बताइये?
3. साँचा और ढालित में अन्तर बताओ?
4. अश्मीभवन (Petrification) को समझाइये?
5. जीवाश्म बनने के कारक लिखिये।
6. सरल प्रवाल का नामांकित चित्र बनाइये।
7. टैट्राकोरल और हैक्साकोरल में अन्तर बताओ।
8. टैट्राकोरल और हैक्साकोरल के दो–दो उदाहरण लिखिये।
9. ब्रेकियोपॉड में पाये जाने वाले कवच के आकार के प्रकार को चित्र सहित समझाओ?
10. ब्रेकियोपॉड के वृंतक द्वारा (Pedicle opening) को समझाओ?
11. गेस्टरोपोडा में चक्कर (Whorl) किसे कहते हैं?
12. गेस्टरोपोडा में प्रच्छद ढक्कन (Operculum) का कार्य लिखिये।
13. गेस्टरोपोडा के कवचों की आकृति के प्रकारों के नाम बताइये।
14. ट्राईलोबाईटा में पाइजिडियम को समझाइये।
15. ट्राईलोबाईटा के देह के त्रिविभागीय विभाजन को लिखिये।
16. ट्राईलोबाईटा के दो उदाहरण लिखिये।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. जीवाश्म एवं जीवाश्म विज्ञान को परिभाषित कीजिये?
2. जीवाश्म बनने के कारकों को विस्तार से समझाइये?
3. जीवाश्म संरक्षण के प्रकारों का वर्णन कीजिये?

4. स्तरीय–सहसंबंध एवं पूरा जलवायु में जीवाश्म की उपयोगिता का वर्णन कीजिये?
5. जैव विकास के सिद्धान्तों को समझाइये?
6. टेट्रोकोरल की आकारिकी का वर्णन नामांकित चित्र सहित कीजिये?
7. ब्रेकियोपोडा की बाह्य आकारिकी का चित्र सहित वर्णन कीजिये?
8. ब्रेकियोपोडा में हिन्ज रेखा या कार्डिनल मार्जिन के प्रकार को चित्र सहित समझाओ?
9. ब्रेकियोपोडा में वृतक द्वार (Pedicle opening) को चित्र द्वारा समझाइये?
10. गेस्ट्रोपोडा में पाये जाने वाले कवच के कुंडलीकरण का वर्णन कीजिये?
11. ट्राइलोबाइटा को भू–वैज्ञानिक विवरण लिखिये?
12. ट्राइलोबाइटा के बहिःकंकाल (Exoskeleton) को चित्र सहित समझाओ?
13. गेस्ट्रोपोडा में पाये जाने वाले कवचों की आकृति के प्रकारों को चित्र सहित वर्णन करो।
14. हेक्साकोरल की आकारिकी का चित्र सहित वर्णन कीजिये?
15. जीवाश्मों में अश्मीभवन (Petrification) एवं कार्बनीकरण (Carbonisation) को समझाइये?

निबंधात्मक प्रश्न

1. जीवाश्म क्या होते हैं? जीवाश्मों की विभिन्न उपयोगिताओं की विवेचना कीजिये।
2. ट्राइलोबाईट्स की आकारिकी का वर्णन नामांकित चित्र सहित कीजिये।
3. ब्रेकियोपोडस की आकारिकी का वर्णन कीजिये एवं उनके भू–वैज्ञानिक वितरण का वर्णन कीजिये।
4. कोरलके भू–वैज्ञानिकी वितरण का विवरण लिखिये।
5. गेस्ट्रोपोडा की आकारिकीय का वर्णन व उनके भू–वैज्ञानिक वितरण का वर्णन कीजिये।

उत्तरमालाः 1. (द) 2. (अ) 3. (अ) 4. (द) 5. (अ)

अध्याय – 7

संरचनात्मक भू–विज्ञान
(Structural Geology)

संरचनात्मक भूविज्ञान की परिभाषा

संरचनात्मक भूविज्ञान विज्ञान की वह शाखा है, जिसके अन्तर्गत विरूपण के कारण भूपर्पटी पर निर्मित संरचनाओं का अध्ययन किया जाता है। पृथ्वी में विद्यमान बलों के कारण शैल प्रभावित होकर विभिन्न प्रकार की तलीय, रेखीय एवं वलय संरचनाए बनाते है। इसके अतिरिक्त मैग्मीय क्रियाओं के कारण भी संरचनाए बनती है। इन सभी का अध्ययन संरनात्मक भूविज्ञान में किया जाता है। इसमें संरचनाओं को पहचानने, उनको प्रदर्शित करने और उत्पति संबंधी जानकारी प्रात की जाती है।

संरचनात्मक भूविज्ञान की अन्य निकटवर्ती शाखा विवर्तनकी है। भूविज्ञान की इस शाखा में भूसंचलन एवं बल के कारण भूपर्पटी में बनी बड़ी संरचनाओं का अध्ययन किया जाता है । इस अध्ययनों में प्लेट संचलन, चाप द्वीप, मध्यमहासागरीय कटक, समुद्रतलीय विस्तारण आदि सम्मिलित है।

संरचनात्मक भूवैज्ञानिक अध्ययनों में क्षेत्रीय संरचनात्मक मानचित्रण निर्माण व अध्ययन का कार्य किया जाता है। यह अध्ययन आर्थिक खनिज, पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस, भोमजल संस्तरकी, अभियान्त्रिकी, खनन, भूकम्प आदि में उपयोगी है।

नति, नतिलम्ब एवं नति दिशा

भूपर्पटी में विरूपण के कारण तलीय एवं रेखीय संरचनाए बनती है। भूवैज्ञानिक स्थलाकृतिक संरचनाओं का अंकन करते है। सर्वेक्षण कार्य के समय क्लाईनोमीटर कम्पास, ब्रन्टन कम्पास तथा जीपीएस उपकरणों का प्रयोग किया जाता है । भूवैज्ञानिक संरचनाओं के अध्ययन के समय नति, नति दिशा, नतिलम्ब दिशा की जानकारी प्राप्त करते हैं (चित्र 7.1)। यह सभी पृथ्वी की सतह पर अनावतरित हुए शैलों से लिए जाते है। शैलों के अनावतरित भाग दृश्यांस कहलाते है।

नति

तलीय संरचनाओं के क्षैतिज तल से झुकाव कोण को नति कहते है। यदि कोई तलीय सरंचना, जैसे संस्तर तल अथवा विदलन तल क्षैतिजाधार है, तो उसकी नति 0 डिग्री होगी। और उर्ध्वाधार होने पर उसकी नति 90 डिग्री होगी। इस तरह से नति तलीय संरचनाओं का क्षैतिज से झुकाव कोण प्रदर्शित करती है। इसे नति का परिमाण भी कहते है। नति का मापन क्लाईनोमीटर कम्पास (प्रवणतामापी दिक्सूचक) से किया जाता है।

नतिदिशा

जिस दिशा में तलीय संरचना झुकी होती है, वह दिशा नति दिशा कहलाती है। किसी भी झुके हुए तल का अधिकतम ढाल उस तल की वास्तविक नति दिशा को प्रस्तुत करता है, और नति का परिमाण वास्तविक नति कहलाता है। किसी भी झुके हुए तल का न्यूनतम नति शून्य डिग्री क्षैतिज दिशा में होता है। वास्तविक नति और वास्तविक नति दिशा का मापन क्षैतिज से लम्बवत दिशा में किया जाता है और यह लम्बवत तल नतिलम्ब के भी लम्बवत होता है।

यदि नति की मात्रा नतिलम्ब दिशा के लम्बरूप ना नापकर अन्य दिशा में नापी जाए, तो यह आभासी नति कहलाती है। आभासी नति नतिलम्ब दिशा एवं वास्तविक नतिदिशा के मध्य में होती है।

नतिलम्ब

झुकी हुए तलीय संरचना पर क्षैतिज तल से प्रतिछेदन से बनने वाली रेखा नतिलम्ब रेखा कहलाती है। नतिलम्ब को दिशा के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। किसी भी झुके हुए तल पर समान ऊँचाई के बिन्दुओं को जोड़ने वाली रेखा भी नतिलम्ब कहलाती है। अन्य शब्दों में किसी भी तलीय संरचना पर विद्यमान नतिलम्ब रेखाएं समानान्तर एवं सीधी रेखाएं होती है। नतिलम्ब

रेखाए सदैव वास्तविक नति कि दिशा के लम्बरूप होती है। नतिलम्ब रेखाएं विभिन्न अन्तराल पर खींची जा सकती है।

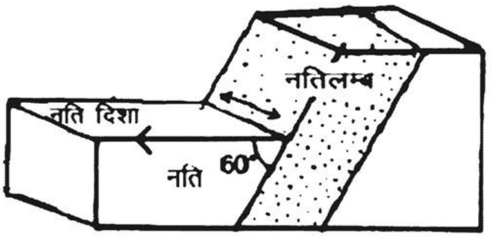

चित्र 7.1 नति, नतिलम्ब एवं नति दिशा

क्लाईनोमीटर कम्पास एवं इसका उपयोग

क्लाईनोमीटर कम्पास को हिन्दी भाषा में प्रवणता मापी दिक्कसूचक भी कहते है (चित्र 7.2)। यह यन्त्र सामन्यतः पीतल अथवा एल्यूमिनियम का बना होता है, ताकि इस पर चुम्बकीय सुई का प्रभाव नहीं हो। क्लाईनोमीटर कम्पास भूवैज्ञानिकों के लिये फील्ड में महत्वपूर्ण उपकरण है। इसके द्वारा नति, नतिलम्ब नतिदिशा आदि की जानकारी प्राप्त की जाती है। भूवैज्ञानिक इसकी सहायता से स्थलाकृतिक मानचित्रों में विभिन्न बिन्दुओं का अंकन करते है, और भूवैज्ञानिक मानचित्रण का कार्य सम्पन्न करते है। इसके बिना संरचनात्मक भूवैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया जा सकता है।

क्लाईनोमीटर कम्पास यन्त्र के निम्न भाग होते है ।

1.	बेलनाकार भाग	2.	अंशाकित चक्रिका
3.	नतिसूचक	4.	चुम्बकीय सूई
5.	ब्रिज या पटल	6.	सूई नियन्त्रक पेंच

क्लाईनोमीटर कम्पास में लगभग दो सेन्टीमीटर गहराई वाला बेलनाकार पीतल अथवा एल्यूमिनियम का मुख्य भाग होता है। इसके केन्द्र में चुम्बकीय सुई कीलकित रहती है। चुम्बकीय सूई को नियन्त्रक पीतल के पेंच को कसने से स्थिर किया जाता है और पेंच को खोलने पर सूई स्वतन्त्र रूप से घूमने लगती है। चुम्बकीय सुई सदैव उत्तर–दक्षिण दिशा में रहती है। क्लाईनोमीटर कम्पास के पेंदे में एक अंशाकित चक्रिका रहती है। इसके ठीक ऊपर पीतल का सूचक रहता है जो चारों तरफ स्वतन्त्रतापूर्वक घूम सकता है। यह सूचक नति और ढाल नापनें के काम आता है। अंशाकित चक्रिका के बाहय भाग में 0 से 360 डिग्री के निशान अंकित रहते है। जो दिशाओं का कोणात्मक मान देते है। 0 डिग्री अथवा 360 डिग्री उत्तर दिशा को बताता है। 90 डिग्री पूर्व, 180 डिग्री दक्षिण और 270 डिग्री पश्चिम दिशा को बताते है।

अंशांकित चक्रिका के दूसरें गोले में N पर 90 डिग्री, E पर 0 डिग्री, S 90 डिग्री और W पर 0 डिग्री अंकित रहते है। इसके द्वारा नति की जानकारी प्राप्त होती है। तीसरा गोला ढाल को दूरी के आधार को प्रदर्शित करता है। आन्तरिक एवं चौथे गोले में दिशाओं को 16 भागो में विभक्त करके लिखा होता है। एक चतुर्थान्श में चार भाग होते है।

चित्र 7.2 क्लाईनोमीटर कम्पास

1. बेलनाकार भाग, 2. अंशाकित चक्रिका, 3. नतिसूचक, 4.चुम्बकीय सूई, 5. ब्रिज या पटल 6. सूई नियन्त्रक पेंच

प्रवणता मापने के लिए उत्तर तथा दक्षिण दिशाओं पर दो पेंचों के द्वारा एक पट्का या ब्रिज जुड़ा रहता है। यह पट्टिका दो स्थानों पर 90 डिग्री पर मुड़ी रहती है। इस पट्टिका को उर्ध्वाधार अथवा क्षैतिज में लाया जा सकता है। पट्टिका के एक हिस्से में छोटा रेखाछिद्र होता है, और दूसरे हिस्से के रेखाछिद्र के बीच एक तार लगा रहता है। इस पट्टिका को लम्बवत करके फील्ड में विद्यमान बिन्दु को तार की सीध में रखकर दूसरे रेखाछिद्र से देखते है और इस तरह से पश्च दिशा निकाली जाती है।

इस यन्त्र के द्वारा दिशा और प्रवणता दोनो की जानकारी मिलती है अतः यह निम्न के लिए उपयोगी है–

1. क्लाईनोमीटर कम्पास के द्वारा नति ज्ञात करनाः नति ज्ञात करनें के लिए क्लाईनोमीटर कम्पास को पट्टिका का समतल भाग को तलीय संरचना के तल पर अधिकतम ढाल वाली दिशा में रखा जाता है। इससे पीतल का सूचकांक नति को प्रदर्शित करता है। उसी स्थिति मे अंशाकित चक्र में कोणात्मक मान पढ़ लिया जाता है।

2. क्लाईनोमीटर कम्पास के द्वारा नतिलम्ब की दिशा ज्ञात करनाः किसी भी झुकी हुई तलीय संरचना पर

क्षैतिज दिशा में क्लाईनोमीटर कम्पास को रखा जाता है। क्लाईनोमीटर कम्पास की पट्टिका को क्षैतिज करते हुए तलीय संरचना के समानान्तर रखते है। झुकी हुई तलीय संरचना पर क्षैतिज रेखा नतिलम्ब रेखा होती है। नतिलम्ब रेखा के समानान्तर क्लाईनोमीटर कम्पास की पट्टिका को क्षैतिजाधार में रखते है। चुम्बकीय सूई नतिलम्ब का दिशात्मक मान बताती है।

3. क्लाईनोमीटर कम्पास के द्वारा नति की दिशा ज्ञात करना: किसी भी तलीय संरचना की नतिदिशा नतिलम्ब दिशा के लम्बवत होती है। फील्ड में झुके हुए तल पर क्लाईनोमीटर कम्पास को नतिलम्ब दिशा के लम्बवत रखते है। चुम्बकीय सुई स्थिर हो जाती है तो यह नतिलम्ब दिशा बताती है।

तलीय एवं रेखीय संरचनाए एवं प्रकार

संरचनाओं को उत्पति एवं ज्यामिति के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। उत्पति के आधार पर संरचनाए दो प्रकार की होती है। वे संरचनाए जिनका निर्माण शैल निर्माण के समय होता है वे प्राथमिक संरचनाए कहलाती है। जैसे तरंग चिन्ह, संस्तरण क्रमिक संस्तरण पंक विद्र, वर्षाचिन्ह आदि। वे संरचनाए जिनका निर्माण शैल उत्पति के बाद कायान्तरण अथवा विरूपण से होता है, द्वितियक संरचनाए कहलाती है, जैसे भ्रंश तल, विदलन तल, शल्कन तल आदि। ज्यामिति के आधार पर शैलों में विद्यमान संरचनाओं को दो भागो मे विभक्त किया जाता है।

(अ) तलीय संरचनाए (Planar Structure)

(ब) रेखीय संरचनाए (Linear Structure)

(अ) तलीय संरचनाए (Planar Structure)

ऐसी संरचनाए जो एक तल के रूप में होती है तथा दो दिशाओं में फैली होती है तलीय संरचनाए कहलाती है। तलीय संरचनाओं का निर्माण उत्पति अथवा विरूपण के कारण होता है। ये संरचनाए निम्न प्रकार की होती है।

1. संस्तर तल (Bedding Plane): महासागरों व झीलों आदि में निक्षेपण क्षैतिजाधार में परत या संस्तरों के रूप में होता है। संस्तरण का बोध कणों के संगठन, गठन, कठोरता, रंग आदि से होता है। विभिन्न संस्तरों के बीच का तल संस्तर तल कहलाता है (चित्र 7.3)। दो संस्तरों के बीच आबद्ध परत यदि 1 सेमी. से मोटी हो तो उसे संस्तर कहते है, यदि परत की मोटाई 1 सेमी. से कम हो तो उसे पटलि स्तर या स्तरिका (लेमीनेशन, Lamination) कहते हैं।

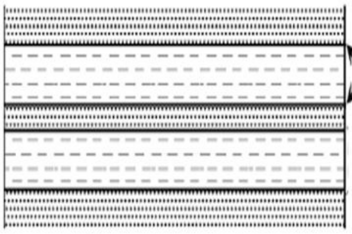

चित्र 7.3 संस्तर तल

यदि संस्तरों के निचले भाग में बड़े आकार के कण और उपर की तरफ कणों का आकार क्रमशः घटता जाए तो इस प्रकार के आवर्ति संस्तरो को क्रमिक संस्तर (Graded Bedding) कहते है (चित्र 7.4)। इस तरह का संस्तरण बालूकाश्म में मिलता है। दो समानान्तर क्षैतिज, संस्तरों के मध्य तिरछी परतों की उपस्थिति से निर्मित संरचना को तिर्यक संस्तरण (Cross Bedding) कहते हैं (चित्र 7.5)। इस तरह का संस्तण धाराओं के कारण बनता है। तिरछी संस्तरों का निचला भाग मुख्य संस्तर के संसर्पी होता है, जबकि उपरी भाग कटा हुआ होता है। इस तरह का संस्तरण बालूकाश्म शैलों में मिलता है।

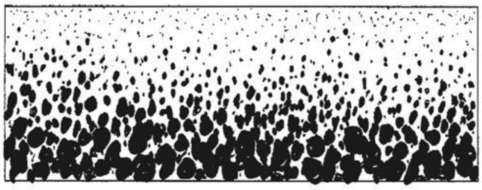

चित्र 7.4 क्रमिक संस्तर

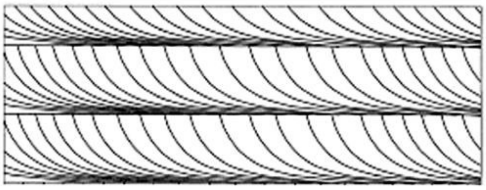

चित्र 7.5 तिर्यक संस्तर

2. तरंग चिन्ह (Ripple Marks): अवसादी शैलो में संस्तर तल पर तरंगित संरचना मिलती है। इन तरंगित संरचनाओं का निर्माण बालूकाश्म में पाया जाता है। शांत समूद्रों में किसी हलचल के कारण संस्तर तल पर विद्यमान कण सरल आवर्त गति करते है, इसके कारण **दोंलन तरंग चिन्ह** (Oscillation Ripple Marks) बनते है। इस तरंगों का श्रृंग और गर्त गोलाकार होता है। दोलन तरंग चिन्हो से संस्तरों का उपरी भाग और पैंदे की जानकारी मिलती है। तरंग चिन्ह का निर्माण धाराओं के कारण भी होता है, इन्हे धारा तरंग चिन्ह (Current Ripple marks) कहते है। इस तरह के तरंग चिन्हों में श्रृंग और गर्त दोनो गोलाकार नहीं रहते है। इन संरचनाओं से धारा की दिशा की जानकारी मिलती है।

3. विषम विन्यास तल (Unconformity Plane): किसी भी द्रोणी में अवसादन क्रिया सतत नही होती है। एक काल खण्ड में निक्षेपण के बाद वह भाग समुद्र तल के बराबर अथवा ऊपर उठ जाता है, इसके कारण से उस तल में निक्षेपण नही होता है और कटाव कार्य होता है। जब फिर से इस क्षेत्र में धंसाव होता है तो अनिक्षेपण काल तल संरक्षित हो जाता है। इसे विषम विन्यास तल कहते है (चित्र 7.6)।

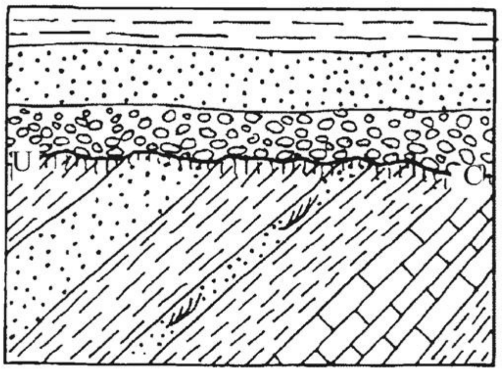

चित्र 7.6 U-C विषम विन्यास तल

4. भ्रंश तल (Fault Plane): संस्तरों अथवा किसी क्षेत्र का विभंग पर हुए विस्थापन को भ्रंश कहते है। इसके कारण दो सन्निकट खण्ड एक दूसरें के सापेक्ष एक तल में विस्थापित होते है, यह तल भ्रंश तल कहलाता है। भ्रंश तल एक तलीय संरचना है (चित्र 7.7)।

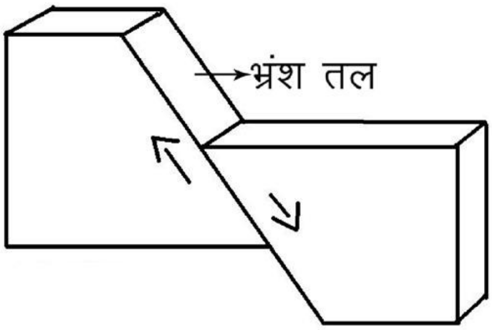

चित्र 7.7 भ्रंश

5. संधि तल (Joint Plane): यह विभाज्य तल है जो शैलों को विभाजित तो करते है, किन्तु इसके सापेक्ष किसी भी प्रकार का विस्थापन या संचलन नही होता है। ये विभाज्य तल दरारों के रूप में शैलों में पाए जाते है। संधियों के बीच की दूरी कुछ मिलीमीटर से लेकर कुछ सेन्टीमीटर तक हो सकती है। संधि तल अधिकतर समतल होते है। संधि किसी भी दिशा में हो सकती है। संस्तरों के भांति ही संधियों में नति तथा नतिलम्ब नापे जा सकते है।

6. शल्कन या पत्रण (Foliation): शैलों में जब खनिजीय कण समानान्तर रूप से तल विशेष में व्यवस्थित हो जाते है, तो निर्मित संरचना को पत्रण या सलकन कहते है इसके कारण शैल समानान्तर टूटती है। शैलों में शल्कन का निर्माण कायान्तण से होता है। जब पूर्वस्थित शैल परिवर्तित दिष्ट दाब और ताप से प्रभावित होते है तो चपटे और अन्य खनिज तल विशेष के समानान्तर क्रिस्टलीकृत हो जाते है, जिससे शल्कन का निमार्ण होता है। इस तरह का तल स्लेट, शिस्ट और नीस आदि शैलों में मिलता है।

(ब) संरेखण (Lineation)

शैलों में विद्यमान एकदिशीय प्रिज्मीय खनिज एक लम्बे अक्ष के समानान्तर व्यवस्थित हो जाते है तो इस प्रकार के विन्यास को संरेखण कहते है। इस तरह की संरचना एक दिशीय अथवा पेंसिल के आकार की होती है। कुछ संरेखणों का निर्माण शैलों में विद्यमान तलीय संरचनाओं के प्रतिछेदन से भी होता है। संरेखण निम्न प्रकार के होते है।

1. खनिज संरेखण (Mineral Lineation): मैग्मा प्रवाह के समय एक अक्षीय खनिज एक ही दिशा में विन्यासित हो जाते है इन्हे खनिज संरेखण कहते है। इसी तरह से कायान्तरण के समय भी दिष्ट बलों की प्रमुखता के कारण प्रिज्मैटिक खनिज संरेखण का निर्माण करते है।

2. भ्रंश तल संरेखण (Striation or Fault Plane Lineation): जब दो सन्क्टि खंड क दूसरें के सापेक्ष एक तल में विस्थापित होते है, इससे भ्रंश तल में खरोंचे बन जाती है। इन्हे भ्रंश तल संरेखण कहते हैं।

3. प्रतिछेदन संरेखण (Intersection Lineation): विवर्तन क्षेत्रों मे जब शैलों में एक से अधिक तल विकसित होते है, तो इनके प्रतिछेदन से संरेखणों का निर्माण होता है। वलित संस्तरों में वलन अक्ष तल के समानान्तर तल विकसित होने से संस्तर तल पर संरेखण बन जाते है। इसी तरह से विदलन तल पर संस्तर तलों द्वारा संरेखण बनते हैं।

4. वलन अक्ष (Fold Axis): वलित क्षेत्रों में वलन अक्ष एक रेखण को प्रदर्शित करता है। इस क्षेत्र में वलन अक्ष के समानान्तर तनित घुटिकाएं विकसित हो जाती है।

5. कुंचन संरेखण (Crenulation Lineation): कायान्तरित प्रदेशों में जब पतले शल्कन तल या विदलन तल जब वलन से

प्रभावित होंते है तो अति सन्निकट तीक्ष्ण श्रंग और गर्त बन जाते है, इन्हें कुंचन संरेखण (Crenulation Lineation) कहते हैं।

6. स्फटिक शलाका (Quartz Rods): कायान्तरित प्रदेशों में स्फटिकशलाका ट्यूबलाईट रोड की की तरह संरचनाए बनाती है, इन्हे स्फटिक शलाका कहते है। पूर्ववर्ती शैलों में विद्यमान सिलिका ताप और दाब के बढ़ने पर रोड की तरह विकसित होती है।

7. बौडिनेज अथवा सोसेज संरचना (Boudinage or Sausage Structure): जब दो असमर्थ शैलों के बीच में एक समर्थ शैल आ जाती है, तो परिवर्तित दाब के कारण समर्थ शैल चपटे टुकडों में टूट जाती हैं, इस प्रकार के निर्मित चपटे टुकड़े बौडिनं या सौसेज कहलाते है। अतः इसे बौडीनेज अथवा सौसेज संरचना कहते है। दो बौडिन के बीच की रेखा को बौडिन रेखा कहते है। बौडिन बार चोकलेट जैसे होते है।

8. मुलियन संरचनाएं (Mullion Structure): मुलियन संरचनाए बेलनाकार अथवा स्तंभीय आकृति की होती है। जब बालूकाश्म संस्तर दो स्लेट संस्तरों के बीच में आ जाता है तो विरूपण के समय मुलियन संरचना के रूप में व्यवस्थित हो जाताहै। मुलियन वलन अक्ष के समानान्तर विकसित होते है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. संरचनात्मक भूविज्ञान विज्ञान की वह शाखा है, जिसके अन्तर्गत विरूपण के कारण भूपर्पटी पर निर्मित संरचनाओं का अध्ययन किया जाता है।
2. तलीय संरचनाओं के क्षैतिज तल से झुकाव कोण को नति कहते है।
3. जिस दिशा में तलीय सरंचना झुकी होती है, वह दिशा नति दिशा कहलाती है।
4. झुकी हुए तलीय सरंचना पर क्षैतिज तल से प्रतिछेदन से बनने वाली रेखा नतिलम्ब रेखा कहलाती है।
5. क्लाईनोमीटर कम्पास भूवैज्ञानिको के लिय फील्ड में महत्वपूर्ण उपकरण है। इसके द्वारा नति, नतिलम्ब नतिदिशा आदि की जानकारी प्राप्त की जाती है।
6. ऐसी संरचनाए जो एक तल के रूप में होती है तथा दो दिशाओं में फैली होती है तलीय संरचनाएं कहलाती है।
7. शैलों में विद्यमान एकदिशीय प्रिज्मीय खनिज एक लम्बे अक्ष के समानान्तर व्यवस्थित हो जाते है तो इस प्रकार के विन्यास को रेखण कहते है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. तलीय संरचनाओं का क्षैतिज दिशा में नति का मान होता है।
   (अ) 0^o (ब) 90^o
   (स) 45^o (द) इनमें से कोई नहीं
2. क्षैतिज दिशा में लम्बवत तलीय संरचना के नति का मान होता है।
   (अ) 90^o (ब) 0^o
   (स) 45^o (द) 75^o
3. नतिलम्ब दिशा और वास्तविक नति दिशा के मध्य में संबध होता है।
   (अ) समानान्तर (ब) तिर्यक
   (स) लम्बवत (द) इनमें से कोई नहीं
4. तलीय संचनाओं का विस्तार होता है।
   (अ) एक विमा में (ब) द्विविमीय
   (स) त्रिविमीय (द) इनमें से कोई नहीं
5. रेखीय संरचना का विस्तार होता है।
   (अ) एक दिशा में (ब) दो दिशाओं में
   (स) तीन दिशाओं में (द) चार दिशाओं में

अतिलघुतरात्मक प्रश्न

1. तलीय संरचनाओं की प्रवणता को क्या कहते है?
2. तलीय संरचनाओं की प्रवणता सर्वाधिक किस दिशा में होती है?
3. तलीय संरचनाओं की प्रवणता सबसे कम किस दिशा में होती है?
4. नति कोणात्मक मान है अथवा दिशात्मक मान, बताइये।
5. नतिलम्ब दिशा एवं वास्तविक नति दिशा का कोणात्मक संबंध बताईये।
6. नति नापने के यन्त्र का नाम बताईये ।
7. नतिलम्ब दिशा को ज्ञात करने वाले उपकरण को बताईयें।
8. क्लाईनोमीटर कम्पास किस धातु का बना होता है?
9. क्लाईनोमीटर कम्पास में दिशा दर्शाने वाले भाग का नाम बताईये।
10. कलाईनोमीटर कम्पास का उपयोग भूवैज्ञानिक किस कार्य के लिए करतें है?
11. संस्तर किस प्रकार की संरचना है?
12. स्फटिक शलाका किस प्रकार की संरचना है?

13. क्रमिक संरचनाओं में कणों का आकार किस दिशा में कम होता है?
14. बुडिन का आकार कैसा होता है?
15. वलन अक्ष किस प्रकार की संरचंना है?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. संरचनात्मक भूविज्ञान की परिभाषा बताईये।
2. संरचनात्मक भूविज्ञान का महत्व बताईये।
3. नति से क्या अभिप्राय है?
4. नतिलम्ब दिशा की परिभाषा बताईये।
5. आभासी नति एवं वास्तविक नति में अन्तर बताईये।
6. किसी भी तलीय संरचना का अधिकतम और न्यूनतम नति कितना हो सकता है?
7. क्लाईनोमीटर कम्पास में ब्रिज का क्या उपयोग होता है?
9. क्लाईनोमीटर कम्पास से नति मापन किस प्रकार से किया जाता है?
10. क्लाईनोमीटर कम्पास के द्वारा नति दिशा कैसे ज्ञात करते है?
11. क्लाईनोमीटर कम्पास में नतिलम्ब दिशा किस प्रकार मापी जाती है?
12. तलीय संरचना क्या होती है?
13. रेखीय संरचना की परिभाषा दीजीए।
14. तलीय एवं रेखीय संरचना में अन्तर बताईये ।
15. प्राथमिक संरचना क्या होती है?
16. द्वितीयक संरचना क्या होती है।
17. तंरग संरचना के बारें में बताईये।
18. मुलियन संरचना किस अवस्था में बनती है?

निबंधात्मक प्रश्न

1. नति, नतिलम्ब एवं नति दिशा से क्या अभिप्राय है? सचित्र वर्णन कीजिए।
2. क्लाईनोमीटर कम्पास का सचित्र वर्णन कीजिए।
3. क्लाईनोमीटर कम्पास के विभिन्न हिस्सों की जानकारी देते हुए उपयोग के बारें में बताइए।
4. तलीय संरचनाओं का वर्णन कीजिए।
5. रेखीय संरचनाओं का वर्णन कीजिए।

उत्तरमालाः 1. (अ) 2. (ब) 3. (स) 4. (ब) 5. (अ)

अध्याय – 8

आर्थिक भू–विज्ञान, खनिज अन्वेषण एवं खनन
(Economic Geology, Mineral Exploration and Mining)

आर्थिक भूविज्ञान (Economic Geology)

परिभाषा एवं महत्व

आर्थिक भूविज्ञान, विज्ञान की वह शाखा है, जिसमें मानव के उपयोगी समस्त खनिजों का अध्ययन किया जाता है। इसमें खनिज संपदा के निर्माण, अवस्थिति, गुणवत्ता, आदि की विस्तृत जानकारी प्राप्त की जाती है। इस शास्त्र के अन्तर्गत कार्बनिक एवं अकार्बनिक विधियों से भूपर्पटी में उत्पन्न धातुओं, व उनके अयस्को, अधात्विक खनिज निक्षेपों, प्राकृतिक ईंधनों, व अन्य प्रकार के मूल्यवान एवं उपयोगी खनिजों का अध्ययन एवं आर्थिक विवेचन किया जाता है। आर्थिक महत्व के खनिजों के भौतिक एवं रसायनिक गुण, औद्योगिक उपयोग, उत्पति, उनके अन्य खनिजों से संबंध एवं वितरण का अध्ययन आर्थिक भूविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है।

मानव सभ्यता का विकास आर्थिक खनिजों की जानकारी एवं उपयोग के आधार पर हुआ है। मानव ने पाषाण काल में चर्ट और फ्लिंट के औजारों का उपयोग किया। धीरे धीरे उसने मिट्टी के बर्तनों एवं ईटों का निर्माण प्रारम्भ किया और सभ्यता विकसित होती चली गई। मानव ने ताम्र, जस्ता, लोहा आदि धातुओं की खोज की और द्रावण के द्वारा परिष्कृत कर उपयोग प्रारम्भ किया। धातुए वर्तमान समय में भी जीवन का आधार है। विद्युत सम्प्रेषण, कल कारखाने व दैनिक उपयोग में धातुओं का उपयोग होता है। विकास के साथ ही ईंधन का उपयोग भी बढता चला गया। प्रारम्भ में यह धरती से निकलनें वालें कोयले के रूप में हुआ जो धीरे–धीरे पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस का प्रयोग किया जाने लगा। वर्तमान समय में यह जीवाश्म ईंधन बहुत उपयोगी है। यह राष्ट्र की आर्थिक स्थिति का निर्धारण करते है। धरती पर आर्थिक खनिजों का निर्माण एक लंबी प्रक्रिया है। ऊर्जा की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए परमाणु खनिजों का अन्वेषण और उपयोग प्रारम्भ हुआ। इसके अतिरिक्त धरती पर विद्यमान जवाहरात खनिज, सिरेमिक खनिज , चूना पत्थर एस्बेटोस व अन्य अधात्विक खनिज मानव के लिए उपयोगी है। वर्तमान समय में आधारभूत निर्माण में काम में आने वाला सीमेंट भी खनिजों सें ही बनता है। जिस प्रकार से कृषि खाद्य सामग्री कें लिए जरूरी है। उसी तरह से आर्थिक खनिज मानव की वर्तमान सभ्यता के स्वरूप और रहन सहन को बनाए रखनें के लिए जरूरी है। इस तरह से आर्थिक खनिज किसी भी राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक स्वरूप को तय करते है। आर्थिक भूविज्ञान विषय पृथ्वी के खनिजों से संबंधित है और इस तरह से अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

अयस्क एवं गैंग खनिज, खनिज निक्षेप

पृथ्वी की पर्पटी में अधिकांश खनिज शैलकर खनिज (Rock Forming Mineral) है। कुछ खनिज जो आर्थिक दृष्टि से मनुष्य के लिए उपयोगी होते है, आर्थिक खनिज (Economic Mineral) कहलाते है। इन खनिजों का भूपर्पटी में वितरण अत्यन्त विरल है, परन्तु किसी स्थान पर यदि एक या एक से अधिक आर्थिक महत्व के खनिजों का पर्याप्त मात्रा में सान्द्रण हो जाए तो इसे **खनिज निक्षेप** (Mineral Deposit) का नाम दिया जाता है।

आर्थिक महत्व के खनिज निक्षेप भूपर्पटी में विद्यमान होते हैं। खनिज निक्षेपों की उत्पति एक जटिल प्रक्रिया है। और प्रत्येक निक्षेप की अपनी एक विशेषता होती है। निक्षेप में आर्थिक खनिज सिलिकेट खनिजों या अन्य खनिजों के साहचर्य में मिलते है। आर्थिक महत्व के खनिज निक्षेपों के निम्न प्रकार है।

धात्विक निक्षेप (Metallic Deposit)

प्रकृति में ऐसे निक्षेप जिनसे धातुएं प्राप्त होती है, धात्विक निक्षेप कहते है। इन निक्षेपों में जिस पदार्थ से धातु प्राप्त होती है, उसे अयस्क (Ore) कहते हैं। अयस्क में अयस्क खनिज (Ore Mineral) और अनुपयोगी खनिजों का भाग होता है। अनुपयोगी खनिजों को गैंग खनिज (Gangue Mineral) कहते हैं, इन

खनिजों को अयस्क सज्जीकरण (Ore Dressing) के समय हटा दिया जाता है। इस तरह से अयस्क में अयस्क खनिज एवं गैंग खनिज दोनो होते है।

अयस्क खनिज (Ore Mineral)

पृथ्वी से प्राप्त होने वाला वह खनिज पदार्थ जिसका उपयोग एक या एक से अधिक धातुओं को प्राप्त करने के लिये किया जाता है, अयस्क खनिज कहलाते है। यथा– मैग्नेटाईट, हेमेटाईट, गैलेना, बॉक्साइट इत्यादि। खनिज अयस्कों को उनकी धात्विक द्युति (Metallic Lustre) की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति के आधार पर दो वर्गों में बांटा जा सकता है। धात्विक खनिज (Metalilic Mineral) यथा– गैलेना, मैग्नेटाईट इत्यादि, और अधात्विक खनिज (Non-metallic Mineral) यथा– बॉक्साइट, मैलेकाइट इत्यादि। सभी खनिज अयस्क चट्टानों में धातु के प्राकृत रूप में अथवा अन्य तत्वों से रासायनिक क्रिया करके यौगिको के रूप में मिलते है। बहुत से खनिज अयस्कों द्वारा एक ही धातु का निष्कर्षण संभव होता है। कभी कभी एक ही खनिज अयस्क से एक से अधिक धातु भी प्राप्त होती है।

गैंग खनिज (Gangue Mineral)

खनिज अयस्को के साथ पाए जाने वाले अवांछित अधात्विक पदार्थ जिन्हे अयस्क से खनिज प्राप्ति क्रिया में महत्वहीन होने के कारण हटा दिया जाता है, गैंग खनिज (Gangue Mineral) कहते है। सभी अधात्री खनिज (Rock Forming Minerals) आर्थिक दृष्टि से महत्वहीन नही होते है, परन्तु किसी धातु के निष्कर्मण के उद्देश्य के कारण इन्हे उस विशेष स्थिति में महत्वहीन माना जाता है। गेंग खनिज साधारणतः ऑक्साईड, कार्बोनेट सल्फेट एवं सिलिकेट के रूप में खनिज अयस्कों के साथ पाए जाते हैं।

अयस्क का औसत प्रतिशत (Tenor of the Ore): किसी भी अयस्क में पाई जाने वाली धातु के प्रतिशत को अयस्क का औसत प्रतिशत (Tenor) कहते है। मूल्यवान धातुओं का औसत प्रतिशत नही दर्शाकर पीपीएम (parts per million, ppm) में मात्रा दर्शाई जाती है। यह प्रतिशत धातु के मूल्य के अनुसार निर्धारित होता है। यह अयस्क में धातु का न्यूनतम प्रतिशत है, जिसके आधार पर निक्षेप को आर्थिक दृष्टि से खनन उपयुक्त माना जाता है। खनन से पूर्व अयस्क का औसत प्रतिशत के अलावा, निक्षेप में खनिज की मात्रा, खनिज की सतह से गहराई, परिवहन, और श्रमिक उपलब्धता आदि पर भी विचार किया जाना आवश्यक होता है।

अधात्विक निक्षेप (Non metallic Deposits)

पृथ्वी से प्राप्त होने वाले ठोस, द्रव या गैस अवस्था में प्राप्त होने वाले खनिज पदार्थ जो मनुष्य के लिए उपयोगी होते हैं, अधात्विक निक्षेपों के अर्न्तगत आते है। इनमें अयस्क सम्मिलित नही है। इस श्रेणी में अभ्रक, कोयला, पेट्रोलियम, टॉल्क, जिप्सम, इत्यादि पदार्थ सम्मिलित है। इन निक्षेपों के वर्णन में खनिज अयस्क या अयस्क शब्द का प्रयोग नही होता है तथा इन अधात्विक निक्षेपों को खनिज के साथ निक्षेप शब्द जोडकर पुकारा जाता है। जैसे – अभ्रक निक्षेप इत्यादि।

अधात्विक निक्षेपों में पाए जाने वाले अवांछित पदार्थों के लिए गैंग खनिज के स्थान पर अपरद (waste) शब्द का प्रयोग किया जाता है। अपरद की मात्रा निक्षेपों में अलग–अलग होती है। कोयले के निक्षेपो में पूरी मात्रा में कोयला होता है जबकि अवांछित भाग कम होता है। हीरे के निक्षेपों में अवाछित पदार्थ बडी मात्रा में मिलते है। अधात्विक निक्षेपों में चूना पत्थर, कोयला, पट्रोलियम, गैस, रत्न, फास्फोराईट, जिप्सम, अभ्रक, टॉल्क आदि आते है।

खनिज निक्षेप निर्माण की विधियाँ
(Processes of Mineral Deposit)

आर्थिक खनिज निक्षेपों का निर्माण प्रकृति में जटिल प्रक्रिया द्वारा होता है। खनिज निक्षेपों के निर्माण में जल, ताप जीवाणु, दाब, मेग्मीय क्रियाए, कायान्तरण, वायुमण्डल आदि का योगदान रहता है। खनिज निक्षेपों का निर्माण निम्न प्रक्रमों अथवा विधियों से होता है।

1. मैग्मीय सान्द्रण (Magmatic Concentration)
2. संस्पर्श प्रतिस्थापन (Contact Metasomatism)
3. उष्णजलीय प्रक्रम (Hydrothermal Process)
4. कायान्तरण (Metamorphism)
5. अवसादन (Sedimentation)
6. उर्ध्वपातन (Sublimation)
7. वाष्पीकरण (Evaporation)
8. अवशिष्ट तथा बलकृत सान्द्रण (Residual and Mechanical Concentration)
9. ऑक्सीकरण एवं उर्ध्वजनित समृद्धि (Oxidation and Supergene Enrichment)

किसी भी खनिज निक्षेप का निर्माण एक या एक से अधिक प्रक्रमों द्वारा हो सकता है। यदि निक्षेप या चट्टान (जिसमें यह निक्षेप पाया जाता है) के निर्माण का समय एक ही हो तो वह निक्षेप **सहजात निक्षेप** कहलाता है, परन्तु यदि निक्षेप के निर्माण का काल शैल के निर्माण काल के बाद का है तो वह निक्षेप **पश्चात निक्षेप** कहलाता है।

1. मैग्मीय सान्द्रण (Magmatic Concentration)

अन्तर्वेधी, वितलीय, व अधिवितलीय आग्नेय शैलों में प्राप्त होने वाले वे आर्थिक महत्व के खनिज, जो मेग्मा में कभी कभी

या अल्प मात्रा में क्रिस्टलित होते है, यदि किसी क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा या आवश्यक सान्द्रता में एकत्रित हो जाए तो मैग्मीय सान्द्रण निक्षेप कहलाता है। मैग्मीय सान्द्रण निक्षेपो से सामान्यतः लोहा, क्रोमियम, निकल, टाईटेनियम, ताँबे के ऑक्साईड या सल्फाईड, प्लैटिनम, सोना एवं चाँदी धातु प्राप्त होते है। इन निक्षेपों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इनमें पाए जाने वाले खनिजों की संख्या अल्प है, परन्तु इन निक्षेपों का वैज्ञानिक महत्व, व्यापारिक या आर्थिक महत्व से कही अधिक है। कुछ खनिज अयस्कों (क्रोमाईट या प्लैटिनम खनिजों) की प्राप्ती केवल मैग्मीय सान्द्रण निक्षेपों से होती है। मैग्मीय सान्द्रण निर्माण दो प्रकार की विधियों से होता है।

अ. पूर्व मैग्मीय सान्द्रण प्रक्रम
(Early Magmatic Concentration)

मैग्मीय क्रिस्टलन में सिलिकेट खनिजों या शैलकारी खनिजों के निर्माण से पूर्व उच्च ताप पर आर्थिक खनिज निक्षेपों का निर्माण होता हैं, अतः इसे पूर्व मैग्मेटिक प्रक्रम कहते है। इस विधी से क्रोमाईट, मैग्नैटाइट, कोरंडम आर्थिक निक्षेपों का निर्माण होता है। इससे तीन प्रकार के निक्षेप बनते है।

(i) **प्रकीर्ण निक्षेप** (Disseminated type) : मैग्मा कक्ष में आर्थिक महत्व के खनिज उच्च ताप पर सबसे पहले क्रिस्टलीकृत होना प्रारम्भ हो जाते है, तो इनकी स्थिति मैग्मा कक्ष में प्रकिर्णित रहती है। इस स्थिति में ये खनिज छितरें हुए रहते है। इस तरह के निक्षेपों को प्रकिर्णन निक्षेप कहते है। इसका उदाहरण हीरा निक्षेप है।

(ii) **मैग्मीय पृथक्करण निक्षेप** (Magmatic Segregation type): इस प्रक्रम मे पूर्वमैग्मीय खनिज, क्रिस्टलन के उपरान्त मैग्मा कक्ष में गुरूत्व व किस्टलीय विभेदन क्रिया से निचली सतहो पर पृथक्करण द्वारा एकत्रित हो जाते है, इसे पूर्व मॅग्मीय पृथ्थकरण करते है। इस तरह से क्रोमाईट, मैग्नेटाईट निक्षेपों का निमार्ण हुआ।

(iii) **अन्तःक्षेपणः निक्षेप** (Injection type): सामान्य क्रिस्टलन में पूर्व–मैग्मीय खनिजों (अयस्कों) के पृथक्करण के उपरान्त यदि उनका अन्तःक्षेपण जनक शैल या स्थानीय शैल में हो जाता है तो इन निक्षेपों को अन्तःक्षेपण के नाम से जाना जाता है। इस वर्ग में निक्षेपों में अयस्क खनिजों के, क्रिस्टलन एवं पृथक्करण, मैग्मा कक्ष में होता है तथा वे अन्यत्र पाए जाते है। इन निक्षेपों का स्थानीय शैल से सम्बन्ध अनुस्तरी अथवा अननुस्तरी होता है। इस प्रक्रम मे पूर्वमैगमीय खनिज, क्रिस्टलन के उपरान्त मैग्मा कक्ष की निचली सतहो पर पृथक्करण द्वारा एकत्रित होते है।

ब. लैट मैग्मीय प्रक्रम (Early magmatic Concentration)

मैग्मीय क्रिस्टलन में सिलिकेट खनिजों या शैलकारी खनिजों के निर्माण के उपरान्त अवशिष्ट द्रव से निक्षेपों का निर्माण होता है। इसमें निक्षेपों का निमार्ण करने वाले आर्थिक खनिज, सिलिकेट खनिजों के क्रिस्टलन के उपरान्त ही क्रिस्टलीकृत होते है। इस तरह की विधी से पेग्मेटाइट व सल्फाइड निक्षेपों का निर्माण होता है।

(i) **अवशिष्ट द्रव पृथक्करण** (Residual Liquid Segregation) : मैग्मा के विभेदन से अवशिष्ट मैग्मा में सिलिका, क्षारीय पदार्थ, धात्विक पदार्थ एव जल शेष रहते है। यह अवशिष्ट द्रव शेष मैग्मा से पृथक होकर निक्षेपों के रूप में क्रिस्टलीकृत होते है। इस तरह से मैग्नेटाईड निक्षेप बनते है।

(ii) **अवशिष्ट द्रव अन्तःक्षेपण** (Residual Liquid Injection): अवशिष्ट द्रव पृथक्करण (Residual Liquid Segregation) प्रक्रम से शेष बचे द्रव का स्थानीय शैल अथवा मातृ शैल में अन्तःक्षेपण होने से निक्षेपों का निर्माण होता है। इन्हे अवशिष्ट द्रव अन्तःक्षेपण निक्षेप कहते है। इस तरह के मैग्नेटाईट निक्षेप बनते है।

(iii) **अमिश्रणीय द्रव प्रथक्करण** (Immiscible Liquid Segregation): सल्फाईडयुक्त अल्ट्रा बेसिक मैग्माओं में शीतलन की अन्तिम अवस्थाओं में धात्विक सल्फाईड द्रव भारी होने के कारण अमिश्रणीय द्रव के रूप में मैग्मा कक्ष के पैंदे में एकत्रित हो जाते हैं, और निक्षेपों का निमार्ण करते हे। यह प्रक्रिया अमश्रणीय द्रव पृथक्करण कहलाती है। इस तरह से निकल, लोहा, ताम्बे आदि के निक्षेप बनते है।

(iv) **अमिश्रणीय द्रव अन्तःक्षेपण** (Immiscible Liquid Injection): भू:विक्षेपों के कारण अमिश्रणीय सल्फाईड द्रव, जो मैग्मा कक्ष की तली में विभेदन एवं मैग्मा के शीतल होने के कारण एकत्रित होता है, अन्यत्र अन्तःक्षिप्त हो जाता है। यह अन्तःक्षिप्त सल्फाईड, शीतल होने पर अमिश्रणीय द्रव अन्तःक्षेपण निक्षेपों का निर्माण करता है। निक्षेप आकृति में अनियमित या भित्ति के समान होते है तथा इन निक्षेपों के पूर्व निर्मित शैलकारी खनिजों एवं चट्टानों के टूकडे प्राप्त होते हैं। ये निक्षेप मातृ शैल (Mother rock) या स्थानीय शैल में अननुस्तरी संरचना के रूप में प्राप्त होते है। इन निक्षेपों में सामान्यतः धातुओं के सल्फाईड पाये जाते हैं।

2. संस्पर्श प्रतिस्थापन (Contact Metasomatism)

वितलीय एवं अधितलीय मैग्मा के संस्पर्श में आने वाले शैलों पर मैग्मा से पलायन करने वालें उच्च ताप व गैसीय पदार्थो का प्रभाव पडता है । ताप की उपस्थिति में निकलने वाले गैसीय पदार्थ, जिन्हे तप्त प्रसर्ग (Emanation) कहते है, पूर्वस्थित शैलों से क्रिया करते है और उनमें विद्यमान आर्थिक खनिज घटक प्रतिस्थापित हो जाते है।

मैग्मा से पलायन करने वाले पदार्थो में धात्विक एवं अधात्विक निर्माणकारी अवयव उपस्थित होते हैं, ये अवयव कार्बोनेट शैलों में प्रतिस्थापन द्वारा महत्वपूर्ण निक्षेपों का निर्माण करते है। सभी मैग्माओं में निक्षेप निर्माणकारी अवयव नही पाये जाते हैं। क्वार्टज, मोंजेनाइट, डाईयाराईट मैग्मा संस्पर्शी प्रतिस्थापन द्वारा निक्षेप बनाते हैं। पूर्वस्थित शैलों में कार्बोनेट शैल ही उपयुक्त शैल मानी गई है, जिसमें प्रतिस्थापन क्रिया सुगमता से सम्पन्न होती है।

संस्पर्श, प्रतिस्थापन विधि से खनिज अयस्कों के साथ बडी मात्रा में गैंग खनिज होते हैं। अयस्क पिण्ड सामान्यतः असंबंध तथा अनियमित आकार के होते हैं। राजस्थान का डेगाना टंगस्टन निक्षेप संस्पर्श प्रतिस्थापन से बना है।

3. उष्णजलीय प्रक्रम (Hydrothermal Process)

मैग्मीय विभेदन के अन्तिम स्थिति में तरल पदार्थ विद्यमान होते है। कई बार इस मैग्मीय तरल में धात्विक पदार्थ सान्द्रित हो जाते है। इन तरलों के साथ अन्तर्वेधीशैल के तरल भी मिल जाते है और उष्णजलीय विलयनों का निर्माण करते है। ये उष्णजलीय विलयन धातुओं को व अन्य आर्थिक खनिजों का निक्षेपण करते हैं, यह विधि उष्णजलीय प्रक्रम कहलाती है, और बनने वाले निक्षेप उष्णजलीय निक्षेप कहलाते हैं। उष्णजलीय निक्षेपों को ताप और दाब की परिस्थितियों के अनुसार तीन भागों में बांटा गया है।

1. अतितापीय निक्षेप (Hypothermal Deposit)
2. मध्यतापीय निक्षेप (Mesothermal Deposit)
3. अल्पतापीय निक्षेप (Epithermal Deposit)

उष्णजलीय विलयन उत्पति स्थल से लम्बी दूरी तक जाते हैं। और दो प्रकार से निक्षेपों का निर्माण करते है।

अ. गुहिका भरण निक्षेप (Cavity filling Deposit)

ब. प्रतिस्थापन निक्षेप (Replacement Deposit)

गुहिका भरण निक्षेपों का निर्माण सामान्यतः उष्णविलयनों के ताप व दाब के कम होने पर होता है। जबकि प्रतिस्थापन विधि से खनिजों का निर्माण अपेक्षाकृत उच्च ताप और दाब पर होता है। उष्णजलीय निक्षेपों के निर्माण के लिए निम्न परिस्थितियाँ होनी चाहिएः–

1. खनिज पदार्थो को घोलने और परिवहन करने में सक्षम विलयनों की उपलब्धता य लम्बे समय तक होनी चाहिए।
2. शैलों में रिक्त स्थान होने चाहिए, ताकि विलयन सुगमता से प्रवाहित हो सके और एक नलिका तन्त्र का निर्माण कर सके।
3. खनिजों के निक्षेपण के लिए उपयुक्त स्थान होना चाहिए ताकि बडे आकार में निक्षेपण हो सके।
4. रासायनिक क्रियाए जो आर्थिक निक्षेपों का निर्माण कर सके।
5. उष्ण जल में आर्थिक खनिज पदार्थ का पर्याप्त मात्रा में सान्द्रण होना चहिए।

उष्णजलीय विलयनों के संचय स्थल पर निक्षेपण के लिए शैलों में रिक्त स्थान या गुहिकाए होना आवश्यक है। संबंध गुहिकाओं के अभाव में उष्णजल का पहरवहन नही होगा। इसी प्रकार प्रतिस्थापन प्रक्रम में विलियनों का उन शैलों तक पहुंचना आवश्यक है जिसमें खनिजों का प्रतिस्थापन होता है। शैलों में विद्यमान गुहिकाओं को दो भागों में बांटा गया है

1. मौलिक गुहिकाएँ (Original Cavities)
2. प्रेरित या कृत्रिम गुहिकाएँ (Induced Cavities)

मौलिक गुहिकाएँ जो शैल के उत्पति या जन्म के समय बनती है। ये निम्न प्रकार की है–

- रन्ध्राकाश (Pore-spaces)
- क्रिस्टल जालक (Crystal Lattices)
- स्फोट गर्त (Vesicles)
- लावाअपवाहिका प्रणली (Lava Drain Channels)
- शीतलन दरार (Cooling Cracks)
- आग्नेय संकोणश्म गुहिकाएँ (Igneous Breccia Cavities)
- संस्तर तल (Bedding Plane)

प्रेरित या कृत्रिम गुहिका, शैल निर्माण के बाद विवर्तन अथवा अपक्षय क्रियाओं से बनती है इस तरह के गुहिकाओं का आकार बडा होता है।

- भ्रंशयुक्त अथवा रहित विदर (Fissure with or without Fault)
- अपरूपण क्षेत्र गुहिकाएँ (Shear Zone Cavities)
- वलन से निर्मित गुहिकाए (Cavities formed due to folding)
- ज्वालामुखी नाल (Volcanic Pipe)
- विवर्तनिक संकोणाष्म (Tectonic Breccia)
- निपात संकोणाष्म (Collapse Breeccia)
- विलयन गुफा (Solution Caves or Vesicles)
- शैल परिवर्तन से निर्मित रिक्त स्थान (Opening formed due to rock alteration)

राजस्थान के जावर स्थित सीसा जस्ता निक्षेप उष्णजलीय निक्षेप प्रकृति के हैं।

4. कायान्तरण (Metamorphism)

जब पूर्वस्थित शैल परिवर्तित ताप व दाब से प्रभावित होते हैं तो इनमें पुर्नक्रिस्टलीकरण होता है तो यह प्रक्रिया कायान्तरण कहलाती है। कायान्तरण प्रक्रिया के बाद सकल रासायनिक संगठन नही बदलता है। यह सभी क्रियाए वायुमण्डलीय ताप और दाब से अधिक ताप दाब पर होती है। कायान्तरण में होने वाली क्रियाए ठोसीय अवस्था में ही सम्पन्न होती है। और शैल पदार्थ पिघलते नहीं है। धरती पर कायान्तरण से ग्रेफाईट, काईनाईट, सिलेमेनलाईट, गार्नेट , स्टोरोलाईट, एस्बेस्टोस अभ्रक, जैसे खनिज निक्षेपों का निमार्ण हुआ है। धरती पर मिलनेवाला संगमरमर चूने पत्थर के कायान्तण से बना है।

5. अवसादन (Sedimentation)

पूर्ववर्ती शैलों के अपक्षय अपरदन, परिवहन एवं निक्षेपण और उनके अश्मी भवन से अवसादी शैलों की उत्पत्ती होती है। इन अवसादी शैलों का सम्पूर्ण भाग या कुछ भाग आर्थिक रूप से उपयोगी होने पर ये अवसादी शैल खनिज निक्षेप की श्रेणी में आ जाते है।

कुछ आर्थिक खनिज पूर्व में आग्नेय अथवा कायान्तरित शैलों में पाये जाते है, जो अपरदन के बाद स्थानान्तरित होकर निक्षेपित हो जाते है। कोयला झीलों और नदियों में वनस्पति के जमाव से बनता है। महासागरों में जैविक और रासायनिक कारणों से भी निक्षेपण कार्य होता है। अवसादन द्वारा खनिज निक्षेप निर्माण की निम्न परिस्थितिया है।

- स्त्रोत पर आर्थिक खनिजों की उपलब्धतता।
- स्त्रोत स्थल पर अपक्षय एवं अपरदन प्रक्रियाओं का लगातार चालू रहना।
- खनिजीय पदार्थों का संचय स्थल पर स्थानान्तरण।
- झीलों में, नदियों में अथवा समुद्रों में निक्षेपण।

अवसादन के कारण विभिन्न प्रकार के निक्षेपों का निर्माण होता है।

1. लोहा निक्षेप– इसमें हेमाटाईट, सिलेराईट, ओर दलदल लोहे के निक्षेप बनते है। पृथ्वी के इतिहास में जब भी तीव्र ऑक्सीकारक परिस्थितिया रही, लोहे के निक्षेप विकसित हुए।

2. मैंग्नीज निक्षेप– मैंग्नीज निक्षेपों का निर्माण कार्बोनेट के रूप में होता है। सुमुद्री पैंदों से निकलनेवाले मैंग्नीज युक्त उष्णजलों से मैंग्नीज मोड्यूल का निक्षेप होता है।

3. फॉस्फेट– उपयुक्त परिस्थितियों में जैविक प्रक्रियाओं से फास्फेट निक्षेपित होते है। स्ट्रोमेटोलाईट इनमें सबसे प्रमुख है। जो फॉस्फेट का निर्माण करता है। उदयपुर के निकट झामर कोटडा रॉक फॉस्फेट डिपोजिट इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

4. कार्बोनेट निक्षेप– समुद्रो में उपयुक्त रासायनिक परिस्थितियों मे कार्बोनेट का निपेक्षण होता है। यह आज चूना पत्थर निक्षेपों के रूप में है।

5. कोयला– धरती पर उत्पन्न वनस्पतियों के द्रोणी मे जमाव से कोंयले का निर्माण हुआ है। जब जब भी पृथ्वी पर नमः और गर्म जलवायु, वानस्पतिक विकास तेजी से हुआ है, और कोयले का निर्माण हुआ है।

उपरोक्त के अतिरिक्त निक्षेपण से पाईराईट, मुल्तानी मिटटी तैल युक्त शैल, बलुआ पत्थर, आदि का निर्माण भी अवसादन से होता है।

6. उर्ध्वपातन (Sublimation)

ऐसे पदार्थ जो सीधे गैस अवस्था से ठोस अवस्था में आते है, उर्ध्वपातन कहते हैं। पृथ्वी के कुछ हिस्सों में जहा पर ज्वालामुखी सक्रियता है, गैसों के रूप में गंधक, अमोनिया व अन्य क्लोराईड, धात्विक आयन आदि गैसों के रूप में बाहर आते हैं, वायुमडलीय ताप दाब पर ठोस मे बदल जाते है। इनसे बनने वाले निक्षेप छोटे आकार के होते है। किन्तु पृथ्वी के कई ज्वालामुखी क्षेत्रों में सल्फर के निक्षेप पर्याप्त मात्रा में मिलते है। नोसादर व कुछ क्लोराईड निक्षेप भी मिलते हैं।

7. वाष्पीकरण प्रक्रम (Evaporation)

गरम एवं शुष्क प्रदेशों में जल का वाष्पीकरण तेजी से होता है। खारें पानी की झीलों में वाष्पीकरण के कारण लवणों की सान्द्रता बढ जाती है, और ये असंतृप्त हो जाते है। इसके फलस्वरूप लवणें का अवक्षेपण प्रारम्भ हो जाता है। इस क्रिया से जिप्सम, नमक और पोटास के आर्थिक निक्षेप बनते है।

खारे पानी की झीले अथवा समुद्र का वह भाग जो मुख्य समुद्र से अलग हो गया है, वाष्पीकरण प्रक्रिया से निक्षेपों का निर्माण होने लगता है। राजस्थान की साम्भर झील में खारे पानी को छोटे सपाट खेतों में खारा पानी इकट्ठा किया जाता है, जो गर्मी में तीव्र वाष्पीकरण के कारण नमक का निर्माण करता है। इस तरह से गुजरात के तटीय इलाको में समुद्री पानी को खेतों और मैदानों में अलग करके नमक बनाया जाता है। राजस्थान और गुजरात शुष्क और गरम जलवायु वाले भूभाग है।

भूगर्भीय प्राचीन समय में नागौर और बीकानेर उथला समुद्र था, जो मुख्य समुद्र से अलग होकर सूख गया। वर्तमान में इस भाग में जिप्सम, मुल्तानी मिट्टी और जिप्सम के निक्षेप मिलते है।

8. अवशिष्ट तथा बलकृत सान्द्रण
(Residual and Mechanical Concentration)

अवशिष्ट सान्द्रण (Residual Concentration)

पूर्व–निर्मित शैलों के सतह अनावृत होने पर ताप व जल की भौतिक एवं रासायनिक क्रिया तथा वायु व अन्य कारकों के

प्रभाव से अपक्षय होता है। इसके फलस्वरूप शैलों का भौतिक एवं रासायनिक स्वरूप बदलता है। आद्र एवं उष्ण जलवायु में अपघटन प्रक्रिया तीव्र होती है इसके फलस्वरूप ऑक्सीकरण, जलसंयोजन, कार्बोनेटीकरण व अन्य रसायनिक क्रियाओं से पूर्ववर्ती शैलों का कुछ भाग विलयन के रूप में बहकर चला जाता है। बचा हुआ भाग निरन्तर सांद्रित होता रहता है। इस तरह से धीरे धीरे आर्थिक खनिज आर्थिक निक्षेप का निर्माण करते हैं। यह निर्माण प्रक्रिया अवशिष्ट सान्द्रण निक्षेप प्रक्रिया कहलाती है। अवशिष्ट सान्द्रण द्वारा खनिज निक्षेप निर्माण के लिए निम्न परिस्थितिया अनुकूल होती है।

1. पूर्ववर्ती शैलों के आर्थिक महत्व का खनिज अविलेय और अन्य भाग जो अवाछित होता है घुलनशील होना चाहिए।
2. अवांछित खनिज पदार्थों का रासायनिक क्षय एवं विलयन निर्माण के लिए अनुकूल जलवायु परिस्थितिया होनी चाहिए।
3. क्षेत्र का ढाल मन्द या कम होना चाहिए ताकि उपयोगी अवशिष्ट खनिज नष्ट न हो सके।
4. अवशिष्ट खनिज निक्षेप स्थल विवर्तन की दृष्टि से स्थिर चाहिए ताकि नष्ट न हो सके।
5. अपक्षय की क्रियाए अनवरत रूप से लम्बी अवधि तक चलनी चाहिए ताकि प्रचुर सांद्रित निक्षेप का निर्माण हो सके।

इस प्रकार से लोह, मैंग्नीज, बॉक्साईट, और मृतिका निक्षेपों का निर्माण होता है। भारत मे प्रचुर मात्रा में मिलने वाले बॉक्साईट निक्षेप का निमार्ण अवशिष्ट सान्द्रण से हुआ है।

बलकृत सान्द्रण प्रक्रम (Mechanical Concentration)

उष्ण और शुष्क जलवायु में रासायनिक अपघटन की अपेक्षा यान्त्रिक विघटन अधिक प्रभावी होता है। यदि पूर्व उपस्थित शैल में आर्थिक महत्व का खनिज है, तो ये विघटन से अलग होकर परिवहन के समय अन्य खनिजों के गुरूत्व अन्तर होने से पृथक हो जाते हैं। धीरे धीरे ये आर्थिक खनिज संचय होकर निक्षेप का निर्माण करते है इन्हे बलकृत सान्द्रण निक्षेप कहते है। बलकृत सान्द्रण निक्षेपों को प्लेसर निक्षेप (Placer Deposit) भी कहते हैं। प्लेसर निक्षेप ऐसे आर्थिक खनिजों के बनते है जिनका गुरूत्व अधिक और रासायनिक क्रियाओं से क्षरित नहीं हो। इस तरह स्वर्ण, प्लेटिनम, कैस्टेराईट, मैग्नेटाईट, क्रोमाईट, मोनाजाईट हीरे व अन्य रत्न निक्षेप बनते है।

बलकृत सान्द्रण निक्षेपों को निम्न में विभाजित किया गया है।

1. अनूढ़ प्लेसर (Eluvial Deposit): एसे प्लेसर जो पहाड़ी ढ़ालों पर बनते है, अनूढ़ प्लेसर कहलाते है। आर्थिक खनिजों का घनत्व अधिक होने से पहाड़ी ढालों के नीचे जमा हो जाते है।

2. जलोढ़ प्लेसर (Alluvial Deposit): इस तरह के निक्षेप नदियों के बाहरी मोड़ पर, नदी मार्ग के अवरोधों पर तथा नदियों के संगम स्थल पर आर्थिक खनिजों के सान्द्रण से बनते है। इस तरह से स्वर्ण के निक्षेप मिलते हैं।

3. पूलिन प्लेसर (Beach Deposit): समुद्री तटों पर लहरे किनारों से टकराती है, और किनारों पर विद्यमान शैलों का अपरदन करती है। इस प्रक्रिया में आर्थिक महत्व के अधिक घनत्व वाले खनिज समुद्री किनारों पर जमा हो जाते है, और शेष हल्के घनत्व वाले कण समुद्री लहरों के साथ बह जाते है। इस तरह से पुलिन प्लेसर निक्षेपों का निर्माण होता है। केरल के समुद्री तटों पर मोनाजाईट और इल्मेनाईट इसी प्रकार से निक्षेपित हुए है।

4. वायूढ़ अथवा वायुकृत प्लेसर– वायु के अपरदन के कारण शैलों में विद्यमान कण वायु में परिवहित होते है। अधिक घनत्व वाले आर्थिक खनिज लम्बी दूरी तय नही करते है और आसपास निक्षेपित हो जाते है। इन्हे वायूढ़ प्लेसर कहते हैं। आस्टेलिया में इस तरह के निक्षेप मिलते हैं।

9. ऑक्सीकरण एवं उर्ध्वजनित समृद्धि (Oxidation and Supergene Enrichment)

भूपृष्ठ पर अनावृत पाइराईटयुक्त धात्विक सल्फाइड खनिज निक्षेपों पर पृष्ठीय जल की ऑक्सीकरण रासायनिक क्रिया होती है। इससे तीव्र अम्लीय विलायक उत्पन्न होते हैं, जिसमें आर्थिक खनिज पदार्थ घुल जाते हैं। ये विलयन भौमजल स्तर के नीचे जाकर सवंर्धित हो जाते है, और उर्ध्वजनित समृद्धि निक्षेप बनाते है। सबसे निचला भाग अप्रभावित रहता है और मूल प्रक्रति का होता है।

आक्सीकरण एवं उर्ध्वजनित समृद्धि प्रक्रम गरम और नम जलवायु में सर्वाधिक क्रियाशील होता है। इस तरह के क्षेत्रों के धातु निक्षेपों में गहराई के तीन भाग होते हैं।

1. भौम जल क्षेत्र के उपर का ऑक्सीकरण क्षेत्रः इस क्षेत्र में अयस्कों का ऑक्सीकरण एवं विलयन निर्माण होता है। यदि विलयन भौम जल क्षेत्र के नीचे नही जाते है, व इसी भाग में निक्षेपण कर निक्षेप का निर्माण करते हैं।

2. उर्ध्वजनित क्षेत्रः यह भाग भौम जलस्तर से नीचे वाला होता है। इस भाग में आक्सीकरण क्षेत्र से प्राप्त विलयन पूर्वस्थित सल्फाईड खनिजों से क्रिया करते है और उर्ध्वजनित समृद्धि निक्षेप बनाते है।

3. प्राथमिक क्षेत्र : यह भाग निम्नतम अधोजनित निक्षेपों का प्राथमिक अथवा मौलिक भाग होता है, जो ऑक्सीकरण और उर्ध्वजनित क्रियाओं से अप्रभावित होता है।

इस तरह से ताम्र, सीसा, जस्ता, सल्फाईड निक्षेपों का निर्माण होता है। राजस्थान के बसंतगढ, रामपुरा–आगँचा सीसा जस्ता निक्षेप इसी श्रेणी के है।

अन्वेषण (Exploration)

परिभाषा

भूपर्पटी में विद्यमान आर्थिक निक्षेपों की अवस्थिति, आकार, आकृति, आयतन, संचय व ग्रेड संबंधी जानकारी प्राप्त करने का अनुसन्धान कार्य अन्वेषण (Exploration) कहलाता है। इसे भूअन्वेषण (Geoexploration) भी कहते हैं।

अन्वेषण के प्रकार

खनन कार्य करनें से पूर्व किसी भी निक्षेप के आर्थिक विश्लेषण के लिए अन्वेषण आवश्यक होता है। लाभकारी होने पर ही खनन कार्य प्रारम्भ किया जा सकता है। अन्वेषण के आधार पर खनन परियोजना बनाई जाती है। इस प्रकार से भूअन्वेषण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। अन्वेषण कार्य दो प्रकार से होता है।

1. भूरासायनिक अन्वेषण (Geochemical Exploration)
2. भूभौतिक अन्वेषण (Geophysical Exploration)

भूरसायनिक अन्वेषण (Geochemical Exploration)

यदि खनिज निक्षेप भूसतह पर या भूसतह से थोडी गहराई पर हो तो प्रथम अवस्था में यह अन्वेषण प्रक्रिया अपनाई जाती है। यदि आर्थिक निक्षेप भूसतह पर स्पष्टतः उपस्थित है तो विभिन्न विधियों से नमूने एकत्र किये जाते हैं और आर्थिक खनिजों के वितरण एवं मात्रा की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर भूसतह के निचे छिद्रण करके भी नमूने एकत्रित किये जाते है। यदि खनिज निक्षेप के उपर मृदा की परत विकसित हो जाए तो ऐसी स्थिति में रासायनिक अन्वेषणों के द्वारा निक्षेप के मुख्य भाग का निर्धारण किया जा सकता है। इस कार्य के लिए क्षेत्र में निश्चित अन्तराल पर मृदा के नमूने प्राप्त किये जाते है। इनका रासायनिक विश्लेषण करके मानचित्र में आर्थिक महत्व के पदार्थो की मात्रा को दर्शाई जाती है। लगभग समान धात्विक मात्रा वाले बिन्दुओं को मिलाकर मानचित्रण किया जाता है। इससे सर्वाधिक मात्रा वाले भाग का पता चल जाता है, यह अपने नीचे स्थित विद्यमान निक्षेप की जानकारी देता है।भूरासायन अन्वेषण के लिए क्षेत्र का भूवैज्ञानिक ज्ञान आवश्यक है। नमूने एकत्र करते समय बहुत सावधानी रखनी पड़ती है। इस तरह के अन्वेषण में समय अधिक लगता है।

भूभौतिक अन्वेषण (Geophysical Exploration)

पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस संसाधन भूसतह से कई मीटर गहराई पर होते है। इनकी खोज के लिए भूभौतिक अन्वेषण प्रारम्भ हुए। धीरे धीरे इस विधि से धात्विक और अन्य खनिजों का अन्वेषण होने लगा। भूवैज्ञानिक अन्वेषण में भूपर्पटी के नीचे विद्यमान खनिजों एवं अन्य निक्षेपों के भौतिक गुण जैसे वैद्युतिकी, घनत्व, चुम्बकत्व, प्रत्यास्थता और रेडियोधर्मिता के आधार पर पहचाना जाता है। इस तरह के अध्ययनों में संरंचनात्मक जानकारी भी प्राप्त होती है। आवश्यकतानुसार छिद्रण के द्वारा नमूने एकत्र कर अन्य जानकारी प्राप्त की जाती है। भूभौतिक अन्वेषण से कम समय में बड़े क्षेत्र का अन्वेषण किया जा सकता है। अन्वेषण की इस विधि का उपयोग पेट्रोलियम, गैस व धात्विक निक्षेपों के लिए किया जाता है।

भूभौतिक अन्वेषण के प्रकार

1. वैद्युतिक पद्धति (Electrical Method): इस पद्धती का उपयोग धात्विक निक्षेप, भूजल और भूगर्भीय अभियांत्रिकी अन्वेषणों में किया जाता है। इसमें भूसतह के नीचे स्थित पदार्थो के निम्न गुणों का अध्ययन किया जाता है।

(अ) विद्युत चालकताः भूसतह के नीचे स्थित पदार्थो की विद्युत चालकता का मापन प्रतिरोधकता के द्वारा लगाया जाता है। यह ओम–मीटर या ओम–सेन्टीमीटर के रूप में नापी जाती है। धात्विक पदार्थ अधिक सुचालक होते है, जब कि अधात्विक पदार्थ कुचालक होते है। इसी तरह से शुष्क शैल में प्रतिरोध अधिक होता है, जबकि नमः पदार्थो की चालकता अधिक होती है।

(ब) विद्युत रासायनिक सक्रियता का आंकलनः बहुत से पदार्थ जल की उपस्थिति के कारण सक्रियता दशाते है। इसके आंकलन के लिए धरती में इलेक्ट्रोड लगाए जाते है और उत्पन्न शुक्ष्म धारा का मापन किया जाता है। इस आधार पर लवण युक्त सल्फाईड खनिजों की जानकारी की जाती है।

2. गुरूत्वीय पद्धति (Gravitational Method): इस पद्धति में भूसतह पर विद्यमान गुरूत्वीय त्वरण मापा जाता है। जिन भागों में अधिक घनत्व वाले पदार्थ विद्यमान होते है, उन क्षेत्रों में गुरूत्वीय त्वरण की मात्रा अधिक होती है। गुरूत्वीय अन्वेषणों में भूसतह के नीचे विद्यमान अधिक घनत्व वाले धात्विक निक्षेपों का पता लगााया जा सकता है। इसके लिए आमान्य पेन्डुलम, टार्सन बैलेन्स व ग्रेवी मीटर का उपयोग किया जाता है।

3.चुम्बकीय पद्धति (Magnetic Method): पृथ्वी एक छड़ चुम्बक की तरह व्यवहार करती है, इसके कारण से पृथ्वी के बाह्य क्षेत्र में चुम्बकीय क्षेत्र विद्यमान रहता है। यदि किसी क्षेत्र में लोहयुक्त खनिज जैसे मैग्नेटाईट, इल्मेनाईट, पाइराईट, पिरोहटाईट अथवा लोहे की मात्रा अधिक है तो उन भागों में चुम्बकत्व का मान बढ जाता है यह मान सामान्य चुम्बकत्व मान से भिन्न होता है। इस आधार पर धात्विक निद्वोपों का पता लगाया जा सकता है। चुम्बकीय अध्ययनों के लिए मैग्नेटोमीटर

का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान समय में हवाई जहाज पर अतिसंवेदनशील मैग्नेटोमीटर लगाकर भूसतह के चुम्बकत्व का अध्ययन किया जाता है।

4. भूकम्पीय पद्धति (Seismic Method): अन्वेषण की इस पद्धति में भूमि में कृत्रिम कम्पन उत्पन्न करके नीचे स्थित पदार्थों का अध्ययन करते है। कृत्रिम कम्पन्न वस्तुतः प्रत्यास्थ तरंगे होती है, जिनका वेग मार्ग में आने वाले पदार्थो के घनत्व (Density) और दृढता (Rigidity) पर निर्भर करता है। जिस क्षेत्र में भूकम्पीय अध्ययन किया जाता है, वहां मध्य भाग में विस्फोटक अथवा भारी हथौड़ों से कम्पन्न किया जाता है, उसके चारों तरफ जिओफोन लगाए जाते है। जिओफोन प्राप्त तरगों के पहुचने का समय व अन्य जानकारी रिकॉर्ड करते है। जब भी भूकम्पीय तरंगे पृथ्वी के आन्तरिक भाग में गुजरती है तो पदार्थो के घनत्व और दृढता की भिन्नता के अनुसार अपवर्तित अथवा परावर्तित होती है। भूकम्पीय कम्पन्न प्रारम्भ का समय और रिकॉर्ड करने वाले उपकरणों में कम्पन्न पहुचने का समय तथा वेग आदि की जानकारी प्राप्त की जाती है। सभी आंकडे एकत्र करके पृथ्वी के नीचे विद्यमान पदार्थो की संरचनात्मक एवं अन्य गुणो की जानकारी प्राप्त की जाती है।

5. रेडियोधर्मी पद्धति (Radioactive Method): कुछ अवयव जिनके नाभिक बड़े होते है, विद्यटन के द्वारा विभिन्न प्रकार की विद्युत चुम्बकीय तरंगे उत्सर्जित करते है। इन पदार्थो को रेडियोधर्मी पदार्थ कहते है। रेडियोधर्मी उत्सर्जनों को सिन्टीलेशन काउन्टर अथवा गीगर काउन्टर की सहायता से रिकॉर्ड किया जाता है। और इस तरह से रेडियोधर्मी खनिजों का पता लगाया जाता है।

नमूना (Sample) एवं उसकी विशेषताएं

भूवैज्ञानिक अन्वेषण एवं भूवैज्ञानिक अध्ययनों के लिए शैलों के नमूने एकत्र किए जाते है। इनके लिए अंग्रेजी में सैम्पल (Sample) एवं स्पेशीमन (Specimen) शब्द का प्रयोग किया जाता है। इन दोनो के लिए हिन्दी भाषा में प्रतिदर्श या नमूना शब्द का प्रयोग किया गया है। स्पेशीमन शैल, अयस्क या संस्तर इकाई का ऐसा नमूना है जो उसकी **गुणात्मक** जानकारी देता है। स्पेसीमेन अपने बारें में स्थिती तथा संगठन की जानकारी देता है। किन्तु इसके आसपास विद्यमान पदार्थो मे भिन्नता हो सकती है जबकि सैम्पल एक ऐसा नमूना है जो पदार्थ का शैल, अयस्क अथवा अन्य पदार्थ का **मात्रात्मक प्रतिनिधित्व** करता है। इस तरह से सैम्पल अपनी स्थिति के आस पास स्थित पदार्थों की औसत मात्रात्मक जानकारी देता है।

जब भी अन्वेषणें में नमूने शब्द का प्रयोग किया जाता है, तो इसका अभिप्राय सैम्पल से होता है। इस तरह से नमूना अपने क्षेत्र में विद्यमान घटकों का त्रिविमीय प्रतिनिधित्व करता है। अन्वेषण में नमूने एकत्र करने का बहुत महत्व है, क्योकि इसी के आधार पर किसी भी निक्षेप की संचय गणना, ग्रेड आदि का आंकलन किया जाता है।

नमूना एकत्रीकरण (Sample Collection)

नमूना एकत्रीकरण एक संवेदनशील प्रक्रिया है, जिसका हर स्तर पर ध्यान रखा जाता है। भूवैज्ञानिक नमूने एकत्रीकरण का कार्य अन्वेषण, खनन और अयस्क सज्जीकरण के समय करते है। नमूने एकत्रित करते समय उसकी स्थिति और शैलकीय गुण आदि का ब्योरा लिया जाता है। इन्हें सावधानी पूर्वक सुरक्षित थैलियों में संग्रहित किया जाता है। बेग पर लोकेशन या स्थिति व अन्य जरूरी जानकारी लिख दी जाती है। नमूने निम्न विधियों से एकत्र किए जाते है।

1. चिप सैम्पलिंग– इस पद्धति में भूवैज्ञानिक हथौड़े से शैल की एक चिप लेते है। इस तरह का सर्वेक्षण प्रारम्भिक अवस्था में किया जाता है।

2. चैनल सैम्पलिंग– इस तरह की सैम्पलिंग भूमिगत खदानों में ड्राईव की दिशा में 5 सेमी चौडी, 2 सेमी गहरी और एक दो मीटर लम्बाई में चैनल बनाकर किया जाता है। ड्राईव में निश्चित अन्तराल पर नमूने एकत्र किए जाते है। इससे निक्षेप के नतिलम्ब दिशा में ग्रेड की जानकारी मिलती है। इसी तरह से क्रोस कट में चैनल बनाकर चौडाई नमूने एकत्र किए जाते है।

3. ट्रेंचिंग– जब भूसतह पर निक्षेप विद्यमान होता है, तो नतिलम्ब दिशा और नति दिशा में खाईया खेदकर नमूने एकत्रित किये जाते है। इस ट्रेंचिंग कहते है।

4. छिद्रण सेम्पल– छिद्रण के द्वारा भूसतह से नीचे से नमूने एकत्र किए जाते है।

कोनिंग एवं क्वाटरिंग (Coning and Quatering)

जब किसी क्षेत्र से नमूना एकत्रि.त किया जाता है तो यह ठोस अवस्था में होता है। इसकी मात्रा भी कई किलोग्राम हो सकती है। प्रयोगशाला में भेजने के लिए एक छोटे नमूने की जरूरत पडती है। इसके लिए कोनिंग एवं क्वाटरिंग प्रक्रिया अपनाई जाती है। बडी मात्रा में प्राप्त शैलखण्डों को करीब एक या आधा इन्च आकार में तोड़ा जाता है फिर इसकी एक शंकु के रूप में ढेरी बनाई जाती है इसे कोनिंग कहते है। इस ढेरी के बराबर चार भाग किए जाते है, इसे क्वाटररिंग कहते है। इसमें पहले और तीसरा हिस्सा जो आमने सामने होते है, मिलाया जाता है, और तीसरे व चौथे हिस्से को हटा दिया जाता है। कणों के आकार को कम करते हुए कोनिंग क्वाटरिंग प्रक्रिया दोहराई जाती है, जब तक कि नमूना 300–400 मैस आकार का हो जाए, इस तरह से लगभग 100 ग्राम नमूना बनाया जाता है।

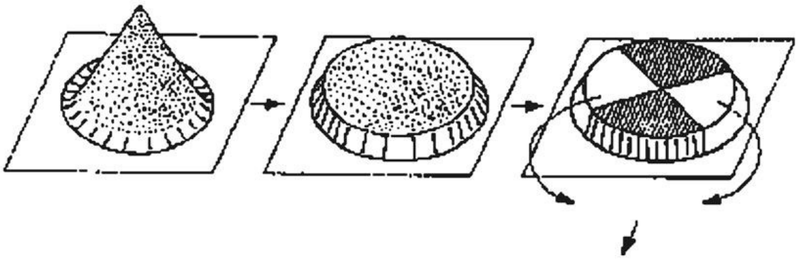

चित्र 8.1 कोनिंग एवं क्वाटरिंग

खनन की परिभाषा, खनन शब्दावली एवं खनन के प्रकार
(Definition, Terms and Types of Mining)

खनन की परिभाषा (Definition of Mining)

पृथ्वी के गर्भ से धातुओं, अयस्कों, औद्योगिक तथा अन्य उपयोगी खनिजों को बाहर निकालना खनिकर्म या खनन (Mining) कहलाता हैं। आधुनिक युग में खनिजों तथा धातुओं की खपत इतनी अधिक हो गई है कि प्रति वर्ष उनकी आवश्यकता करोड़ों टन की होती है। इस खपत की पूर्ति के लिए बड़ी–बड़ी खानों की आवश्यकता का उत्तरोत्तर अनुभव हुआ। फलस्वरूप खनिकर्म ने विस्तृत इंजीनियरिग का रूप धारण कर लिया है। इसको खनन इंजीनियरी कहते हैं। संसार के अनेक देशों में, जिनमें भारत भी एक है, खनिकर्म बहुत प्राचीन समय से ही प्रचलित है। वास्तव में प्राचीन युग में धातुओं तथा अन्य खनिजों की खपत बहुत कम थी, इसलिए छोटी–छोटी खान ही पर्याप्त थी। उस समय ये खानें 100 फुट की गहराई से अधिक नहीं जाती थीं।

किसी भी प्रकार के खनन विकास के लिये खनन के पूर्व की दो अवस्थाएँ–पूर्वेक्षण (Prospecting) तथा गवेषणा या अन्वेषण (Exploration) बहुत महत्वपूर्ण हैं। पूर्वेक्षण के अंतर्गत खनिजों तथा अयस्कों की खोज, निक्षेपों का सामान्य अध्ययन तथा खनन की संभावनाओं को सम्मिलित किया जाता है। इन तथ्यों की जानकारी के लिए किन साधनों की सहायता ली जाय, यह उस क्षेत्र की आवश्यकाताओं पर निर्भर करता है। गवेषणात्मक कार्य के अंतर्गत संभाव्य निक्षेपों का विस्तार और क्षेत्र, उनकी औसत मोटाई, खनिज की संभाव्य मात्रा तथा मूल्य, निक्षेपों के अंतर्गत खनन योग्य क्षेत्रों का वितरण, खान को खोलने, विकसित करने तथा खनन को प्रभावित करनेवाली अवस्थाएँ एवं खान के विकास के लिये उपयुक्त विधि का निश्चय आदि महत्वपूर्ण तथ्य सम्मिलित हैं।

खनन शब्दावली (Terms of Mining)

- **खनन** (Mining): भूमि में से मानव उपयोगी खनिजों को निकालना खनन प्रक्रिया कहलाता है।
- **दोहन** (Exploitation or Winning): पृथ्वी में से अयस्क अथवा आर्थिक खनिजों को निकालना दोहन कहलाता है।
- **खनन क्षेत्र विकास** (Mine Development): खनन क्षेत्र में खनन से पूर्व सडक, भण्डारण स्थान, साफ्ट व अन्य आवश्यक निर्माण कार्य खनन क्षेत्र विकास कहलाता है।
- **साफ्ट या कूपक** (Shaft): खदानों में भूतल से लम्बवत अथवा झुका हुआ भूमिगत मार्ग साफ्ट कहलाता है। यह वर्गाकार अथवा आयताकार हो सकता है। साफ्ट भूमिगत खदानों में प्रवेश का कार्य करती है। साफ्ट के द्वारा खनिक, मशीनरी, विस्फोटक सामग्री आदि को भूमिगत निक्षेप तक ले जाया जाता है । खनन से प्राप्त पदार्थो को साफ्ट के द्वारा ही बाहर निकाला जाता है। बडी खदानों में सर्विस साफ्ट और उत्पाद साफ्ट अलग अलग होती है।
- **हैंगिग वॉल** (Hanging Wall): आर्थिक निक्षेप पिण्ड के उपर विद्यमान क्षेत्रीय शैल (Country Rock) हैंगिग वॉल कहलाते है। कोयला खदानों में हैंगिग वॉल के लिये रूफ (Roof) शब्द का प्रयोग किया जाता है।
- **एडिट** (Adit): पर्वतीय क्षेत्रों में ऐसी सुरंग अथवा मार्ग जिसका एक भाग खुले आसमान में खुलता है दूसरा भाग पर्वत के अन्दर खनिज पिण्ड के पास खुलता है। एडिट सामान्यतः क्षैतिजाधार में होती है।
- **ड्राईव** (Drive): भूमिगत खदानों में एक ऐसा क्षतिज मार्ग जो अयस्क पिण्ड की नतिलम्ब दिशा के समानान्तर होता है। ड्राईव की स्थिति हैंगिग वॉल, फूटवॉल अथवा अयस्क पिण्ड में हो सकती है।
- **फुटवॉल** (Foot Wall): अयस्क पिण्ड के नीचे स्थित शैलीय भाग को (Country Rock) फुटवॉल कहते है।

- **लेवल** (Level): भूमिगत खदानों में विभिन्न तलों पर ड्राईव बनाए जाते है इन्हे भिन्न भिन्न लेवल के रूप में पहचाना जाता है।
- **क्रोस कट** (Cross Cut): भूमिगत खदानों में अयस्क पिण्ड के नतिलम्ब दिशा में निर्मित सुरंगनुमा मार्ग क्रोस कट कहलाता है।
- **टनल या सुरंग** (Tunnel): पर्वतीय क्षेत्रों में भूमिगत मार्ग जिसके दोनो सिरे खुले आसमान में खुलते है उसे टनल या सुरंग कहते है। यह मार्ग लगभग क्षतिज होता है।
- **रेज** (Raise): भूमिगत खदानों में एक लेवल से ऊपर की तरफ बनाए जाने वाले मार्ग को रेज कहते है।
- **विंज** (Winze): भूमिगत खदानों में एक लेवल से नीचे की तरफ बनाए गए मार्ग को विंज कहते है।
- **अयस्क बिन** (Ore Bin): भूमिगत खदानों में वह भाग जहा खनन से प्राप्त अयस्क का संग्रहण किया जाता है। अयस्क बिन कहते है।
- **श्यूट** (Shute): भूमिगत खदानों में अयस्क बिन का नाली के आकार का भाग जिसके द्वारा ट्रोली में अयस्क भरा जाता है। श्यूट कहते हैं।
- **स्टॉप** (Stope): भूमिगत खदानों में वह भाग जहां पर अयस्क का दोहन किया जाता है। स्टॉप कहते है। यदि खनिक ऊपर की तरफ खोदते है तो इसे ओवर हैंड स्टॉपिंग (Over hand Stoping) कहते है। यदि खनिक नीचे की तरफ खोदते है तो इसे अण्डर हैंड स्टॉपिंग (Under hand Stoping) कहते है।
- **ऐसे चौडाई** (Assay width): किसी निक्षेप की अधिकतम चौडाई जिसमें आर्थिक खनिज विद्यमान है, ऐसे चौडाई कहते है। यह सम्भव है कि चौडाई में आर्थिक खनिज का वितरण एक जैसा ना हो।
- **स्टॉपिंग चौडाई** (Stoping width): अयस्क पिण्ड की अधिकतम चौडाई जिसमें आर्थिक दृष्टि से खनन करना उपयुक्त हो स्टॉपिंग चौडाई कहते हैं। यह चौडाई ऐसे चौडाई से बराबर अथवा कम होती है।
- **कटऑफ ग्रेड** (Cut-off grade): अयस्क की वह न्यूनतम ग्रेड जो आर्थिक दृष्टि सें खनन के लिए उपयोगी है कटऑफ ग्रेड कहते हैं। किसी निक्षेप में कटऑफ ग्रेड से कम मात्रा नुकसान देनेवाली होती है और खनन कार्य नही किया जाता है।
- **एवरेज ग्रेड** (Average grade): किसी भी निक्षेप में ग्रेड एक जैसी नही होती है। कुछ भागों में उच्च ग्रेड तो अन्य में कम ग्रेड का अयस्क विद्यमान होता है। इस तरह से गुणवत्ता की दृष्टि से अंकगणितीय माध्य एवरेज ग्रेड कहलाता है।
- **मिल ग्रेड** (Mill grade): अयस्क सज्जीकरण प्लांट में एक निश्चित ग्रेड का अयस्क भेजा जाना आवश्यक होता है भूवैज्ञानिक मिल में भेजने से पूर्व एक निश्चित ग्रेड का अयस्क भेजते है इसे मिल ग्रेड कहते है।

खनन के प्रकार (Types of Mining)

किसी भी आर्थिक निक्षेप की अवस्थिति भूसतह से गहराई, आकार, आकृति और क्षेत्रीय शैलों की कठोरता के आधार पर खनन पद्धति (Mining Method) का निर्धारण होता है। कुछ खनिज पदार्थ भूसतह पर पाए जाते है, इनका खनन खुली खदानों के रूप में किया जा सकता है, इस तरह के खनन को तलीय खनन (Open cast Mining or Surface Mining) कहते हैं। यदि आर्थिक निक्षेप भूसतह के नीचे स्थित हो तो खनन कार्य भूसतह के नीचे जाकर ही करना संभव होता है, इस तरह का कार्य भूमिगत खनन (Underground Mining) कहलाता है। कुछ बहुमुल्य पदार्थ जैसे स्वर्ण, प्लेटिनत, हीरा व जवाहरात, बजरी या रेत में मिलते है। बहुत सी नदियों की रेत में बहुमुल्य खनिज मिलते है। इनके दोहन में अपनाई जाने वाली पद्धति जलोढ. खनन (Alluvial Mining) कहलाती है। इस प्रकार से खनन को मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित किया गया हैं।

1. जलोढ़ खनन (Alluvial Mining)
2. तलीय खनन (Open cast Mining or Surface Mining),
3. भूमिगत खनन (Underground Mining)

जलोढ़ खनन (Alluvial Mining)

कुछ प्राचीन नदियों के एकत्रित अवसाद में कभी कभी बहुमूल्य धातुएं भी निक्षेपित हो जाती है। इन अवसादों से धातुओं की प्राप्ति करना जलोढ़ खनन के अंतर्गत आता है (चित्र 8.2)। कुछ अवस्थाओं में ये अवसाद दूसरे नए अवसादों से ढक भी जाते हैं। तब उन्हें हटाकर धातुओं की प्राप्ति की जाती है। प्रक्षालन निक्षपों (Placer deposits) के खनन में विशेष रूप से इसे प्रयुक्त किया जाता है। ये शिलाएं मलवा निर्मित (Detrital) होती हैं तथा इनके कणों का आकार भी भिन्न होता है। प्रक्षालन निक्षपों के प्रमुख उपयोगी खनिज सोना, टिन, प्लैटिनम तथा विरल मिट्टियाँ हैं। शिलाओं में इन धातुओं की प्रतिशत मात्रा बहुत कम होती है। इस विधि में ऊँचे दबाव पर पानी बड़े वेग के साथ से निकलता है और शिला पर टकराता है। पानी के टक्कर के फलस्वरूप शिला टूट जाती है तथा सूक्ष्म कणों में विच्छिन्न हो जाती है। पानी की धारा के साथ ये कण आगे चल देते हैं, जहाँ पानी स्लूस बक्सों जिनमें बाधक प्लेटें लगी रहती हैं, प्रवाहित किया जाता है। बाधक प्लेटों के समीप भारी धातुएँ एकत्रित हो जाती है तथा

चित्र 8.2 जलोढ़ खनन

धातुकणों से विहिन पानी विच्छिन्न शिला को लिए आगे बह जाता है। इस कार्य के लिए साधनों की उपलब्द्वता के आधार पर व निक्षेप की प्रकृति के आधार पर विभिन्न उपकरण काम में लाए जाते है जो निम्नानुसार हैः–

1. पेन या परात
2. रोकर
3. लोंग टोम
4. सल्युसिंग
5. डेरिक व केबल वे
6. हाईड्रोलिक मशीन
7. ड्रिफ्टर
8. ड्रेजर

जलोढ खनन विधि में विशाल मात्रा में जल की आवश्यकता होती है। पानी का दबाव 50 से 600 फुट तक हो सकता है। खनन का मूल्य भी कम होता है, क्योंकि इसमें पानी से उत्पन्न शक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी शक्ति की आवश्यकता नहीं होती। बड़े निक्षेपों के खनन में यांत्रिक साधनों का भी उपयोग किया जाता है तथा कभी कभी इस विधि से 30 फुट मोटाई के निक्षेपों तक का खनन होता है। भारत में जलोढ खनन व्यवहार में नहीं है। कुछ क्षेत्रों में रेत छानकर तथा धोकर सोना आदि प्राप्त किया जाता है। बिहार में स्वर्णरेखा नदी के तट पर रहनेवाले निवासी इसी प्रकार सोने की प्राप्ति किया करते है।

जलोढ खनन की एक अन्य विधि में एक विशेष प्रकार की यांत्रिक नौकाओं (ड्रेजर) का भी उपयोग होता है। इन नौकाओं में घूमनेवाली बाल्टियों की व्यवस्था रहती है, जो तलहटी से बालू को खरोंचकर नाव पर ला देती हैं। बर्मा और मलाया के टिन क्षेत्रों के प्रक्षापालन निक्षेपों के खनन में यही विधि प्रयुक्त की गई है। इस खनन में शक्ति की आवश्यकता तथा धन की लागत भी यथेष्ट पड़ती है। ये नौकाएँ 20 फुट की गहराई तक की बालू खरोंच सकती हैं।

तलीय खनन (Open cast Mining or Surface Mining)

जब आर्थिक खनिज निक्षेप भूसतह पर पाया जाता है तो खुली खदानों के रूप में खनन होता है इसे तलीय खनन कहा जाता है (चित्र 8.3)। छोटी खदानों को क्वेरी भी कहते है। यह खनन कार्य निम्न प्रकार से किया जाता है। इस प्रकार के खनन में धरातल के ऊपर जो पहाड़ आदि हैं उनको तोड़कर खनिज प्राप्त किए जाते हैं, जैसे चूने का पत्थर, बालू का पत्थर, ग्रैनाइट, लौह अयस्क आदि।

चित्र 8.3 तलीय खनन

जो शिलाएँ कोमल होती हैं, उनको तोड़ने में कठिनाई नहीं होती है। ऐसी शिलाओं के उदाहरण जिप्सम, चीनी मिट्टी, सेलखड़ी आदि हैं। इस तरह के खनन कार्य में खनिक स्वयं अपने हाथ से कार्य करते है और औजारों का प्रयोग करते है। इस तरह का खनन छोटी खानों में होता है। इस तरह से भवन निर्माण में काम आने वाले पत्थर, छत के स्लेब, फर्श के पत्थर, चूना पत्थर बजरी आदि का खनन होता हे। यदि निक्षेप शिरोओं के रूप में छोटे आकार में होता है, तब भी इस तरह का खनन कार्य किया जाता है। खनन हेतु फावडा गेती,स्टील की छड, हथौडे, परात आदि का प्रयोग किया जाता है।

जब निक्षेप का आकार बडा होता है, और निक्षेप भूसतह पर होता है तो बडी खनन परियोजनाए बनाई जाती है। इनमें वेधन मशीन, पॉवर शॉवेल, स्क्रेपर, स्केवेटर, कन्वेयर, बडे डम्पर आदि का प्रयोग सम्भव होता है। राजस्थान में जामर कोटडा रॉक फास्फेट, रामपुरा आगूचा सीसा–जस्ता निक्षेप, गिरल लिग्नाईट

निक्षेप, मार्बल, ग्रेनाईट चूना पत्थर, बेलका वॉलेस्टोनाईट निक्षेप आदि का खनन इस तरह से होता है। जिन शिलाओं में धातुएँ मिलती हैं वे अत्यंत कठोर होती हैं, जैसे ग्रैनाइट, डायोराइट आदि। इन शिलाओं को विस्फोटक पदार्थों द्वारा तोड़ा जाता हैं। प्राचीन तथा मध्यकालीन युगों में खनन की विधियां नितांत अनुपयुक्त थीं। धीरे धीरे खनन विधियों का विकास हुआ और उनमें बारूद आदि का उपयोग होने लगा।

विगत एक शताब्दी में डायनेमाइट, नाइट्रोग्लिसरीन आदि अनेक प्रकार के विस्फोटक पदार्थों का विकास हुआ। खनन में विस्फोटक पदार्थों का उपयोग करने के लिये पहले शिलाओं में छिद्र बनाया जाता है तथा उसमें ये विस्फोटक जो कारतूस के रूप में मिलते हैं, रख दिए जाते हैं और विद्युत द्वारा या फ्यूज लगाकर उनमें आग लगा दी जाती हैं। विस्फोट के साथ ही पत्थर के टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं। पत्थरों में छिद्र बनाने के लिय जैक हैमर आदि अनेक प्रकार के वेधन यंत्रों का उपयोग किया जाता है। इस काम में यांत्रिक खुरपे भी बड़े उपयोगी सिद्ध हुए हैं। ये खुरपे उन पत्थरों को उठाकर बड़े ट्रकों में भर देते हैं। भारत में इस प्रकार के तलीय खनन के उदाहरण चूना पत्थर तथा लौह अयस्क आदि हैं।

खुली हुई खनिजों के रूप में खनन करने से पूर्व उस क्षेत्र की स्थालाकृति के मानचित्र बनाए जाते हैं और फिर खाइयाँ, परीक्षाणात्मक गड्ढे तथा वेधन द्वारा निक्षेप की मोटाई तथा खनिज की उपलब्ध मात्रा का निश्चय किया जाता है। पानी के निकास की दशाओं पर भी सावधानी से विचार किया जाता है। खनन कार्य प्रारंभ होने पर सबसे पहले निक्षेपों पर स्थित मिट्टी हटाने का काम होता हैं। खनन कार्य चोटी से प्रारंभ होता है तथा एक के बाद एक सपाट बेंचें तब तक काटी जाती हैं जब तक तलहटी नहीं आ जाती। आजकल आधुनिक बोरिंग यंत्रों के आवि कार के फलस्वरूप 25–30 फुट तक मोटाई की बेंचें काटना सरल हो गया हैं। इन बेंचों के ऊपर हल्के ट्रक तथा लोहे की पटरियों पर चलने वाले ठेलों के आने जाने का प्रबंध किया जाता है। साधारणतया बेंच बनाने के लिये शिलाओं में कई छिद्र किए जाते है तथा विस्फोट करने के लिये लचकीली विस्फोटक टोपिकाओं का प्रयोग किया जाता है। एक पौंड विस्फोटक पदार्थ से 4 से 15 टन तक शिलाएँ टूट सकती हैं। यह मात्रा शिलाओं की दृढ़ता पर निर्भर करती है।

भारत में खुली हुई खानों के रूप में खनन की प्रणाली मुख्यतः चूना पत्थर आदि के लिये बड़े स्तर पर प्रयुक्त होती है। जिन खानों से सीमेंट उत्पादन के लिये चूना पत्थर निकाला जाता है, वहाँ 2000 टन तक का दैनिक उत्पादन असामान्य नहीं समझा जाता। बिहार, मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा आदि में लौह अयस्क के उत्खनन में भी इसी विधि का उपयोग होता है। अन्य अयस्कों तथा खनिजों के अतिरिक्त इस प्रकार की खनन प्रणाली कोयले के लिये भी वहाँ प्रयुक्त की जा सकती है जहाँ कोयले के स्तरों की गहराई अधिक न हो। इस प्रकार कोयले के स्तर की मोटाई से यदि उस पर स्थित मिट्टी की मोटाई दस गुनी तक अधिक होती है तो भी इस प्रकार का खनन आर्थिक दृष्टि से उपयुक्त ही समझा जाता है।

भूमिगत खनन (Underground Mining)

अनेक प्रकार के खनिजों तथा अयस्कों के उत्खनन में भूमिगत खनन का सहारा लेना पड़ता है जिनका खुली हुई खानों के रूप में खनन, गहराई पर स्थित होने के कारण, आर्थिक दृष्टि से अनुपयुक्त अथवा असंभव होता है (चित्र 8.4)। यद्यपि भूमिगत खनन में भी बड़ी पूंजी की आवश्यकता होती है, तथापि इन निक्षेपों के खनन के लिये कोई अन्य विकल्प नहीं है।

चित्र 8.4 भूमिगत खनन

आर्थिक महत्व के निक्षेपों में विद्यमान पदार्थ व क्षेत्रीय शैल की कठोरता के आधार पर भूमिगत खनन पद्धति का निर्धारण किया जाता है। इसमें खनिको की सुरक्षा शुद्ध हवा, प्रकाश, आदि का विशेष ध्यान रखना आवश्यक होता है। भूमिगत खनन परियोजना में अधिक धनराशि का उपयोग होता है। इसमें खनन क्षेत्र का आवश्यक विकास भी करना पडता है।

खानों में कार्य आरंभ होने से पहले पूर्वेक्षण तथा गवेषणात्मक कार्यों को सावधानी से समाप्त कर लिया जाता है। इसके पश्चात् खान का विकास कार्य प्रारंभ होता है। सर्वप्रथम कूपक (Shaft) बनाए जाते हैं। इनका व्यास 10–12 फुट तक हो सकता है। यदि निक्षेपों की गइराई कम होती है तो प्रवणकों का ही निर्माण कर लिया जाता है। यदि आवश्यकता हुई तो भूमिगत मार्ग तथा गैलरियाँ भी बना ली जाती हैं। भूमिगत खनन में कूपकों का बड़ा महत्व है, क्योंकि कर्मचारियों का खान में आना जाना, खनित पदार्थों का बाहर आना, वायु का संचालन तथा खान से पानी बाहर फेंकने के लिये पंपों का स्थापन इन्हीं से संचालित होता है। किसी भी खान में कम से कम दो कूपक अवश्य होते हैं।

खनिजों तथा अयस्कों को तोड़ने में फावड़े, कुदाली तथा सब्बल अथवा यंत्रों या विस्फोटक पदार्थों की सहायता ली जाती है। प्रयत्न इस बात का किया जाता है कि खनिज की अधिकाधिक मात्रा निकाल ली जाय। किंतु इससे खान में शिलाओं का संतुलन बिगड़ने लगता है। यह बहुत कुछ अंशों तक शिलाओं के लचीलेपन तथा उनकी शक्ति पर निर्भर करता है। खान में शिलाओं का संतुलन बिगड़ने से बचाने के लिये खान की दीवारों तथा छत को सहारे की आवश्यकता होती है। इसके लिए जिस स्तर पर कार्य चल रहा है उसमें स्तंभ छोड़ दिए जाते है और आसपास से खनिज निकाल लिया जाता है। किंतु इसमें खनिज की काफी मात्रा का ह्रास होता है। इसलिये आजकल प्रयत्न यह किया जाता है कि खाली स्थानों में बालू अथवा वैसा ही कोई अन्य पदार्थ भर दिया जाय तथा उन स्तंभों का खनिज भी निकाल लिया जाय। यह विधि अधिकांश भारतीय कोयला खानों में प्रयुक्त होती है। इसके अतिरिक्त, लकड़ी, लोहा, कंक्रीट, पत्थर, ईंट आदि भी प्रयुक्त होते है। खनिज पदार्थ को खान से ऊपर लाने के लिये पिंजड़े के आकार का झूला, इस्पात के रस्से तथा वाइंडिंग इंजन की आवश्यकता होती है। खानों के अंदर खनिज को एक स्थान से दूसरे स्थान तक लाने के लिये ट्रालियाँ प्रयुक्त होती हैं, जो अधिकतर लोहे की पटरियों पर चलती हैं।

भूमिगत खानों में उपयुक्त प्रकाश तथा शुद्ध वायु के आवागमन का प्रबंध अत्यंत आवश्यक है। अधिकांश खानों में अब विद्युत् प्रकाश उपलब्ध है। वायु के आवागमन के लिये वायुमार्ग बड़े होने चाहिए तथा वायु का प्राकृतिक प्रवाह नहीं रुकना चाहिए। कुछ स्थितियों में इसके लिये कुछ यांत्रिक साधनों की भी आवश्यकता होती है। ये यंत्र खान में शुद्ध वायु का संचालन करते हैं।खान में कूप खोदते समय, अथवा जलपटल आ जाने पर, पानी का प्राकृतिक प्रवाह प्रारंभ हो जाता है। यह पानी नाली बनाकर एक जगह ले जाया जाता है तथा वहाँ से पंप द्वारा खान से बाहर निकाल दिया जाता है।आर्थिक निक्षेप के पदार्थों एवं विद्यमान शैलों के कठोरता के आधार पर भूमिगत खनन की निम्न पद्धतियां प्रचलित है।

1. ओपन स्टॉपः जब आर्थिक खनिज निक्षेप पदार्थ और विद्यमान शैल दोंनो ही कठोर प्रकृति के होते है, तो खनन के बाद स्टॉप को खाली रख सकते है। जब अयस्क पिण्ड काफी गहराई तक होता है तो विभिन्न लेवल पर खनन किया जाता है। इस तरह की पद्धति जावर खान में अपनाई गई है।

2. ओवर हैंड स्टॉपिंग विद सपोर्टः जब खनिज निक्षेप अथवा अयस्क पिण्ड के चारों तरफ विद्यमान शैल कमजोर प्रकृति के होते है, और खनिज निक्षेप के शैलों में भी कठोरता नही होंती है तो धसाव को रोकने के लिए लकड़ी अथवा कंक्रीट का सहारा प्रदान किया जाता है।

कुछ अयस्क पिण्डों और विद्यमान शैलों की कठोरता ज्यादा नही होती है किन्तु ये कमजोर भी नही होते है, ऐसी स्थिति में खनन से प्राप्त अयस्क को थोडे समय के लिए स्टॉप में रखा जाता है। खनन से पदार्थ का आयतन बढता है, इस तरह से कुछ भाग वहा से हटा दिया जाता है और कुछ भाग वही रहता है। कुछ खानों में खाली स्टॉप में मिटटी व अन्य शैल पदार्थ भर दिए जाते है । अतः इन्हें भरे हुए फील्ड (Filled) स्टोप्स कहा जाता है।

3. केविंग मेथडः कुछ खनिज पदार्थ जैसे कोयला भूसतह से 10 से 50 मीटर पाए जाते है। एसे क्षेत्रों में भूमिगत ,खनन से बने खाली स्थान को धसांव से भर दिया जाता है। अतः इसे केविंग पद्धति कहते है। यह पद्धति भूमिगत कोयले को निकालने के लिए काम में लाई जाती है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. आर्थिक भूविज्ञान, विज्ञान की वह शाखा है, जिसमें मानव के उपयोगी समस्त खनिजों का अध्ययन किया जाता है।
2. कुछ खनिज जो आर्थिक दृष्टि से मनुष्य के लिए उपयोगी होते है, आर्थिक खनिज (Economic Mineral) कहलाते हैं।
3. प्रकृति में ऐसे निक्षेप जिनसे धातुए प्राप्त होती है, धात्विक निक्षेप कहते है।
4. पृथ्वी से प्राप्त होने वाला वह खनिज पदार्थ जिसका उपयोग एक या एक से अधिक धातुओं को प्राप्त करने के लिये किया जाता है, अयस्क खनिज कहलाते है।
5. खनिज अयस्को के साथ पाए जाने वाले अवांछित अधात्विक पदार्थ जिन्हे अयस्क से खनिज प्राप्ति क्रिया में महत्वहीन होने के कारण हटा दिया जाता है, गैंग खनिज (Gangue Mineral) कहलाते हैं।
6. अन्तर्वेधी, वितलीय, व अधिवितलीय आग्नेय शैलों में प्राप्त होने वाले वे अर्थिक महत्व के खनिज, जो मेग्मा में कभी कभी या अल्प मात्रा में क्रिस्टलित होते है, यदि किसी क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा या आवश्यक सान्द्रता में एकत्रित हो जाए तो मैग्मीय सान्द्रण निक्षेप कहलाता है। मैग्मीय सान्द्रण निक्षेपो से सामान्यतः लोहा, क्रोमियम, निकल, टाईटेनियम, तॉबे के जब पूर्वस्थित शैल परिवर्तित ताप व दाब से प्रभावित होते है तो इनमें पुर्नक्रिस्टलीकरण होता है तो यह प्रक्रिया कायान्तरण कहलाती है।
7. भूपर्पटी में विद्यमान आर्थिक निक्षेपों की अवस्थिति, आकार, आकृति, आयतन, संचय व ग्रेड संबंधी जानकारी प्राप्त करने का अनुसन्धान कार्य अन्वेषण (Exploration) कहलाता है।
8. पृथ्वी के गर्भ से धातुओं, अयस्कों, औद्योगिक तथा अन्य उपयोगी खनिजों को बाहर निकालना खनिकर्म या खनन (Mining) कहलाता हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. अयस्क से प्राप्त होता है।
   (अ) धात्विक खनिज (ब) अधात्विक खनिज
   (स) शैल निर्मात्री खनिज (द) इनमें से कोई नहीं
2. गुरूत्वीय भूभौतिक अन्वेषण में पदार्थ के किन गुणों का अध्ययन किया जाता है।
   (अ) रासायनिक (ब) प्रत्यास्थता
   (स) रेडियोधर्मिता (द) घनत्व
3. एडिट का निर्माण होता है।
   (अ) क्षतिज तल में (ब) लम्बवत तल में
   (स) झूके हुए तल में (द) इनमें से कोई नहीं
4. सर्वाधिक चालकता होती है।
   (अ) धात्विक निक्षेप की
   (ब) अधात्विक निक्षेप की
   (स) शैल निर्मात्री खनिजों की
   (द) इनमें से कोई नहीं
5. कायान्तरण से निर्मित आर्थिक निक्षेप है।
   (अ) ग्रेफाईट (ब) चूना पत्थर
   (स) बलुआ पत्थर (द) इनमें से कोई नहीं

अतिलघुतरात्मक प्रश्न

1. निक्षेप कितने प्रकार के होते है?
2. अयस्क किसे कहते है?
3. अयस्क खनिज क्या होते है?
4. गैंग खनिज किसे कहते है?
5. अधात्विक निक्षेप क्या होते है?
6. कोयला निक्षेप किस विधि से बनते है?
7. अन्वेषण का अभिप्रायः बताईये।
8. भूभौतिक अन्वेषण किस लिए किया जाता है?
9. खनन से क्या अभिप्राय है?
10. चिप सैम्पलिंग का क्या अभिप्राय है?
11. चैनल सैम्पलिंग का क्या अभिप्राय है?
12. एडिट खनन क्षेत्र का क्या अभिप्राय है?
13. शाफ्ट किसे कहते है?
14. खानों में विद्यमान ड्राईव क्या होते है?
15. फुटवॉल किसे कहते है?
16. कट ऑफ ग्रेड क्या होती है?
17. मिल ग्रेड का अभिप्राय बताइये।
18. श्यूट का उपयोग बताइये।
19. अंडर हैड स्टोपिंग क्या होती है?
20. ओवर हैड स्टोपिंग क्या होती है?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. आर्थिक भूविज्ञान की परिभाषा बताइये।
2. आर्थिक भूविज्ञान का महत्व बताइये।
3. अयस्क की परिभाषा दीजिए।
4. खनिज निक्षेप का क्या अभिप्रायः है?
5. मैग्मीय सान्द्रण प्रक्रम क्या होते है?
6. उष्ण जलीय प्रक्रम से निक्षेप निर्माण की प्रक्रिया बताइये।
7. कायान्तरण से बनने वाले खनिज निक्षेप बताईये।
8. प्लेसर निक्षेप कितने प्रकार के होते है?
9. अवसादन प्रक्रम क्या होते है?
10. खनिज नमूना क्या होते है?
11. खनिज नमूना एकत्रीकरण किस प्रकार से किया जाता है?
12. कॉनिंग एवं क्वाटरिंग प्रक्रिया क्या होती है?
13. खनन के मुख्य प्रकार बताइये।
14. खनन क्षेत्र मे निर्मित शाफ्ट का उपयोग बताइये।
15. भूरासायनिक अन्वेषण के बारें में बताइये।
16. भूभौतिक अन्वेषण और भूरासायनिक अन्वेषण में अन्तर बताइये।
17. वैद्युत पद्धति से अन्वेषण किस आधार पर किया जाता है?
18. चुम्बकत्व पद्धति से किस प्रकार के निक्षेपों का पता लगाया जाता है?
19. भूकम्पीय अन्वेषण कार्य में पदार्थ के किन गुणों का अध्ययन किया जाता है?

निबंधात्मक प्रश्न

1. आर्थिक भूविज्ञान की परिभाषा महत्व और निक्षेपों के बारें में विस्तृत टिप्पणी लिखिये।
2. खनिज निर्माण विधियों पर लेख लिखिये।
3. अन्वेषण से क्या अभिप्रायः है? अन्वेषण की विभिन्न पद्धतियों का वर्णन कीजिये।
4. खनिज नमूने को परिभाषित करते हुए खनिज एकत्रीकरण के बारें में बताइये।
5. खनन की विभिन्न पद्धतियों के बारें में वर्णन कीजिये।

उत्तरमालाः 1. (अ) 2. (द) 3. (अ) 4. (अ) 5. (अ)

अध्याय – 9

व्यावहारिक भू–विज्ञान
(Applied Geology)

व्यावहारिक भू–विज्ञान के अंतर्गत चार विषयों का अध्ययन किया जाता है।

1 भू–जल विज्ञान 2. भू–अभियांत्रिकी

3. दूर संवेदी 4. पर्यावरण भू–विज्ञान

भू–जल विज्ञान (Hydrogeology)

परिभाषा

भूमिगत जल के वैज्ञानिक अध्ययन को भू–जल विज्ञान कहा जाता है। किसी भी भू–गर्भीय परत के मध्य स्थित खाली स्थानों (voids) में पाए जाने वाले जल को भू–जल कहते है। अगर समस्त खाली स्थान पूर्ण रूप से भू–जल से भरे हुए हो तो उसे जल–संतृप्त क्षेत्र (saturated zone) कहते है तथा इसकी विपरीत परिस्थिति को जल–असंतृप्त क्षेत्र (unsaturated zone) कहा जाता हैं। सामान्यतः जल–असंतृप्त क्षेत्र, जल–संतृप्त क्षेत्र की ऊपरी सतह के रूप में मिलता हैं। इन दोनों क्षेत्रों को विभाजित करने वाले तल को " भू–जल स्तर" कहा जाता है।

जल चक्र (Water Cycle)

भू–जल या भौमिकी जल पृथ्वी के जल चक्र का एक अहम् हिस्सा है जिसे भू–जलीय चक्र भी कहा जाता है। चित्र 9.1 में पृथ्वी के जल चक्र को दर्शाया गया है।

पृथ्वी की ऊपरी परत पर्पटी (crust) में ऐसी संरचनाएं पायी जाती है जो भू–जल को संग्रहित और परिवहन करने का कार्य करती है। जल इन शिलाओं में सतह से या फिर तालाबों, पोखरों, झीलों, आदि के माध्यम से प्रवेश करता है। सतही जल शिलाओं में प्रवेश करने के पश्चात् भौमिक जल का रूप ले लेता है और गुरूत्वाकर्षण बल की सहायता से ढाल की तरफ वाली दिशा में परिवहन करता है। ऐसी शिलाएं जो भू–जल का संग्रहण व परिवहन करती है वे भौमिक जल का स्रोत या जलभृत (acquifer) कहलाती है।

भौमिक जल परिवहन के पश्चात् आन्तरिक संरचना के गुणों के आधार पर धाराओं, नदियों या झरनों के रूप में पृथ्वी की सतह पर प्रस्फुटित होता है। झरनों के रूप में पाया जाने वाला जल

चित्र 9.1 जल चक्र को दर्शाता रेखाचित्र (स्रोतः US Geological Society)

प्रस्फुटित भूगर्भ जल का एक प्रमुख हिस्सा होता है जो नदियों में लगातार बहता है या झीलों में भरा रहता है।

नदियों से बहकर जाने वाला जल समुद्र में मिल जाता है। तालाबों, झीलों व समुद्र से जल वाष्पीकृत (evaporate) होकर वायुमंडल (atmosphere) में चला जाता है। कुछ भू–जल पृथ्वी की ऊपरी सतह से पेड़–पौधों द्वारा ट्रांसपिरेशन (transpiration) द्वारा भी वायुमंडल में समाहित हो जाता है। वायुमंडल में जल की बूदों से बादल का निर्माण होता है जिसे कंडेंसेशन (condensation) कहते है। बादल से वर्षा पुनः जल को पृथ्वी की सतह पर पहुंचाती है और इस प्रकार जल चक्र पूर्ण होता है। भौमिक जल की आपूर्ति, परिवहन व रिसाव को जल चक्र का प्रमुख हिस्सा माना जाता है। भौमिक जल में जल चक्र के साथ–साथ अन्य स्रोत भी महत्वपूर्ण है। समस्त स्रोतों से प्राप्त भू–जल परिवहन के दौरान आपस में मिलकर शैलों में जल मात्रा का निर्धारण करते है। इन समस्त स्रोतों का आपस में सहसंबंध है। भू–जल चक्र में निम्नलिखित सभी भू–जल के प्रकार महत्वपूर्ण है।

1. वायुमंडलीय स्रोत से प्राप्त भू–जल को मिटियोरिक जल (meteoric water) कहा जाता है।
2. जो जल शिलाओं के भीतर शिला के जन्म के साथ पाया जाता है और वायुमंडल के प्रभाव में नहीं होता है उसे सहजात जल (connate water) कहा जाता है।
3. मैग्मा से प्राप्त जल को मैग्मेटिक जल (magmatic water) कहा जाता है। अधिक गहराई में मैग्मा के स्रोत से प्राप्त जल को वितलीय (plutonic) जल व कम गहराई के ज्वालामुखी स्रोत से प्राप्त जल को ज्वालामुखी (volcanic) जल कहा जाता है।
4. कायान्त्रित जल (metamorphic water) कायान्त्रण (metamorphism) की प्रक्रिया के दौरान प्राप्त होता है।

समस्त भू–जल जो पूर्व में जलमंडल (hydrosphere) का भाग नहीं रहें हो उन्हें नवीन जल (juvenile water or new water) कहा जाता है।

भू–जल विवरण

भू–जल विवरण के आधार को समझने के लिए कुछ तकनीकी शब्दों का उपयोग भू–जल विज्ञान में प्रायः किया जाता है जिन्हें प्रारम्भ में समझना आवश्यक है।

1. **जलभृत** (Acquifer): एक ऐसी भूगर्भीय संरचना को जलभृत कहा जाता है जिसमें पानी का संचय व परिवहन होता है। इस संचित भूगर्भीय जल से कुओं व झरनों में पानी संचालित होता है।
2. **एक्वीक्लुयड** (Acquiclude): एक ऐसी जल–संतृप्त शैलीय संरचना है जो संरन्ध्री तो है परन्तु अप्रवेश्य (impermeable) होती है।
3. **एक्वीफ्यूज़** (Aquifuge): एक ऐसी शैलीय संरचना होती है जो अप्रवेश्य होती है और साथ ही अपरागम्य होते हुए लगभग जल रहित रहती है।
4. **एक्वीटार्ड** (Acquitard): एक ऐसी शैलीय संरचना जो छिद्रयुक्त तो है पर अपरागम्य है और जिसकी वजह से पानी ग्रहण करने की क्षमता कम होती है।

भू–जल विवरण को जमीन की सतह से गहराई के आधार पर दो क्षेत्रों में बांटा गया है (चित्र 9.2)।

1. ऐरेशन का क्षेत्र (Zone of aeration)
2. संतृप्ती का क्षेत्र (Zone of saturation)

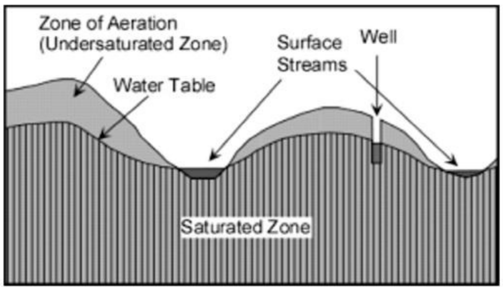

चित्र 9.2 भू–जल के भीतर के उपभाग क्षेत्र

(1) ऐरेशन का क्षेत्र – भूगर्भ का वह क्षेत्र है जहां पर खाली स्थान (voids) आधे हवा से तथा आधे पानी से भरे हुए पाए जाते है। इस क्षेत्र में पाया जाने वाला भूजल वाडोस जल कहलाता है। इसकी विशेषता गुरूत्वाकर्षण बल के आधार पर जल–तल तक पहुंचने की ओर रहती है। ऐरेशन क्षेत्र को तीन उपभागों में बांटा गया है–

(अ) मृदा जल क्षेत्र (Soil water zone): यह क्षेत्र सतह से लेकर पेड़ों की जड़ों तक के फैलाव क्षेत्र तक सीमित रहता है। इस क्षेत्र में स्थित भूजल से वनस्पति जल ग्रहण करती है। इसकी गहराई वनस्पति के प्रकार पर निर्भर रहती है। भू–जल मृदा कणों के आसपास पतली झिल्ली के रूप में पाया जाता है जिसे हाइग्रोस्कोपिक जल (hygroscopic water) कहा जाता है।

(ब) मध्य वाडोस क्षेत्र (Intermediate vadose zone): यह क्षेत्र मृदा जल क्षेत्र के ठीक नीचे से शुरू होता है। यहां पर भू–जल मोटे मृदा कणों तथा शैलीय कणों के आसपास एक अंगूठी (ring) का स्वरूप बनाकर चिपके हुए पाए जाते है। इस प्रकार की स्थिति पृष्ठ–तनाव (surface tension) के कारण संभव हो पाती है। इसे पेलिक्यूलर जल (pellicular water)

कहते है। इसकी मोटाई कुछ मीटर से लेकर 100 मी तक होती है। इस क्षेत्र में भू–जल शैलीय कणों से बंधा हुआ रहता है।

(स) कैपेलरी क्षेत्र (Capillary Zone): यह ऐरेशन क्षेत्र का सबसे निचला क्षेत्र है। यहां पर भूजल कैपेलरी ट्यूब के रूप में पाया जाता है। पृष्ठ–तनाव के कारण भू–जल गुरूत्वाकर्षण से विपरीत नीचे से ऊपर की ओर अग्रेषित रहता है। इस जोन के ठीक नीचे संतृप्ति क्षेत्र है जिसकी वजह से इस क्षेत्र में जल की आपूर्ति बनी रहती है।

(2) संतृप्ति का क्षेत्र – यह ऐसा भूगर्भीय क्षेत्र है जहां पर भू–जल समस्त खाली स्थानों को पूर्ण रूप से संतृप्त कर देता है। इस क्षेत्र और ऐरेशन क्षेत्र की सीमा को जल स्तर (water table) भी कहा जाता है। किसी भी शैलीय संरचना में कितना जल समाहित हो सकता है उसे उपलब्ध जल (available water) कहा जाता है। यह उस शैल की भू–जल क्षमता (water capacity) को भी दर्शाता है। किसी भी शिला में कितना जल संचित रह सकता है उसे ''स्पेसेफिक रिटेंशन'' (specific retention S_R) कहा जाता है।

$$S_R = W_R/V$$

जहां पर W_R = संचित जल का आयतन और

V = शैल का आयतन

इसी प्रकार से शिला के जल प्रदान करने की क्षमता को ''स्पेसेफिक यिल्ड'' (specific yield S_Y) कहा जाता है।

$$S_Y = W_Y/V$$

जहां पर W_Y = परिवहन जल का आयतन (volume of water drained) और

V = शैल का आयतन

शैलों के भूजलीय गुण

शैलों के भूजलीय गुणों को शैलों के दृढ़ीकरण (consolidation) के आधार पर अध्ययन किया जाता है। प्रायः अच्छे जलभृत अदृढ़ीकृत शैलों, जैसे की जलोढ निक्षेपों (alluvial deposits) में मिलते है। दृढ़ीकृत शैलों (consolidated rocks) की श्रेणी में बालुकाश्म (sandstone), चूना पत्थर (limestone) व ज्वालमुखी शैलों (volcanic rocks) को अच्छा जलभृत माना गया है।

(अ) जलोढ निक्षेप – जलोढ निक्षेप में ग्रेवल व रेत के जलभृत होते है। ऐसे जलोढ निक्षेप, जो कि मुख्य जल धारा के नीचे पाए जाते है, उनमें भूजल प्रचुर मात्रा में मिलता है। रिक्त जलोढ निक्षेप (abandoned alluvial deposits) उन जलधारा क्षेत्रों में मिलते हैं जहां पर सतही तौर पर जलधारा लुप्त है, परन्तु भीतर प्रचुर भूजल उपलब्ध है। समतल भूमि (plains) के जलोढ निक्षेप ग्रेवल व रेत के संस्तरों से निर्मित होते है जिनमें भूजल की प्राप्ति सीमित होती है। पर्वतों के मध्य की खाईयों (intermontane valleys) में अलग–अलग छोटे द्रोणी (basin) का निर्माण होता है और इनमें भूजल प्रचुर होता है परन्तु लगातार परिवहन होने से भूजल की उपलब्धता में कमी बनी रहती है।

(ब) बालुकाश्म (sandstone) **एंव संगुटिकाश्म** (conglomerate) – इन दोनों प्रकार की अवसादी शैलों में छिद्रों की संख्या अच्छी रहती है परन्तु इनके कणों को आपस में जोड़ने वाला सीमेन्ट कण छिद्रों को कम कर देता है। बालुकाश्म में पाए जाने वाले संधि (Joints) अच्छे जलभृत के कारक है।

(स) चूना पत्थर (Limestone) – लाइमस्टोन में बनावट के आधार पर जलभृत का आकलन किया जाता हैं। चूना पत्थर में दृढ़ीकरण के आधार पर घनत्व, छिद्रों की संरचना व प्रवेश्यता अच्छे जलभृत होने का निर्धारण करती है। चूना पत्थर घुलनशील होता है इसलिए इनमे आतंरिक रूप से गुफाएं व भूजल के विशाल भंडार पाए जाते है। बड़े झरने प्रायः चूनापत्थर में पाए जाते है। चूना पत्थर के अंदर पाए जाने वाले भूजल में प्रायः कैल्शियम की अधिकता पाई जाती है।

(द) ज्वालामुखी शैल– इस प्रकार की शैलों में प्रवेश्यता (permeability) अधिक पायी जाती है। सतही स्तर पर इन चट्टानों में लेंस या आंख के आकार के खाली स्थान (cavities) युक्त संरचनाएं होती है जो कि जल संग्रहण में सहायक होती है। प्रायः यह सरंचनाएं भीतर से आपस में जुड़ी हुई रहती है जिसकी वजह से पानी का बहाव आन्तरिक रूप से व्यापक क्षेत्र मे फैला रहता है। लावा टयूब (नली), क्रेक, फिशर, वेसिकल्स, भ्रंश आदि संरचनाएं इन चट्टानों में प्रायः पायी जाती है जो कि भूजल भंडारण व परिवहन दोनों में सहायक होती है।

(इ) आग्नेय व कायन्त्रित चट्टाने– यह दोनों चट्टानें अच्छे जलभृत की श्रेणी में नहीं आती हैं। इनकी बनावट अत्यधिक दृढ़ीकृत होती है। इसलिए इनमें छिद्रों की मात्रा काफी कम होती है। सैकण्डरी संरचनाओं की वजह से इनमें पाए जाने वाले संरचनात्मक परिवर्तन के कारण इनमें भूजल की मात्रा सीमित रहती है। ऐसी संरचनाएं प्रायः घरेलू उपयोग के भूजल उपलब्धता तक सीमित है।

(ई) पंकाश्म (mudstone) **व गाद प्रस्तर** (siltstone/ claystone) – इन दोनों अवसादी चट्टानों में छिद्रों की मात्रा तो अधिक रहती है पर अच्छी तरह से दृढ़ीकृत रहने के कारण इनमें अप्रवेश्यता सर्वाधिक रहती है जिसकी वजह से भूजल की उपलब्धता घरेलू उपयोग तक सीमित मानी गयी है। इनमें जो कुएं खोदे जाते है वे प्रायः कम गहराई और चौड़े व्यास वाले होते है। अगर गाद प्रस्तर और संगुटिकाश्म साथ–साथ मिलते है तो भूजल की उपलब्धता बढ़ जाती है।

भू–अभियांत्रिकी (Engineering Geology)

परिभाषा एवं महत्व

अभियांत्रिकी (Engineering) के क्षेत्र में भू–विज्ञान के विभिन्न प्रकार के योगदानों के वैज्ञानिकी अध्ययन को भू–अभियांत्रिकी कहा जाता है। भू–विज्ञान व अभियांत्रिकी का गहरा संबंध है तथा इसकी उपादेयता एक दूसरे पर निर्भर है। भू–विज्ञान के ज्ञान से खनिजों, शैलों के उपयोग तथा मात्रा का पता चलता है जिसका व्यावहारिक उपयोग अभियांत्रिक की विभिन्न शाखाओं में किया जाता है। बांध, सड़क, पुल, रेल्वे लाइन, सुरंग, मकान, व अन्य सिविल अभियांत्रिकी के क्षेत्रों में भू–विज्ञान आधारित जानकारी अत्यधिक महत्वपूर्ण मानी गयी है। भवन निर्माण में चट्टानों का उपयोग, उनकी भार ढोने की क्षमता व ताकत पर निर्भर रहता है। चट्टानों का आभियांत्रिकी परियोजना में उपयोग छिद्रों की संख्या, घनत्व, अपघर्षण, प्रतिबल आदि के आधार पर का निर्धारित किया जाता है। नगर नियोजन (town planning) में भी भू–विज्ञान का अहम योगदान होता है। बहुमंजिला इमारतों के निर्माण में पृथ्वी के भूकम्पीय क्षेत्रों की जानकारी का होना महत्वपूर्ण माना जाता है। पृथ्वी की आंतरिक संरचनाओं का भू–भौतिकीय अध्ययन पृथ्वी के सतह पर होने वाले निर्माणों के बारे में प्रांरभिक जानकारी प्रदान करता है।

अभियांत्रिकी परियोजनाओं में भू–वैज्ञानिक का महत्व

भू–वैज्ञानिक भू–विज्ञान के अध्ययन से विभिन्न प्रकार के अभियांत्रिकी कार्यों में अहम् भूमिका निभाता है। भू–विज्ञान की जानकारियां निम्न अभियांत्रिकी के क्षेत्रों में काम आती है–

(अ) भवन निर्माण – इमारती पत्थर विशेष भौतिक गुणों के आधार पर भवन निर्माण के काम में लिया जाता है। इमारती पत्थर को उपयोग में लेने से पूर्व उसे विशेष आकार में काटा (dress) जाता है जिससे कि निश्चित आकार की पट्टियों (slab) का कम से कम नुकसान कर अधिकतम उपयोग लिया जा सकें। मजबूत, कठोर, तथा संस्तरित अवसादी चट्टानों का भवन–निर्माण में विशेष रूप से प्रयोग में लिया जाता है। कायान्त्रित तथा आग्नेय शैलों को तोड़ना कठिन होता है जिसके लिए नवीन तकनीकों का उपयोग किया जाता है जो महंगा होता है। इमारती पत्थरों का चुनाव कठोरता, मजबूती, स्थिरता, सुन्दरता, तथा मूल्य को ध्यान में रख कर करना चाहिए। शैलों को आपस में मजबूती से जोड़ने के लिए सीमेन्ट का उपयोग किया जाता है। सीमेन्ट का निर्माण भी चूना पत्थर से होता है। चट्टानें प्रायः संरन्ध्रता युक्त होती है इसलिए सीमेन्ट का उपयोग अत्यावश्यक होता है। भारत में कुछ स्थानों का इमारती पत्थर विशेष रूप से प्रसिद्व है। राजस्थान के सेंडस्टोन, लाइमस्टोन तथा मार्बल, दक्षिण भारत के ग्रेनाइट, चारनोकाइट, नीज़, आदि तथा मध्य भारत के चूना पत्थर सर्वाधिक रूप से इमारत निर्माण के क्षेत्र में विश्व प्रसिद्व है। ताजमहल, विक्टोरिया मेमोरियल, गेट वे ऑफ इंडिया, इंडिया गेट, लाल किला, संसद भवन आदि इमारतों में इनका बखूबी उपयोग किया गया है। वर्तमान में अनेक शहरों में बन रही खूबसूरत बहुमंजिला इमारतों में भी इनका उपयोग किया जा रहा है।

(ब) सड़क निर्माण – सड़क निर्माण में चट्टानों को बारिक तोड़कर छोटे आकार की गिट्टी का उपयोग प्रायः हर जगह किया जाता है। इसके लिए एक पलवेराइजर (pulverizer) मशीन का उपयोग किया जाता है जो पत्थरों को अलग–अलग आकार के टुकड़ों में विभाजित कर देती है। सड़क निर्माण में बेसाल्ट, डोलोमाइट आदि चट्टानों का उपयोग किया जाता है। सड़क निर्माण में पत्थर का चुनाव निम्न गुणों के आधार पर किया जाता है–

(अ) कम अपरदन

(ब) अधिक कठोरता व मजबूती

(स) अधिक सीमेन्टिग गुण।

सड़कों की भुजाएं बनाने में लाल रंग की मिट्टी तथा मृणमय पदार्थ प्रयोग में लाये जाते है, परन्तु यह जल्दी ही अपरदित हो जाते है। बालू को अकेले प्रयोग में लेना ठीक नहीं है क्योंकि इसमें संयोजन के गुण नहीं होते है।

(स) पहाड़ी ढाल तथा कटाव– पहाड़ी क्षेत्रों में ढाल के कारण से कटाव प्रायः देखे जाते है। तीव्र ढाल पर प्रायः भूस्खलन देखा जा सकता है। इनको रोकने के लिए भी भू–विज्ञान के ज्ञान को व्यावहारिक रूप से उपयोग में लिया जाता है। भू–स्खलन का प्रमुख कारण गुरूत्वाकर्षण बल है जो संचरण (flowage), फिसलन (sliding) तथा धंसने (subsidence) के रूप में दिखाई देता है (चित्र 9.3 अ,ब,स)।

वर्षा ऋतु में भूस्खलन ज्यादा दिखाई देता है जिसको उचित लेप लगाकर रोका जा सकता है। कभी–कभी अचानक भारी मात्रा में पत्थर गिरकर बिखर जाते है और सर्वाधिक नुकसान पहुंचाते है। गिरे हुए भार को साफ कर शेष पहाड़ी ढाल को बेंच–नुमा आकृति में काटकर निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है–

(1) ढाल तथा कटाव पर चट्टानों की अवस्था।

(2) क्षेत्रीय भौमिकी अवस्था।

(3) भौमिकी जल–तल की अवस्था।

प्रायः भूस्खलन के साथ–साथ नई दरारें तथा संधियों का उद्गम होता है। जिन्हें ग्राउटिंग (grouting) तथा अन्य विधियों द्वारा भरकर स्थायी बनाया जाता है। नवीन दीवार का निर्माण छोटे–छोटे पत्थरों को लोहे की जाली से बांधकर किया जा

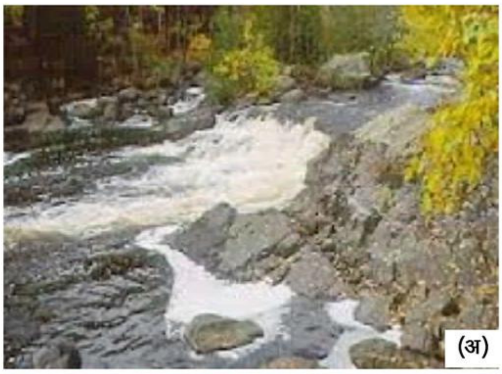

चित्र 9.3 (अ) संचरण (flowage), **(ब) फिसलन** (sliding), **(स) धंसने** (subsidence)

सकता है। ढाल को कम करके भी कटाव की गति को कम किया जा सकता है। चूना पत्थर से युक्त चट्टानों में निरन्तर घुलनशीलता बनी रहती है इसलिए इनमें कटाव की संभावना हमेशा बनी रहती है। इन चट्टानों में पानी का उचित निकास मार्ग बनाया जाता है। संस्तरित चट्टानों में संस्तर के समान्तर ही मजबूत सतह का निर्माण किया जाता है। नति की दिशा में ढाल का निर्माण कर भूस्खलन को कम किया सकता है। कुछ अवस्थाओं में उन्नत कोण पर ढाल बनाए जाते है।

(द) पुल निर्माण– पुल निर्माण का कार्य सड़क तथा रेलवे–ट्रेक निर्माण (पटरी बिछाने) में किया जाता है। इस हेतु निम्न अवस्थाएं उपयुक्त मानी गयी है–

(1) नदी के तल में कठोर चट्टानों का होना आवश्यक है।

(2) नदी के दोनों पाटों को मजबूत होना चाहिए ताकि कटाव कम हो।

(3) नदी के पास के ढाल क्षेत्रों की चट्टानों से पुल के स्तम्भों को खतरा कम से कम हो।

(4) पुल के स्तम्भ तथा नींव मजबूत हो।

(5) पुल धाराओं की लहरों से होने वाले कटाव को झेलने में सक्षम होना चाहिए।

पुल बनाने से पूर्व स्तम्भ खड़े करने के स्थान पर से मुलायम मिट्टी व धाराओं द्धारा बहाकर लाये गये कंकड पत्थर पूर्ण रूप से साफ कर हटा देने चाहिए। तल की चट्टानों की दरारों को सीमेन्ट व ग्राउटिंग द्वारा पुनः मजबूत किया जाना चाहिए। पुल के नीचे की चट्टानों का आकार, आकृति, संरचना, मजबूती व प्रकार का सम्पूर्ण अध्ययन होना चाहिए। चट्टानों के संस्तरों की गहराई व पारस्परिक मोटाई से पुल के खम्भों की मोटाई का निर्धारण किया जाना चाहिए। पुलों को जलरोधी बनाने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि पानी के बहाव से उन्हें खतरा नहीं होता। अवसादी शैलों में बालूकाश्म, ग्रिट, संगुटिकाश्म, संकोणाश्म आदि को पुल के लिए उपयुक्त माना गया है। मृण–शैलों को भी अधिक उपयोगी नहीं माना गया हैं। पुल बनाने में नवीन भ्रंशों का विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए और इन्हें मजबूती से पाटना चाहिए। पुल को प्रायः नदी के उद्गम के पास नहीं बनाना चाहिए क्योकि वहां पर अधिक धारा प्रवाह के कारण पुल टूटने की संभावना अधिक रहती है।

(इ) सुरंग (Tunnel) – सुरंग धरातल के नीचे बनाया गया मार्ग है जिसमें ऊपर की चट्टानों एवं मृदा में किसी प्रकार का बदलाव नहीं होता है। सुरंग बनाने के कई उद्देश्य होते है जिनमें प्रमुख सड़क मार्ग, रेलवे–ट्रेक का मार्ग, जल–परिवहन का मार्ग आदि है। सुरंगें शैलों की कठोरता, आकार तथा संरचना पर निर्भर करती है। स्थूल शैलों में सुरंगों का निर्माण सुरक्षित परन्तु कठिन होता है। सूखी चट्टानों को तोड़ना आसान है परन्तु जहां पानी का रिसाव होता है उन स्थानों पर सुरंग निर्माण कठिन होता है। इसलिए सुरंग बनाने के लिए भू–जल स्तर की विस्तृत जानकारी का अध्ययन आवश्यक है।

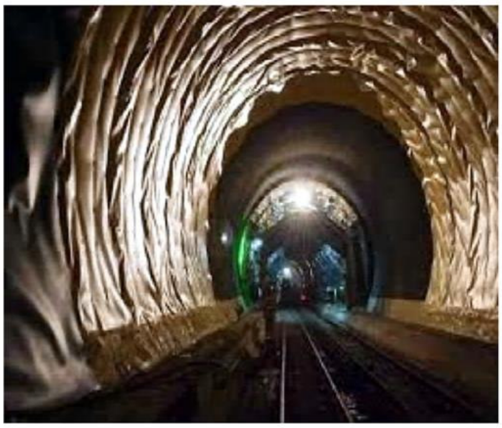

चित्र 9.4 चौरस व गोलाकार सुरंगें

सुंरग निर्माण में निम्न भूगर्भीय जांचे करना आवश्यक है।

(1) सुरंग के रास्ते का चुनाव व दिशा– सुरंग हमेशा दो बिन्दुओं (स्थानों) के मध्य बनाई जाती है। इसलिए दोनों बिन्दुओं के मध्य की चट्टानों की समस्त जानकारी प्राप्त कर सही रास्ते का चुनाव व दिशा तय की जाती है।

(2) सुरंग खोदने का तरीका– सुरंग खोदने में काफी समय लगता है और व्यय आता है इसलिए सबसे आसान व सुरक्षित तरीके को अपनाने का प्रयास करना चाहिए। सुरंग के मार्ग में आने वाली भिम्न प्रकार की चट्टानों और उनकी सरंचना के आधार पर खुदाई में तदनुसार परिवर्तन करना चाहिए।

(3) सुरंग की रूपरेखा– सुरंग की रूपरेखा में सुरंग की लंबाई व आकार का पूर्ण निर्धारण किया जाना आवश्यक होता है। सुरंग गोलाकार, डी–आकार, आयताकार और घोड़े के तलवे के आकार की हो सकती है (चित्र 9.4)।

(4) सुरंग की स्थिरता व व्यय का अनुमान– सुरंग का स्थिर होना अतिआवश्यक है। बिना किसी सहायता के सुरंग चारों ओर से सुरक्षित रहनी चाहिए। सुरंग के निर्माण में होने वाला व्यय इस बात पर निर्भर करेगा कि उसमे किस प्रकार से क्या–क्या परिवर्तन किए गए है।

(5) पर्यावरण में खतरे – सुरंग निर्माण से उस स्थल के पर्यावरण में परिवर्तन आने की संभावना बन जाती है। यह परिवर्तन सीमा से अधिक नहीं होने चाहिए। विशेष रूप से सुरंग बनने के बाद पानी के प्राकृतिक बहाव में बदलाव न हो इसका पूरा प्रयास रहना चाहिए।

भू–वैज्ञानिक को सुरंग के समय उपर्युक्त समस्त बिन्दुओं का बारीकी से वैज्ञानिक अध्ययन करना चाहिए। विशेष रूप से उन चट्टानों का अध्ययन करना चाहिए जिनमें संरचनात्मक बदलाव की संभावना अधिक रहती है। सुरंग की छतों व दीवारों की सन्धि, रन्ध्र, विदर आदि से पानी रिसना आम समस्या है इसलिए शैलों की पारगम्यता और भूजल तल की अवस्था के आधार पर निर्माण किया जाता है। इन समस्याओं का एक हल ग्राउटिंग भी हैं।

(ई) बांध तथा जलाशय – बांध एक प्रकार का ठोस अवरोध है जिसका निर्माण नदी घाटी क्षेत्र में पानी के बहाव को रोकने के लिए किया जाता है। रोके गए पानी के इकठ्ठा होने पर जलाशय का निर्माण होता है (चित्र 9.5)। इस जलाशय के जल को विभिन्न कार्यों में उपयोग में लिया जाता है। जलाशय में जल के भराव से आसपास के क्षेत्र का जलस्तर भी बढ़ जाता है।

चित्र 9.5 अर्धगोलाकार बांध व जलाशय

बांधों तथा जलाशयों के निर्माण में निम्न बिन्दुओं का ध्यान रखा जाना महत्वपूर्ण है–

(1) बांध की नींव मजबूत व उचित तरीके से ठोसीकृत की जानी चाहिए।

(2) जलाशय मे सिल्ट (silt) की मात्रा को सीमित किया जाना चाहिए।

(3) अतिरिक्त जल के निकासी की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

(4) एक पतली नवधारा होनी चाहिए जिसे बांधा जा सके।

(5) संरचना के लिए आवश्यक सामग्री की निकट में उपलब्धता होनी चाहिए।

कोई भी जलाशय पूर्ण रूप से जलरोधी नहीं बनाया जा सकता। भू–वैज्ञानिक यह भी ध्यान रखता है कि बांध की नींव की शिलाओं तथा दिवारों में से रिसाव कम से कम होने चाहिए। निस्पंदन की मात्रा के अनुसार जलाशय से जल की मात्रा निकल जाती है।

निम्न भू–वैज्ञानिकी पहलुओं का विशेष ध्यानपूर्वक अध्ययन कर बांध तथा जलाशय का निर्माण करना चाहिए–

(1) बांध बनने पर एकत्रित होने वाली जलराशि का तल की चट्टानों पर जो दबाव बनेगा उसका सही आकलन करना।

(2) बांध के निर्माण में काम आने वाली समस्त सामग्री की गुणवत्ता की जांच निरन्तर संपादित करना।

(3) बांध से होने वाली पानी की निकासी की मात्रा का ऋतु अनुसार पूर्वानुमान करना।

(4) निकासी से होने वाले प्रभावों का आकलन।

(5) बांध के निर्माण में परिस्थिति व क्षेत्र के गुणों को प्राथमिकता देना। उदाहरण के लिए बांध स्थल की स्थलाकृति (topography) का अध्ययन कर बांध के प्रकार का निर्धारण करना।

(6) चट्टानों की परागम्यता, छिद्रों की मात्रा, प्रवेश्यता, घनत्व, प्रकार आदि भू–वैज्ञानिक पहलुओं का अध्ययन।

(7) भूकम्प के प्रकार, आवृति व संभावित नुकसान का पूर्वानुमान कर भूकम्प–रोधी निर्माण बनाना।

भू–अभियांत्रिकी परियोजना में स्थल सुधार

भू–अभियांत्रिकी परियोजनाओं में भू–वैज्ञानिक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य होता है परियोजना स्थल को भू–वैज्ञानिकी की दृष्टि से तैयार कर सुधार करना। इनके लिए निम्न प्रकार के कार्य प्रायः संपादित किए जाते है।

(1) ग्राउटिंग (Grouting) **-** ग्राउटिंग का कार्य अधिक दाब पर सीमेन्ट युक्त पदार्थ को चट्टानों की दरारों में प्रवेश करवाने का होता है (चित्र 9.6)। इसके लिए भू–वैज्ञानिक को परियोजना स्थल की चट्टानों का संरचनात्मक अध्ययन शुरूआत में ही कर लेना चाहिए।

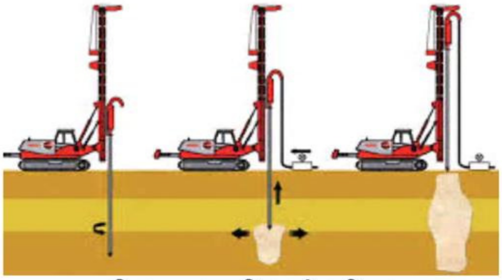

चित्र 9.6 ग्राउटिंग की प्रकिया

(2) बोल्टिंग (Bolting) **-** इस प्रकिया में फ्रेक्चर युक्त (अर्थात भीतर से टूटी हुई) चट्टानों को जोड़ने का कार्य बड़े आकार के स्टील के बोल्ट द्वारा किया जाता है (चित्र 9.7)। यह ठीक उसी प्रकार की प्रकिया है जिसमें की इन्सान की टूटी हुई हड्डी को चिकित्सक बोल्ट द्वारा जोड़ता है।

चित्र 9.7 सुंरग व सड़क निर्माण में बोल्टिंग द्वारा दीवार का स्थिरीकरण

(3) मृदा–स्थिरिकरण– मृदा–स्थिरीकरण में मृदा की भार उठाने की क्षमता का विकास किया जाता हैं। इस हेतु मृदा का भू–वैज्ञानिक अध्ययन कर उसमें उचित मात्रा में सीमेन्ट मिलाकर (cement stabilization) यां एसफाल्ट (asphalt) मिलाकर (bituminous stabilization) किया जाता है।

दूर संवेदी (Remote Sensing)

परिभाषा

दूर संवेदन (remote sensing) एक प्रकार का वैज्ञानिकी अध्ययन है जिसके अन्तर्गत किसी वस्तु, क्षेत्रफल या घटनाक्रम की जानकारी वस्तु, क्षेत्रफल या घटनाक्रम से संपर्क में आए बगैर आंकड़े और तथ्य के रूप में एकत्रित की जाती है। इस प्रकार के वैज्ञानिक अध्ययन में उपग्रह (satellite) उपयोग किया जाता है। उपग्रह में विशेष प्रकार के बोधक (sensor) लगे रहते है जो भिन्न–भिन्न प्रकार की जानकारी अलग–अलग तरीके से एकत्र करते है। उपग्रह पृथ्वी के वायुमंडल की ऊपरी सतह या फिर अतंरिक्ष में स्थित किए जाते है जहां पर जानकारी विद्युतचुम्बकीय (electromagnetic) तरंगों के रूप में पहुंचती है। उपग्रह में स्थित बोधक इन किरणों को पृथ्वी पर परावर्तित करते है जिन्हें उचित माध्यमों द्वारा कम्प्यूटर की सहायता से आकलन कर अध्ययन किया जाता है (चित्र 9.8)। उपग्रह के अतिरिक्त वायुयान से भी अधिक ऊंचाई से एरियल फोटोग्राफ खींच कर डाटा एकत्रित किया जाता है।

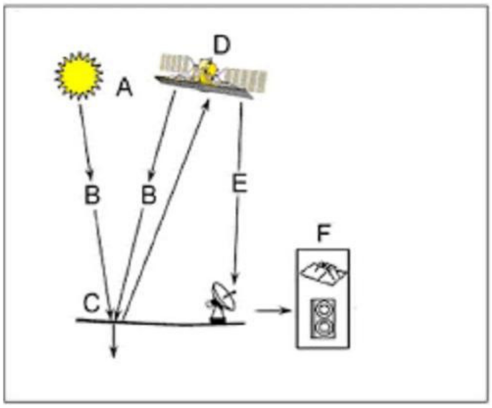

चित्र 9.8 दूर संवेदन प्रक्रिया

दूर संवेदन का उपयोग भू–विज्ञान में खनिज क्षेत्रों की पहचान बनाने में किया जाता है। शैलों का क्षेत्रीय अध्ययन उपग्रह से ली गयी तस्वीरों व चित्रों के आधार पर किया जाता है। भू–जल की क्षेत्रीय जल निकासी व्यवस्था (drainage pattern) का अध्ययन भी एरियल फोटोग्राफ की सहायता से किया जा सकता है।

एरियल फोटोग्राफ व इमेजरी

(अ) परिभाषा– एरियल फोटोग्राफ या वायव फोटोग्राफ हवाई जहाज से उड़ते वक्त लिया जाता है। इस प्रकार के फोटोग्राफ में व्यय अधिक होता है। इसमें हवाई यात्रा का पूर्व–नियोजन किया जाता है। एरियल फोटोग्राफ को एरियल कैमरे की सहायता से अनन्त पर फोकस कर चित्र लिया जाता है (चित्र 9.9)। इस कैमरे में लैन्स का विभेदन (resolution) अत्यधिक तथा विरूपण (distortion) कम से कम होना चाहिए। लैन्स अंशशोधित (calibrated) होना चाहिए। कम्पन (vibration) न्यूनतम होने चाहिए। आधुनिक आंशिक कैमरे का शटर न्यूनतम अवधि 1/300 या 1/1000 या अधिक सेकण्ड तक खुलकर बन्द हो जाता है।

चित्र 9.9 भू संरचनाओं को दर्शाता एरियल फोटोग्राफ

इस प्रकार के कैमरे का तुलनात्मक द्वारक (Aperture) कुछ बड़ा होता है। एरियल फोटोग्राफी में उड्डयन नियोजन एक आवश्यक कार्य योजना होती है जिसमें सतत् फोटोग्राफी (अतिव्याप्ति) प्राप्त की जा सकती है। एरियल फोटोग्राफ में एक केन्द्रीय संदर्श (central perspective) होता है जबकि मानचित्र में एक समान्तर उर्ध्व दिशा (orthogonal projection) चित्र होता है। एरियल फोटोग्राफ का अध्ययन करने के लिए स्टिरियोस्कोप (stereoscope) का उपयोग किया जाता हैं।

इमेजरी उपग्रह द्वारा लिया गया चित्र है जिसमें भिन्न तरंगों के परास (band) को तरंग दैर्ध्य (wavelength) के आधार पर निर्मित किया जाता है। तरंगों के विधुतचुबंकीय स्पेकट्रम का अध्ययन व आकलन कर इमेजरी को FCC (False Coloured Composition) या अन्य प्रारूपों में तैयार किया जाता हैं।

(ब) महत्व – एरियल फोटोग्राफी व इमेजरी का महत्व भू–विज्ञान के क्षेत्र में कई प्रकार से किया जाने लगा है जिसकी वजह से भू–वैज्ञानिकों का महत्व बढ़ जाता है।

(1) चट्टानों में विभेदन का कार्य– कई चट्टानें

खनिज संगठन के आधार पर भिन्न प्रकार से किरणों को परावर्तित करती है। परावर्तन में भिन्नता का कारण खनिजों की क्रिस्टल रचना, कठोरता, बाइरेफरिनजेन्स, विभंग, विदलन आदि होता है। इनके अतिरिक्त चट्टानों का रसायनिक संगठन व खनिजों के प्रकार भी किरणों को भिन्न तरिकों से परावर्तित करने का कार्य करते है। दूर संवेदन में थीमेटीक मानचित्रक (Thematic Mapper TM) उपग्रह की सहायता से आग्नेय, अवसादी व कायान्त्रित चट्टानों में विभेदन कर मानचित्रों को तैयार किया जाता है।

(2) नदी–नालों व भू–आकृतियों का अध्ययन – एरियल फोटोग्राफ की सहायता से किसी भी स्थल की भू–आकृति का अध्ययन कर नदियों व नालों के बहाव दिशा क्षेत्रों का आकलन किया जा सकता है। पहाड़ों, घाटियों, वन क्षेत्रों, वनस्पति व मृदा के अध्ययन का कार्य व सीमांकन भी एरियल फोटोग्राफ की सहायता से त्वरित गति व अधिक कौशल से किया जा सकता है। वर्षा ऋतु में अतिवृष्टि, अल्पवृष्टि व अल्पतृप्ति क्षेत्रों को चिन्हित करने में एरियल फोटोग्राफ का उपयोग किया जाता है।

(3) प्रवेश्य व अप्रवेश्य शिलाओं में विभेदन– दूर संवेदन द्वारा प्रवेश्य व अप्रवेश्य शिलाओं में विभेदन का कार्य किया जा सकता है। ऐसे दूर–संवेदी चित्रों को प्रयोगशालाओं में प्रक्रम (process) किया जाता है। इस प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार के फिल्टर (परदों) का उपयोग किया जाता है ताकि चट्टानों में विभेदन घनत्व, कठोरता तथा छिद्रों की संख्या के आधार पर किया जा सके। TM 1+5/1-5 मानचित्रक में सोबेल 7 (SOBEL 7) फिल्टर का उपयोग कर प्रवेश्यता और अप्रवेश्यता में अंतर स्थापित किया जा सकता है।

(4) अपरदन (erosion) सूचक को ज्ञात करना– भूमि के अपरदन में चट्टानों के प्रकार मुख्य ज्ञातक रहते है। उपग्रह से प्राप्त डाटा और तथ्य (आंकड़े) उचित फिल्टर के उपयोग से चट्टानों का गठन (texture) ज्ञात किया जा सकता है। इस तथ्य के आधार पर मोटे व बारीक कणों वाली चट्टानों में विभेदन किया जा सकता है। मोटे कणों वाली चट्टानें अपरदन से ज्यादा प्रभावित होती है तथा इसके विपरीत बारीक कणों वाली चट्टानें अपरदन से कम प्रभावित होती है।

(5) भौमिकीय संरचना मानचित्रण– दूर संवेदन से क्षेत्रीय स्तर पर स्थलाकृति निर्माण में भौमिकीय मानचित्रण का कार्य किया जा सकता है। क्षेत्रीय स्तर पर पहाड़ों का निर्माण वलनाकार हो सकता है। ऐसी संरचनाओं को आसानी से एरियल फोटोग्राफी की सहायता से अध्ययन किया जा सकता है। वलनकृत संरचनाएं रेखीय या घुमावदार हो सकती है जो अपनति व अभिनति के रूप में स्पष्ट रूप से पहचानी जा सकती है। गुम्बद तथा द्रोणी संरचनाओं को दूर संवेदन द्वारा विभेदित किया जा सकता है।

दूर–संवेदी चित्रों के माध्यम से क्षेत्रीय स्तर की रेखीय संरचनाओं को मानचित्रित किया जाता है। इस तरह के चित्रण से भूकम्पीय क्षेत्रों को चिन्हित करने का कार्य भी किया जा सकता है। नदी के बहाव क्षेत्रों में समय–समय पर होने वाले परिवर्तनों को भी दूर–संवेदन से अध्ययन कर चिन्हित किया जा सकता है। हिमनदों के स्थान परिवर्तन को विभिन्न ऋतुओं में दूर–संवेदन द्वारा अध्ययन किया जाता है। समुद्रीय किनारों (coastal areas) पर लहरों द्वारा किया गया अपरदन कार्य भी चित्रण कर मानचित्रित किया जा सकता है।

(6) भू–जल के स्त्रोतों का अध्ययन– दूर–संवेदन की प्रक्रिया से नए भू–जल स्रोतों का पता लगाया जा सकता है। ऐसे क्षेत्र जो बर्फीली परत से ढके होते है उनके अन्दर मीठे पानी के स्रोतों की जानकारी दूर–संवेदी किरणों से प्राप्त की जा सकती हैं। उपग्रह से प्राप्त चित्रों द्वारा जलीय क्षेत्रों का आकार, आकृति, ढंग, विस्तार व फैलाव को ज्ञात किया जा सकता है। इस प्रकार के अध्ययन के लिए विद्युतचुम्बकीय स्पेकट्रम का इन्फ्रारेड (Infrared- IR) बोधक काम में लाया जाता है।

भू–जल की मात्रा व गुणवत्ता का अध्ययन भी दूर–संवेदन की प्रक्रिया से किया जाता है। पानी में पायी जाने वाली अशुद्धता आसानी से पहचानी जा सकती है। इसके लिए दृश्य–बैंड (visible band) की किरणें सहायता करती है। भूगर्भीय जल तथा मृदा व वनस्पति के प्रकारों का अध्ययन साथ–साथ किया जा सकता है क्योंकि यह सभी आपस में जुड़े रहते है। वनस्पति के प्रकार मृदा के प्रकार पर निर्भर करते है और मृदा का निर्माण चट्टान पर निर्भर करता है। वन क्षेत्रों के प्रकार, फैलाव व विस्तार का आकलन भी दूर–संवेदन द्वारा किया जा सकता है। कृषि के क्षेत्र में भी व्यापक रूप से दूर–संवेदन का उपयोग किया जाता है। फसलों की पैदावार का आकलन, फसलों पर मौसम व कीटों की खराबी का आकलन आदि कार्य भी इस प्रकार के अध्ययन से किये जाते है।

(7) समुद्रीय संसाधनों का आकलन– दूर–संवेदन की प्रक्रिया से भौमिक पर्यावरण का अध्ययन किया जा सकता है। समुद्र की सतह का तापमान, पानी का संगठन, समुद्रीय लहरों की ऊंचाई व क्लोरोफिल की मात्रा आदि का आकलन दूर–संवेदी प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। समुद्र के पानी में जैविक पैदावार के बारे में पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। तेल उत्पादन करने वाले समुद्रीय क्षेत्रों में तेल के रिसाव को भी चिन्हित किया जा सकता है। कई अन्य प्रकार के समुद्रीय प्रदूषणों की पहचान भी दूर–संवेदन द्वारा की जा सकती है।

पर्यावरण भू–विज्ञान (Environmental Geology)

परिभाषा

पर्यावरण भू–विज्ञान, पृथ्वी व पर्यावरण के विभिन्न वैज्ञानिकी पहलुओं का, भू–वैज्ञानिकी अध्ययन है अर्थात् पर्यावरण से संबंधित उन समस्त पहलुओं का अध्ययन जिसमें भौमिकी कारकों को प्रमुख माना गया है। पर्यावरण भू–विज्ञान के अन्तर्गत भू–जल तथा मृदा के उपयोग एवं प्रदूषण का अध्ययन किया जाता है। भूकम्प व ज्वालामुखी जनित पर्यावरणीय नुकसान का आकलन, समुद्रीय तटों के पर्यावरण का अध्ययन और पहाड़ी क्षेत्रों में जमीन के धंसने के बारे में विस्तृत जानकारियों को एकत्रित कर अध्ययन किया जाता है। मनुष्य द्वारा खनिज प्राप्ति हेतु खदानों से जनित पर्यावरणीय क्षति का अध्ययन भी इसी में सम्मिलित है। उपर्युक्त समस्त पहलुओं का भू–विज्ञान से सहसंबंध ज्ञात कर पर्यावरण के अध्ययन को पर्यावरण भू–विज्ञान में रखा गया है।

भू–विज्ञान एवं पर्यावरण

भू–विज्ञान एवं पर्यावरण के सहसंबंध को मानव जनित व प्राकृतिक कारकों में विभाजित किया जा सकता है। मानव–जनित पर्यावरण से संबंधित कारक निम्न है–

(1) खदानों से जनित पर्यावरणीय प्रदूषण

(2) शहरीकरण से प्रभावित पर्यावरणीय प्रदूषण

(3) समुद्रीय क्षेत्रों की पर्यावरणीय क्षति

(4) रेडियोधर्मी (रेडियोएक्टिव) खनिजों, तेल रिसाव व अन्य खनिज जनित रोग।

प्राकृतिक कारक जो प्रदूषण का मुख्य कारण है और भू–विज्ञान से जुड़ें है, वे निम्न है–

(1) ज्वालामुखी से जनित राख व लावा का प्रदूषण

(2) समुद्र की सुनामी लहरों से पर्यावरणीय क्षति

(3) जमीन धंसने से पर्यावरणीय हानि

(4) नदियों में बाढ़ आने से पर्यावरणीय हानि

(5) भूकम्प आने से पर्यावरण में बदलाव

उपर्युक्त समस्त बिन्दुओं का विवरण भू–विज्ञान के संदर्भ में निम्नानुसार है–

(1) मानव जनित पर्यावरणीय क्षति

(अ) खनन कार्यो से होने वाले पर्यावरणीय प्रभावों के आकलन का कार्य भू–वैज्ञानिक का होता है। खनन कार्यो के विकास में शुरू से लेकर खनिज दोहन तक के समस्त कार्यों की योजनाओं को पर्यावरण की दृष्टि से विकसित करने की जिम्मेदारी भी भू–विज्ञान में समाहित है। खान के विकास में पर्यावरणीय पहलू जैसे वृक्षारोपण, बारीक कणों को हवा में फैलने से रोकना, खदानों से निकलने वाले अप्रयुक्त पदार्थों का निश्चित स्थान पर संधारण, खनन के दौरान वाहनों के परिवहन से पर्यावरण को होने वाली क्षति तथा अन्य सभी प्रकार के पर्यावरण को हानि पहुंचाने वाले कारकों के विस्तृत अध्ययन व योजना बनाने के कार्यों का निष्पादन भू–वैज्ञानिकी पर्यावरण के अंतर्गत आता है। खनिज चूंकि प्राकृतिक उत्पाद है इसलिए प्रकृति से दोहन के समय इससे प्राकृतिक संतुलन को जो क्षति होती है उसको पुनःसंतुलित करने की वैज्ञानिक सोच बनाने व कार्यान्वित करने का कार्य भी भू–वैज्ञानिक करता है।

(ब) मौजूदा समय में अविरल शहरीकरण की प्रक्रिया को रोकना मुश्किल होता जा रहा है। इस हेतु जमीन के उपयोग की योजना (land use planning) के कार्य में भी भू–वैज्ञानिक का अहम् किरदार है। भू उपयोग परियोजना में जमीन की आंतरिक संरचना, चट्टानों का प्रकार व ढाल, मृदा के प्रकार, भूमि के भार सहने की क्षमता, शैलों में पानी ग्रहण करने की क्षमता, आदि महत्वपूर्ण है। शहरीकरण में इमारतों, उद्यानों, जलग्रहण क्षेत्रों आदि के विकास को भू–वैज्ञानिक पहलुओं के आधार पर विकसित किया जाना चाहिए। वर्तमान में ''स्मार्ट सीटी'' के विकास पर देशभर में कार्ययोजना चल रही है जिसमें भू–वैज्ञानिक अहम् भूमिका निभाने में लिए सक्षम है। शहरी पर्यावरण में संतुलन बनाए रखने के लिए शहर की जलनिकासी व्यवस्था (drainage pattern), सिवरेज पाइपलाइन को बिछाने के कार्य, बिजली के तारों को जमीनदोज़ करना, गैस पाइपलाइन को बिछाने आदि के कार्यों में जमीन के भीतर की जानकारी महत्वपूर्ण है इसलिए भू–वैज्ञानिकी सोच का होना भी अतिआवश्यक है।

(स) समुद्रीय तटों व समुद्रीय क्षेत्रों में विकास की अपार संभावनाओं को वर्तमान में प्रबलता के साथ विकसित किया जा रहा है। समुद्रीय तटों पर पर्यावरण को हानि न पहुंचे इस हेतु समुद्री तटों की बनावट, समुद्री लहरों (सूनामी) से होने वाले भौतिक व रसायनिक अपरदन आदि ऐसे क्षेत्र है जिनको ध्यान में रखकर बन्दरगाहों का विकास किया जाना चाहिए। बन्दरगाहों के समान्तर सड़कों का निर्माण परिवहन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसके लिए भू–वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित सोच से कार्यों को निष्पादित किया जा सकता है ताकि पर्यावरण को क्षति से बचाया जा सके। समुद्रीय क्षेत्रों में तेल रिसाव, समुद्रीय तल पर खनिज अन्वेषण व दोहन के कार्यो के दौरान इस बात की पर्याप्त संभावना रहती है कि वहां के स्थानीय पर्यावरण में बदलाव हो, इसलिए उस पर्यावरणीय बदलाव में संतुलन बिठाया जा सके इसके लिए भू–वैज्ञानिकी बारीकियों को ध्यान में रखकर योजनागत विकास किया जाता है।

(द) प्रकृति से कई प्रकार के खनिज प्राप्त होते है जिनके साथ कई प्रकार की सावधानियां बरतने की सख्त जरूरत होती है। विशेष रूप से रेडियोधर्मी खनिजों के खनन के दौरान रेडियोधर्मिता

से होने वाली क्षति के कारण भूवैज्ञानिकी सोच से खनन कार्य किया जाना चाहिए। ऐसी खदानों से निकलने वाला अपशिष्ट भी पर्यावरण को हानि पहुंचा सकता है और साथ ही खनन के क्षेत्र में कार्य करने वाले खननकर्मियों की सेहत को नुकसान पहुंचा सकता है। कई ऐसे खनन कार्य है जिनमें काम करने वाले खननकर्मी बीमार हो सकते है। उदाहरण के लिए एस्बेसटोस (asbestoes) खदान में कार्य करने वाले मजदूरों को फेफड़ों की एस्बेसटोसिस (asbestosis) बीमारी हो सकती है। सिलीकोसिस (silicosis) भी एक इसी प्रकार की एक बीमारी है जो कि धूल–भरी खदानों में कार्य करने वाले खननकर्मियों में प्रायः देखी जाती है। खननकर्मियों में इस प्रकार के रोग न हो इसके लिए भू–वैज्ञानिक खनन प्रक्रिया में पर्यावरणीय पहलुओं के बारे में औचित्यपूर्ण तरीके से सुझाव देकर क्षति को कम कर सकते है।

(2) प्राकृतिक असंतुलन से पर्यावरणीय क्षति

(अ) ज्वालामुखी की राख से होने वाले वायुप्रदूषण को नियंत्रित करने का कार्य विषम परिस्थितियों में किया जाता है। राख का तापमान अधिक होता है इसलिए उसको ज़मीन पर ठहरने के पश्चात् पानी के छिड़काव से कम किया जा सकता है। ज्वालामुखी के लावा के बहाव से कई क्षेत्र पूरी तरह से खत्म हो जाते है। इतना प्रयास अवश्य किया जा सकता है कि बहाव की दिशा को बदल कर मानवीय क्षति को कम किया जा सकें। ज्वालामुखी का फटना मनुष्य के हाथ में नहीं है परन्तु उसके आस–पास रहने वाले लोगों को सावधान व सचेत रखकर संभावित पर्यावरणीय क्षति को कम किया जा सकता हैं।

(ब) भूकम्प से व्यापक रूप से पर्यावरणीय हानि व जान–माल की क्षति होती है। भूकम्प के कारकों को रोकना नामुमकिन है परन्तु इसके प्रभावों पर नियंत्रण करना संभव हैं। भूकम्प से होने वाले नुकसान को पुनःस्थापित करने का कार्य भूकम्प के प्रभावों के अनुसार किया जाता है। भूकम्प से पहाड़ी क्षेत्रों में व्यापक भू–स्खलन देखा जाता हैं जिसमें मार्ग अवरूद्ध हो जाते है और नदियों के प्रवाह बंद होने से नवीन झीलों का निर्माण हो जाता है। मार्ग को स्थिर करने के लिए मार्ग की भुजाओं और तल पर दीवार का निर्माण कर स्खलन की गति को कम किया जा सकता है। भू–स्खलन से नदी प्रवाह को पुनःस्थापित करने का कार्य छोटी–छोटी चैनल बनाकर शुरू किया जा सकता है। नवनिर्मित झीलें अस्थिर रहती है जिससे बाढ़ का खतरा बना रहता है, और व्यापक पर्यावरणीय हानि हो सकती है। भूकम्प से पृथ्वी मंडल की संरचनाएं अस्थिर हो जाती है जिससे पर्यावरणीय संतुलन लगातार बिगड़ता रहता है। संरचनाओं को स्थिर बनाने के लिए सीमेन्टींग मेटेरियल का उपयोग किया जाता है। पृथ्वी की भीतर की संरचनाओं और गतिशीलता की जानकारी का अध्ययन भू–वैज्ञानिकों द्वारा किया जाता हैं। क्रियाशील भ्रंशों (active faults) की जानकारी एकत्रित की जा सकती है जिसमें भूकंप क्षेत्रों की पहचान कर पूर्वानुमान से पर्यावरण संतुलन बिठाने के प्रयास किए जा सकते है।

(स) अतिवृष्टि व अल्पवृष्टि से जुड़े पर्यावरणीय क्षति को भू–वैज्ञानिक अध्ययनों द्वारा समझ कर कम किया जा सकता है। अतिवृष्टि कई पर्यावरणीय असंतुलनों के कारण हो सकती है। बाढ़ का कारण अतिवृष्टि, भूकम्प एवं अन्य मानवीय क्रिया–कलाप माने जाते है। बाढ़ के प्रभावों से निपटने के लिए भू–संरचनाओं को समझकर वृक्षारोपण की योजना क्रियान्वित की जानी चाहिए जिससे की भू–स्खलन व मिट्टी के कटाव को कम किया जा सकें। ढाल के कोण को भी सीढ़ीनुमा काट कर बाढ़ के जल की गति को कम किया जा सकता है। ढाल पर चोरस भूमि (terrace) का निर्माण किया जा सकता है। पहाड़ों पर प्रतिकूल–प्रतिरेखीय (cross-contouring) संरचनाओं का निर्माण कर ढाल पर अपरदन को कम किया जा सकता है।

अल्पवृष्टि के कारकों को भी भू–वैज्ञानिक जानकारियों की सहायता से कुशलतापूर्वक समझा जा सकता है। अल्पवृष्टि में प्राकृतिक कारणों के प्रभावों को कम करने में लिए विभिन्न तरीकों से जल संग्रहण की व्यवस्था बनानी होती है। अल्पवृष्टि के कारकों को समझने के लिए भूमि व मृदा का अध्ययन कर वृक्षारोपण की सलाह दी जा सकती हैं। अल्पवृष्टि क्षेत्रों में नहरों का निर्माण कर ग्रीष्म ऋतु में जल की आपूर्ति की जा सकती है। भू–जल के स्तर तथा गुणों का आकलन कर जमीन के भीतर से मीठे जल की प्राप्ति की जा सकती है। इससे लिए दूर–संवेदी प्रक्रिया द्वारा पुराने भूजलीय मार्ग (palaeochannel) का पता लगाया जा सकता है। पृथ्वी की भीतर की संरचनाओं का अध्ययन कर भू–जल पुनःभरण (water recharge) का कार्य किया जा सकता है।

(द) मृदा और भू–जल का प्रदूषण– भौमिकी अध्ययन द्वारा मृदा और भू–जल को शैलकीय सिद्धातों के आधार पर प्रदूषण से बचाया जा सकता हैं। पर्यावरणीय क्षति प्रायः मृदा पर सर्वाधिक प्रभाव डालती है और इसका असर तथा फैलाव व्यापक होता है। मृदा को पानी तथा वायु द्वारा विस्थापित किया जा सकता है इसलिए इसके प्रदूषण के खतरे व्यापक होते है। मृदा के प्रदूषण को संस्तरों से जोड़ के देखा जा सकता है क्योंकि मृदा की जनक शैल होती है। मृदा का जैविकी व रसायनिक तरीकों से इलाज कर प्रदूषण की मात्रा को सीमित किया जा सकता है। मृदा भू–जल का रिसाव नीचे की ओर करती है इसलिए संभावना रहती है कि मृदा का प्रदूषण पानी के साथ घुलकर जमीन के भीतर की ओर चला जाए। भू–जल के बहाव को सीमित करके किसी क्षेत्र विशेष को भू–जल प्रदूषण से मुक्त किया जा सकता है। औद्योगिक अपशिष्ट भू–जल में मिलकर हानि का असर

व्यापक कर सकते है। इस प्रकार से प्रदूषित भू–जल को ग्राउटिंग द्वारा सील करके अस्थाई रूप से नवीन मीठे पानी के स्रोत से पुनःभरण या रिचार्ज किया जा सकता है। औद्योगिक इकाईयों के अपशिष्ट को भू–जल में मिलने से रोकना भी एक तरीका हो सकता है। इस अपशिष्ट को पुनःचक्रित करके दुबारा काम में लिया जा सकता है। चूंकि भू–जल की मात्रा हर क्षेत्र में सीमित होती जा रही हैं इसलिए इसको वर्ष–पर्यन्त संयोजित तरीकों से उपयोग में लेना ही फायदेमंद है।

पर्यावरण के नियंत्रक

निम्न कारकों को पर्यावरण का नियंत्रक माना जाता है–

(1) वायुमंडल संरचना– लगभग 100मी की ऊंचाई तक सभी वायुमण्डलीय गैसें मिश्रण सम (होमोजिनियस) होती है जिसे सममण्डल कहते है। मोटे तौर पर वायु प्रदूषण इसी मण्डल में पाया जाता है। भू–विज्ञान की दृष्टि से खनन, जमीन धंसने व समुद्री लहरों में बदलाव की वजह से सममण्डल में प्रदूषण की संभावना रहती है। सममण्डल में बदलाव को सबसे ज्यादा मानव जाति के लिए हानिकारक माना गया है। वायुमण्डल की ऊपरी परतों में जो परिवर्तन होते हैं उनमें प्रमुख रूप से उद्योगों द्वारा जनित पदार्थो से भिन्न प्रकार के क्षय का आकलन किया गया है। इसलिए वायुमण्डल की प्रत्येक परत में अलग–अलग प्रकार के वायु प्रदूषणों का अध्ययन किया जाता है और इसके विपरीत प्रभावों का ऋतु अनुसार आकलन किया जाता है।

(2) वायुमण्डलीय दाब व ताप– पर्यावरण की गुणवत्ता के प्रमुख नियंत्रक वायुमण्डलीय ताप व दाब को माना गया है। इन दोनों कारकों की वजह से वायुमण्डल का घनत्व, विकिरण, आर्द्रता, मेघाच्छार्द्रता, वर्षा और वायु–गति प्रभावित होते है। वायुमण्डल के दैनिक परिवर्तन इन दोनों कारकों पर ही निर्भर होते हैं। इसलिए दोनों को पर्यावरण का प्रमुख नियंत्रक माना गया है। खनन व ऊर्जा आधारित उद्योगों द्वारा वायु में बारीक कण व ऊष्मा उत्सर्जित होती है जिसकी वजह से वायुमण्डल के ताप व दाब में परिवर्तन देखा जा सकता है। कई ऐसे उद्योग है जो खनिज आधारित हैं और इनमें खनिजों एवं इनसे जुड़े हुए पदार्थों का उत्पादन होता है जो कि वायुमण्डल के ताप व दाब को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करते है। वायुमण्डल की आर्दता व वर्षा पर भी ताप व दाब का प्रभाव रहता है। वायुमण्डल की ऊष्मागतिकी का अध्ययन खनन आधारित उद्योगों से जनित ऊष्मा/रेडियोधर्मिता से जोड़कर करने पर पर्यावरणीय क्षय पर नियत्रंण के प्रयास किए जा सकते है।

(3) समुद्रीय जल– समुद्रीय जल पृथ्वी की सतह पर पाया जाने वाला सर्वाधिक मात्रा वाला द्रव्य पदार्थ है। पूरी पृथ्वी का पर्यावरण समुद्रीय जल से प्रभावित होता है। पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले भिन्न प्रकार के अपशिष्ट नदियों द्वारा बहाकर समुद्र में समा जाते है इसलिए समुद्रीय जल को प्रदूषण का सिंक (sink) माना जाता है। समुद्रीय जल की मात्रा पृथ्वी की सतह का लगभग तीन चौथाई हिस्सा है इसलिए अपशिष्ट के प्रभावों का आकलन पूर्ण रूप से नहीं हो पाया है। हालांकि समुद्रीय तलों पर इसका प्रभाव सर्वाधिक देखा गया हैं। समुद्र के तटीय क्षेत्रों में समुद्रीय जल की गुणवत्ता में गिरावट देखी गयी है। समुद्र का जल व्यापक उपलब्धता के कारण अपशिष्ट समाहित तो करता है पर इससे समुद्रीय जल की गुणवत्ता के स्तर में गिरावट देखी गयी है।

(4) वन क्षेत्रों का फैलाव– खनिज व खनिज आधारित उद्योगों की प्रबलता के कारण वन क्षेत्र के फैलाव मे गिरावट देखी गयी है। वन क्षेत्रों के क्षय का कारण जनसंख्या में अतिवृद्धि भी है जिससे शहरीकरण की सीमाएं पराकाष्ठा को पार कर रही है। वन क्षेत्र पर्यावरण के महत्वपूर्ण नियंत्रक है परन्तु अनेक प्रकार के भू–विज्ञान आधारित क्रियाकलापों के कारण इनका क्षेत्रफल संकुचित होता जा रहा है। नवीन वन क्षेत्र के विकास को मानव के विकास के साथ संतुलित रूप से विकसित किया जाए तो यह प्रभावी नियंत्रक के रूप में कार्य करेगा। भूमि उपयोग आयोजना (land use planning) द्वारा पर्यावरण को पहुंचने वाली उद्योग जनित हानि को पूर्वानुमान से नियंत्रित किया जा सकता है।

(5) भूमि का व्यावहारिक उपयोग– भूमि की उपलब्धता मानवजाति पर आने वाला सबसे बड़ा संकट है। भूमि का उपयोग पर्यावरण की गुणवत्ता के नियंत्रण का मुख्य कारक हैं। किस प्रकार की भूमि का कैसे उपयोग किया जाना है यह विचारणीय विषय है। इसका आकलन ग्राम स्तर से लेकर राष्ट्रस्तर तक योजना बनाकर किया जाए तो पर्यावरण का ग्रामस्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक संरक्षण किया जा सकता हैं। भू–उपयोग को भू–वैज्ञानिक ढंग के योजनागत प्रयासों से बेहतरीन प्रारूप दिया जा सकता हैं। उदाहरण के लिए ब्लॉक या शहर स्तर पर जलनिकासी व्यवस्था (drainage pattern) के वैज्ञानिक अध्ययन से शहरों के अपशिष्ट को सही स्थान पर इकठ्ठा कर पुनःचक्रित किया जा सकता है। भूमि के सर्वोत्तम उपयोग से पर्यावरण प्रदूषण पर सर्वोत्तम नियंत्रण पाया जा सकता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- भू–जल को जल–संतृप्त व जल–असंतृप्त क्षेत्रों में बांटा जाता है और दोनों क्षेत्रों को विभाजित करने वाले तल को भू–जल स्तर कहते है।
- भू–जल को संग्रहित कर सकने वाली शैलों को जलभृत कहते है। इनमें जल का आगमन/प्रवेश्यता और परागमन/निकासी पृथ्वी पर घटित होने वाले चक्र का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

- भू–जल को स्रोत के आधार पर विभिन्न प्रकारों जैसे कि सहजात जल, नवीन जल, वितलय जल, ज्वालामुखीय जल में बांटा गया है।
- जलोढ़ निक्षेप, चूना पत्थर, ज्वालामुखी शैल व संगुटिकाश्म अच्छे जलभृत माने जाते है तथा आग्नेय शैल, पंकाश्म व गाद प्रस्तर अच्छे जलमृत की श्रेणी में नहीं आते है।
- भू–अभियांत्रिकी परियोजनाओं में भू–विज्ञान के तथ्यों के आधार पर सुरंग, बांध, जलाशय, पुल, सड़क, इमारत आदि के निर्माण का कार्य किया जाना संभव होता है।
- सभी भू–अभियांत्रिक कार्यो के लिए ग्राउटिंग, बोल्टिंग, व मृदा स्थिरीकरण का कार्य निर्माण की पूर्व तैयारी के रूप में भू–वैज्ञानिक की सलाह से किया जाता है।
- दूर संवेदन का कार्य हवाई–फोटोग्राफी और उपग्रह की मदद से किया जाता है। हवाई–चित्र व इमेजरी के अध्ययन करने के लिए स्टिरियोस्कोप व इलेक्ट्रोमेग्नेटिक स्पेकट्रम (spectrum) का क्रमशः उपयोग किया जाता है।
- दूर संवेदन की प्रक्रिया से किया जाने वाला अध्ययन कार्य शैलों के विभेदन, भू–आकृतियों के अध्ययन, प्रवेश्य व अप्रवेश्य शैलों में विभेदन, अपरदन को ज्ञात करना, भौमिकी संरचना का मानचित्रण, भू–जल स्रोतों के अध्ययन, समुद्रीय स्रोतों के आकलन आदि के लिए महत्वपूर्ण है।
- भू–वैज्ञानिकी कार्यों; जैसे कि खनन, समुद्री तल पर खनन, रेडियोधर्मी खनिजों व अन्य ऊर्जा उत्सर्जित करने वाले खनिज आधारित उद्योगों, आदि में भूविज्ञान का उपयोग पर्यावरण संरक्षण में किया जाता है।
- पर्यावरण के विभिन्न नियंत्रक व कारक जैसे कि ताप, दाब, जलस्तर, जलचक्र, वन, वनस्पति आदि के प्रभावों का अध्ययन भू–विज्ञान के तथ्यों के आधार पर किया जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. वायुमण्डलीय स्रोत से प्राप्त भू–जल का नाम है–
   (अ) मैग्मेटिक वाटर (ब) मिटियोरिक वाटर
   (स) कोनेट वाटर (द) मैटामोरफिक वाटर
2. जलसंरचना युक्त वह शैल जो अपरागम्य होने के कारण भू–जल रहित है–
   (अ) एक्वीफ्यूज़ (ब) एक्वीफर
   (स) एक्वीक्लूयड (द) एक्वीटार्ड
3. पेलिक्यूलर जल कौन से भूगर्भीय जल क्षेत्र में मिलता है–
   (अ) वाडोस क्षेत्र (ब) कैपेलरी क्षेत्र
   (स) मृदा–जल क्षेत्र (द) संतृप्त क्षेत्र
4. निम्न में से कौनसी शैल अच्छी जलभृत मानी जाती है–
   (अ) ग्रेनाइट (ब) नीज़
   (स) चूना पत्थर (द) उपर्युक्त कोई नहीं
5. निम्न में से कौनसा गुण अच्छे इमारती प्रस्तर में होना आवश्यक है–
   (अ) मज़बूती (ब) कठोरता
   (स) स्थिरता (द) उपर्युक्त सभी
6. निम्न में से कौनसा कार्य भू–अभियांत्रिकी परियोजना में स्थल सुधार में प्रयुक्त नहीं होता है–
   (अ) ग्राउटिंग (ब) ब्लासटिंग
   (स) बोल्टिंग (द) मृदा–स्थरीकरण
7. निम्न में से कौनसा गुण एरियल फोटोग्राफी में कैमरे के लेन्स में होना आवश्यक नहीं है–
   (अ) अत्यधिक विभेदन (ब) न्यनूतम विरूपण
   (स) अधिकतम कम्पन (द) उपयुक्त अंशशोधन
8. थीमेटिक मानचित्रण में सोबेल 7 फिल्टर का उपयोग किस कार्य के लिए किया जाता है–
   (अ) प्रवेश्यता और अप्रवेश्यता में अंतर हेतु
   (ब) अपरदन सूचक ज्ञात करने के लिए
   (स) भौमिकिय संरचना मानचित्रण हेतु
   (द) भू–जल स्रोतों के अध्ययन के लिए
9. क्रियाशील भ्रंशों की जानकारी से निम्न में से किस प्राकृतिक आपदा का आकलन किया जा सकता है–
   (अ) ज्वालामुखी (ब) भूकम्प
   (स) रेडियोधर्मिता (द) अतिवृष्टि
10. निम्न में से क्या पर्यावरण नियंत्रण की श्रेणी में आता है?
    (अ) वायुमण्डल संरचना (ब) वायुमण्डलीय दाब
    (स) वायुमण्डलीय ताप (द) उपर्युक्त सभी

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न (20 शब्द)

1. जलभृत को परिभाषित कीजिए।
2. अप्रवेश्य शैलों के उदाहरण दीजिए।
3. सहजात जल की परिभाषा बताइए।
4. भू–जल स्तर किसे कहते है?
5. भवन निर्माण में काम आने वाली शैलों के नाम बताइए ?
6. भू–स्खलन के प्रमुख कारण बताइए ?
7. कौनसी चट्टानें पुल निर्माण में तल के लिए उपयुक्त मानी गयी है।
8. सुरंग को परिभाषित करें।

9. इमेजरी क्या होती है?
10. अपरदन सूचक किस तकनीक से ज्ञात किया जा सकता है।
11. पानी का प्रदूषण दूर संवेदन में किस विघुतचुबंकिय स्पेकट्रम (electromagnetic spectrum) से ज्ञात किया जा सकता है?
12. TM 1+5/1-5 मानचित्र का उपयोग कहां किया जाता है?
13. ज्वालामुखी से पर्यावरण को किस प्रकार की हानि हो सकती है?
14. खनन की धूल से खननकर्मियों में कौनसी बीमारी पायी जाती है?
15. समुद्र में तेल रिसाव से क्या–क्या खतरे होते है?
16. क्रॉस–कंटूरिंग का क्या अर्थ है?

लघुत्तरात्मक प्रश्न (250 शब्द)

1. एक्वीक्लुयड और एक्वीफ्युज में अंतर स्थापित कीजिए।
2. ऐरेशन के क्षेत्र के तीनों उपभाग समझाइए।
3. जलोढ़ निक्षेपों को जलभृत के रूप में बताइए।
4. भू–जल के प्रकार संक्षेप में बताइए।
5. सड़क निर्माण में काम आने वाली शैलों का विवरण दीजिए।
6. भू–स्खलन में चूना पत्थर की भूमिका बताइए।
7. सुरंग बनाने में किस प्रकार की भूगर्भीय जांचे आवश्यक है?
8. भू–अभियांत्रिकी परियोजनाओं में स्थान–सुधार की प्रक्रिया को समझाइए।
9. प्रवेश्य व अप्रवेश्य शैलों में अंतर दूर संवेदन से समझाइए।
10. शैलों में Thematic Mapper (TM) से विभेदन कैसे करना चाहिए?
11. ऐरियल फोटोग्राफी लेते समय क्या–क्या साव्धानियां बरतनी चाहिए?
12. दूर संवेदन से समुद्रीय संसाधनों का आकलन कैसे किया जाता है?
13. मानव जनित पर्यावरण प्रदूषण के कारकों को समझाइए।
14. भूकम्प से होने वाली पर्यावरण की हानि को संक्षेप में बताइए।
15. वायुमंडल की संरचना किस प्रकार से पर्यावरण को नियंत्रण करती है?
16. भूमि के व्यावहारिक उपयोग से पर्यावरण नियत्रंण को समझाइए।

निबंधात्मक प्रश्न

1. जलचक्र को सचित्र समझाइए। जलचक्र में भू–जल की भूमिका की व्याख्या कीजिए।
2. विभिन्न अभियांत्रिकी परियोजनओं में भू–वैज्ञानिक के महत्व को विस्तार से समझाइए।
3. दूर संवेदन से विभिन्न संसाधनों के स्रोतों को ज्ञात करने की विधि बताइए।
4. पर्यावरण के संतुलन में भू–वैज्ञानिक की भूमिका को स्पष्ट करते हुए विस्तार से समझाइए।

उत्तरमालाः 1. (ब) 2. (द) 3. (अ) 4. (स) 5. (द) 6. (ब) 7. (स) 8. (अ) 9. (ब) 10. (द)

प्रायोगिक भूविज्ञान
(Practical Geology)

खनिजों के हस्त नमूनों का अध्ययन

क्वार्ट्ज (SiO_2)

1. क्रिस्टल समूह (Crystal System) : षट्कोणीय
2. रंग (Color) : रंगहीन, सफेद, बैंगनी, गुलाबी, दूधिया, पीला और काला
3. वर्ण रेखा (Streak) : रंगहीन
4. पारदर्शकता (Transperancy) : पारदर्शक से पारभासी
5. चमक (Lustre) : कांचाभ
6. कठोरता (Hardness) : 7
7. विभंग (Fracture) : उपशंखाभ
8. विदलन (Cleavage) : अनुपस्थित
9. आपेक्षिक घनत्व (Specific Gravity) : 2.65

सजावटी वस्तुएं बनाने, कांच बनाने, सीरेमिक उद्योग आदि में इसका उपयोग होता है।

अभ्रक [$KAl_2(AlSi_3O_{10})$ (OH, F)$_2$]

1. क्रिस्टल समूह (Crystal System) : एकनत समुदाय पर क्रिस्टल दिखने में षट्कोणीय लगते हैं। यह ज्यादातार शल्कित होता है। इसमें पत्रक भी मिलते हैं।
2. रंग (Color) : सफेद, भूरा, हरा, गुलाबी आदि
3. वर्ण रेखा (Streak) : रंगहीन
4. पारदर्शकता (Transperancy) : पारदर्शक, पारभासी
5. चमक (Lustre) : मुक्ता
6. कठोरता (Hardness) : 2.0 से 3.0
7. विभंग (Fracture) : असम
8. विदलन (Cleavage) : आधारीय विदलन उत्तम होता है।
9. आपेक्षिक घनत्व (Specific Gravity) : 2.7 से 3.1 तक

अभ्रक विद्युतरोधी होता है अतः विद्युत उद्योगों में काम लिया जाता है।

फेल्सपार (Na K Ca के एल्युमिनियम सिलीकेट)

1. क्रिस्टल समूह (Crystal System) : एकनताक्ष समुदाय
2. रंग (Color) : सफेद, हल्का गुलाबी, हरा
3. वर्ण रेखा (Streak) : रंगहीन
4. पारदर्शकता (Transperancy) : पारदर्शक से पारभासी
5. चमक (Lustre) : कांचाभ
6. कठोरता (Hardness) : 6
7. विभंग (Fracture) : शंखाभ
8. विदलन (Cleavage) : उत्तम
9. आपेक्षिक घनत्व (Specific Gravity) : 2.56 से 2.74 तक

टॉल्क [$Mg_3Sl_4(OH)_2$]

1. क्रिस्टल समूह (Crystal System) : एकनत समुदाय, प्रायः ये परतदार या दानेदार क्रिस्टलों के रूप में मिलता है।
2. रंग (Color) : सफेद
3. वर्ण रेखा (Streak) : सफेद
4. पारदर्शकता (Transperancy) : पारभासी
5. चमक (Lustre) : मुक्ता
6. कठोरता (Hardness) : 1
7. विभंग (Fracture) : सम
8. विदलन (Cleavage) : एक दिशा में उत्तम
9. आपेक्षिक घनत्व (Specific Gravity) : 2.7 से 2.8 तक

टॉल्क का उपयोग टेल्कम पाउडर, कागज एवं रबर उद्योग में किया जाता है।

फ्लोराइट (CaF_2)

1. क्रिस्टल समूह (Crystal System) : घनीय समुदाय, घनाकार क्रिस्टल के रूप में रहते हैं
2. रंग (Color) : रंगहीन या सफेद, हरा, पीला, नीला या बैंगनी

3. वर्ण रेखा (Streak) : रंगहीन या सफेद
4. पारदर्शकता (Transperancy) : पारदर्शक से पारभासी
5. चमक (Lustre): कांचाभ
6. कठोरता (Hardness) : 4
7. विभंग (Fracture) : शंखाभ
8. विदलन (Cleavage) : उत्तम
9. आपेक्षिक घनत्व (Specific Gravity) : 3 से 3.25 तक

इसका उपयोग गालक (Flux) के रूप में इस्पात एवं एल्युमिनियम धातु के उत्पादन में होता है।

कैल्साइट ($CaCO_3$)

1. क्रिस्टल समूह (Crystal System) : षट्कोणीय समुदाय। ये प्रायः क्रिस्टलों के रूप में पाया जाता है।
2. रंग (Color) : रंगहीन या सफेद
3. वर्ण रेखा (Streak) : सफेद
4. पारदर्शकता (Transperancy) : पारदर्शक से पारभासी
5. चमक (Lustre) : कांचाभ
6. कठोरता (Hardness) : 3
7. विभंग (Fracture) : शंखाभ
8. विदलन (Cleavage) : तीन दिशाओं में उत्तम
9. आपेक्षिक घनत्व (Specific Gravity) : 2.7

यह चूना, सीमेंट, साबुन, पेंट आदि बनाने के काम आता है।

हेमाटाइट (Fe_2O_3)

1. क्रिस्टल समूह (Crystal System) : षट्कोणीय। स्थूलरूप एवं गुर्दाकार रूप में पाया जाता है।
2. रंग (Color) : इस्पातल धूसर या काला
3. वर्ण रेखा (Streak) : चेरी रक्त
4. पारदर्शकता (Transperancy) : अपारदर्शक
5. चमक (Lustre) : उपधात्विक या मटियाली, क्रिस्टलीय किस्म में धात्विक चमक होती है।
6. कठोरता (Hardness) : 5.5 से 6.5 तक
7. विभंग (Fracture) : उपशंखाभ
8. आपेक्षिक घनत्व (Specific Gravity) : 4.9 से 5.3 तक

यह लौह का अयस्क है।

गैलेना (PbS)

1. क्रिस्टल समूह (Crystal System): घनीय समुदाय, प्रायः ये घनाकार क्रिस्टल के रूप में रहते हैं
2. रंग (Color) : भूरा या काला
3. वर्ण रेखा (Streak) : काली
4. पारदर्शकता (Transperancy) : अपारदर्शी
5. चमक (Lustre): धात्विक
6. कठोरता (Hardness) : 2.5
7. विभंग (Fracture): सम या उपशंखाभ
8. विदलन (Cleavage) : उत्तम
9. आपेक्षिक घनत्व (Specific Gravity) : 7.4 से 7.6 तक

यह शीशे का अयस्क होता है।

मुल्तानी मिट्टी (Fuller's Earth)

यह स्पर्श करने में चिकना होता है और सूंघने पर मिट्टी की गंध देता है। यह अक्रिस्टलीय एवं प्रायः मटियाले रूप में मिलती है। इसका रासायनिक संगठन, कैल्शियम युक्त जलीय एल्युमिनियम सिलीकेट होता है। यह बाल धोने के काम भी आती है।

1. रंग (Color) : पीला, सफेद या धूसर
2. वर्ण रेखा (Streak) : सफेद
3. पारदर्शकता (Transperancy) : अपारदर्शी
4. चमक (Lustre): मंद मटियाली
5. कठोरता (Hardness) : 2.5
6. विभंग (Fracture) : सम
7. विदलन (Cleavage) : एक दिशा में उत्तम
8. आपेक्षिक घनत्व (Specific Gravity): 2.0 से 2.7 तक

रॉक साल्ट (NaCl)

1. क्रिस्टल समूह (Crystal System): घनीय समुदाय, प्रायः ये घनाकार क्रिस्टल के रूप में रहते हैं
2. रंग (Color) : रंगहीन या सफेद
3. वर्ण रेखा (Streak) : रंगहीन
4. पारदर्शकता (Transperancy) : पारदर्शक से पारभासी
5. चमक (Lustre): कांचाभ
6. कठोरता (Hardness) : 2.5
7. विभंग (Fracture): सम या उपशंखाभ
8. विदलन (Cleavage) : उत्तम
9. आपेक्षिक घनत्व (Specific Gravity) : 2.1 से 2.6 तक

इसे हैलाइट भी कहते है। इसका स्वाद नमकीन होता है। यह ठोस नमक का निक्षेप है। इसका खाने में उपयोग होता है, इसके अतिरिक्त रासायनिक उद्योगों में, खाद बनाने में एवं पशुओं के खाने में उपयोग होता है।

राजस्थान के मानचित्र में आर्थिक खनिजों का वितरण

(स्रोत– भारत की खनिज सम्पदा एवं उद्योग– रामरक्षपाल विजयवर्गीय)

(स्रोत– राजस्थान राज्य खनन एवं भूगर्भ विभाग राजस्थान सरकार की वेबसाइट)

(1) **शीशा–जस्ता** (Lead-Zinc) – जावर माईन्स (उदयपुर), रामपुरा–अगूचा (भीलवाडा), दरीबा, सिन्देसर–बेटूमी, बामनिया (राजसमंद), अजमेर, सिरोही

(2) **तांबा** (Copper) – खेतड़ी (झूंझूनु), सिरोही, अजमेर, भरतपुर, भीलवाड़ा, सीकर, चित्तौड़गढ़, राजसमंद, उदयपुर

(3) **अभ्रक** (Mica) – भीलवाड़ा, राजसमंद, अजमेर, जयपुर

(4) **कोयला लिग्नाइट** (Lignite)– बीकानेर, बाड़मेर, हनुमानगढ़, नागौर, जैसलमेर, चूरू, श्रीगंगानगर

(5) **पेट्रोलियम** (Petroleum) – बाड़मेर, जालोर, जैसलमेर

(6) **जिप्सम** (Gypsum) – हनुमानगढ़, बीकानेर, जैसलमेर, बाड़मेर, नागौर, श्रीगंगानगर, जालोर

(7) **धिया पत्थर** (Talc) – डूंगरपुर, उदयपुर, भीलवाड़ा, बांसवाड़ा, दौसा, जयपुर, अजमेर, अलवर, राजसमंद, झूंझूनु, करौली, प्रतापगढ़, सीकर, सवाईमाधोपुर

(8) **रॉक–फास्फेट** (Rock Phosphate) – उदयपुर, जैसलमेर (बिरमानिया), बांसवाड़ा, झामरकोटड़ा, जैसलमेर, जयपुर (अचरोल)

जीवाश्मों के नामांकित चित्र

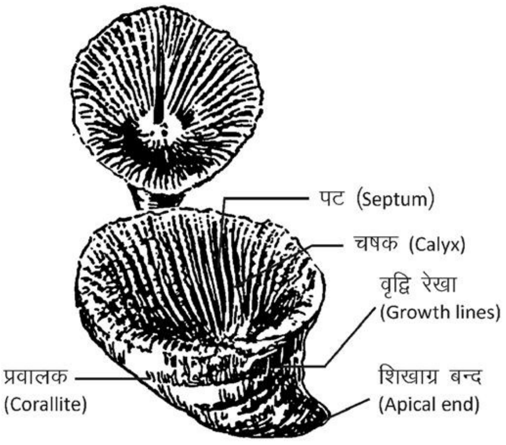

(i) टेट्राकोरल / रूगोसा प्रवाल (जैफरेनटीस)

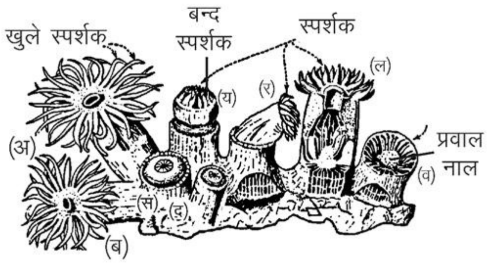

(ii) हेक्साकोरल (स्कलेरेकटैनीयन) प्रवाल का समूह

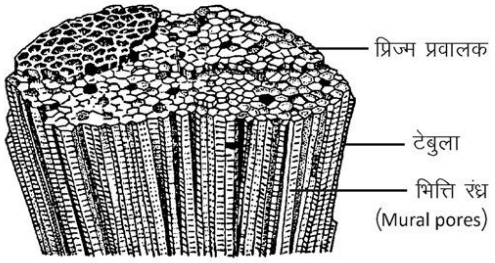

(iii) टेबुलेट प्रवाल (फेवोसाईट)

विभिन्न प्रकार के प्रवाल

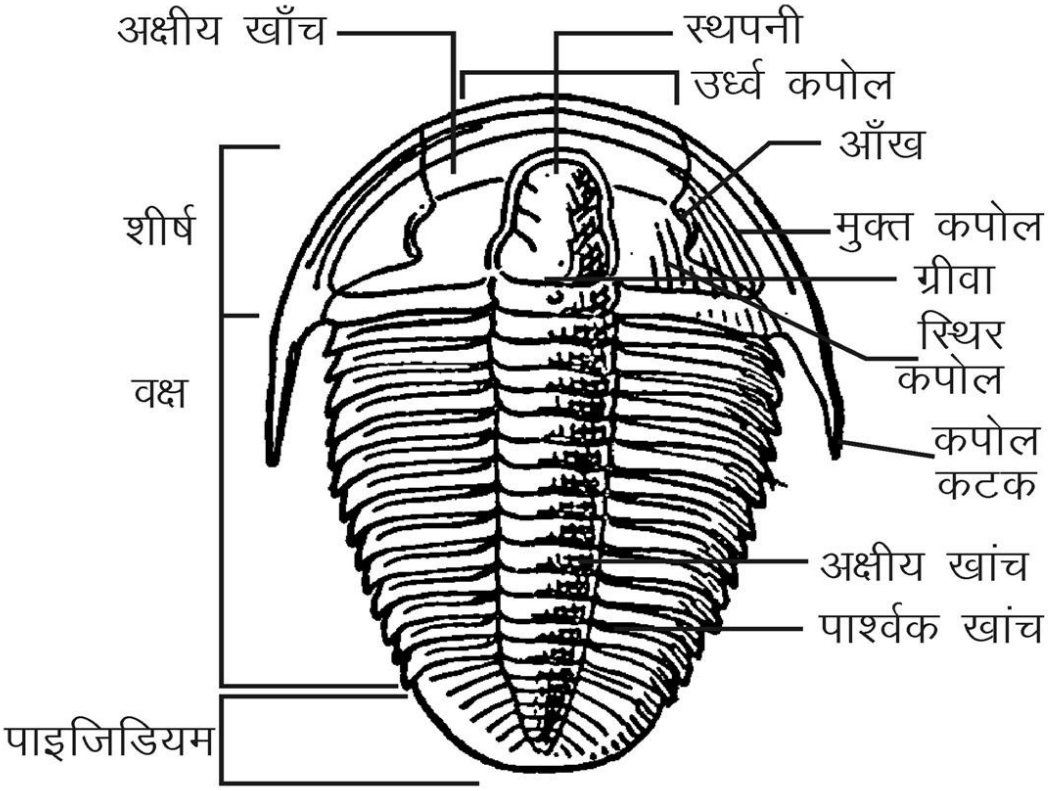

ट्राईलोबाईट का नामांकित चित्र

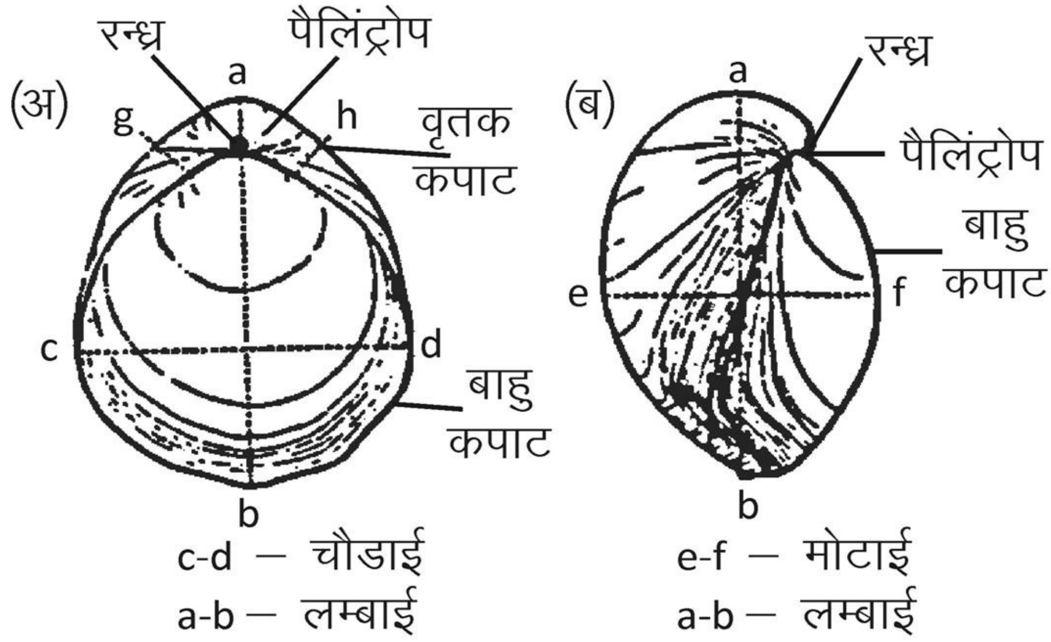

ब्रेकियोपोड कवच की बाह्य आकारिकी

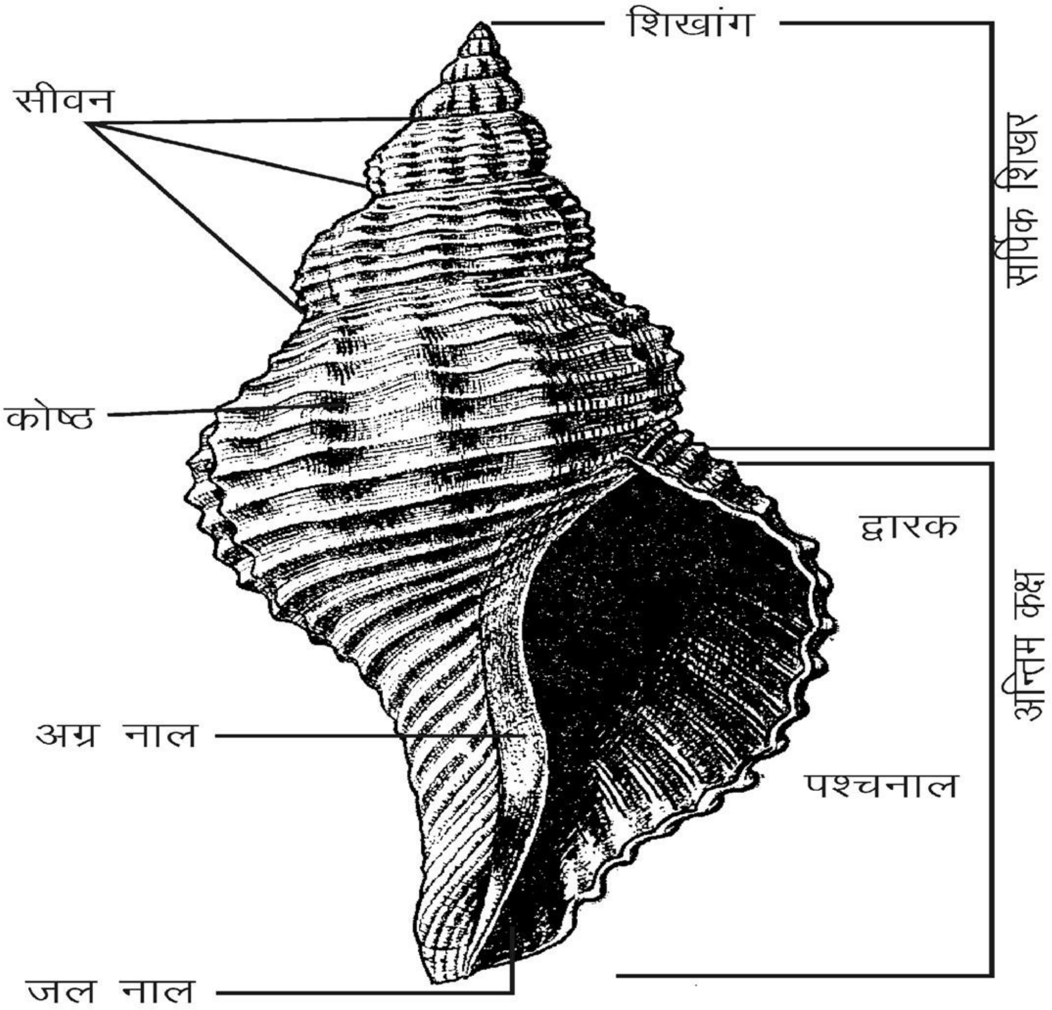

गेस्ट्रोपोड की बाह्य आकारिकी

चार्ट एवं मॉडल की सहायता से भू आकृतिक अवयवों का अध्ययन

संसार के मानचित्र में महाद्वीपों एवं महासागरों का वितरण, भारत में नदियों का वितरण एवं भारत का भू आकृतिक विभाजन।

1. भारत के भू आकृतिक अवयव को चार्ट में सुन्दर चित्रण द्वारा बताइये।
2. मॉडलों के अध्ययन से पृथ्वी की भीतरी संरचना, सौरमंडल, महाद्वीपों व महासागरों, पर्वतों तथा विभिन्न प्राकृतिक संरचनाओं का अध्ययन कीजिये।
3. संसार के मानचित्र में महाद्वीप व महासागरों का वितरण दर्शित कीजिये।
4. भारत के मानचित्र में विभिन्न प्रमुख पर्वतमालाओं और नदियों की स्थिति को दर्शित कीजिए।
5. भारत के मानचित्र में भारत के भू आकृतिक विभाजन को दर्शित कीजिए।

शैलों के हस्त नमूनों का अध्ययन

आग्नेय शैल (Igneous Rocks)

ग्रेनाइट (Granite)

यह हल्के रंगों में पायी जाने वाली वितलीय आग्नेय शैल है। इसमें पोटाशिक फेल्सपार एवं क्वॉर्ट्ज मुख्य घटक खनिज होते हैं। गौण घटक खनिजों में अभ्रक, टूर्मेलीन एवं हॉर्नब्लेन्ड आदि खनिज मिलते हैं। क्वॉर्ट्ज विदलन रहित होता है एवं कांचाभ चमक होती है। फेल्सपार में विदलन उपस्थित रहता है।

इसमें समविमीय खनिज कण मध्यम से दीर्घ आकार में मिलते हैं। यह पूर्णक्रिस्टलीय एवं दृश्यक्रिस्टलीय शैल होती है। ग्रेनाइट के कुछ प्रकारों में दीर्घक्रिस्टल–अन्तर्वेशी (Porphyritic) गठन मिलता है।

रायोलाइट (Rhyolite)

यह सामान्यतः भूरे, सफेद या गुलाबी रंग की ज्वालामुखीय आग्नेय शैल है। यह ग्रेनाइट का ज्वालामुखी अनुरूप है। इसमें वही खनिज होते हैं, जो ग्रेनाइट में हैं। सामान्यतः यह शैल लावा प्रवाह के रूप में मिलती है। क्रिस्टलीय घटकों का विकास बहुधा अतिक्षीण होता है या वे विद्यमान नहीं होते है।

इनमें खनिजों का सूक्ष्म कणी गठन होता है, प्रायः दीर्घक्रिस्टल–अन्तर्वेशी (Porphyritic) गठन भी मिलता है। लावा की प्रवाह संरचना वर्णरेखीय रूप में मिलती है।

बेसाल्ट (Basalt)

बेसाल्ट ज्वालामुखीय आग्नेय शैल है। यह वितलीय शैल गैब्रो के तुल्य होती है। यह गहरे रंग के खनिजों से बनी होती है। यह लावा प्रवाह के रूप में मिलती है। बेसाल्ट शब्द का अर्थ काला लोहयुक्त पाषाण है।

बेसाल्ट में सामान्यतः ऑगाइट, केल्क प्लेजियोक्लेज एवं लोह ऑक्साइड खनिज विधमान होते हैं तथा आलिविन भी पाया जा सकता है। अन्य खनिज हॉर्नब्लेंड, हाइपरस्थीन, बायोटाइट आदि पाये जाते हैं।

इनका गठन एवं संरचना सूक्ष्मकणी से कांचीय प्रवृत्ति का गठन होता है। शीघ्रता से ठंडा होने की वजह से खनिज कणों का आकार बड़ा नहीं हो पाता है। दीर्घक्रिस्टल–अन्तर्वेशी गठन भी सामान्यतः इसमें मिलता है। बहुत सारी गुहिकाएं भी बेसाल्ट के साथ मिलती हैं। इन गुहिकाओं के भरने से वातामकी संरचनाएं बनती हैं।

पेग्माटाइट (Pegmatite)

पेग्माटाइट में विभिन्न आकार के क्रिस्टल पाये जाते हैं जिनमें बहुधा अतिस्थूल क्रिस्टल और अन्तरवृद्धि संरचनाएं होती हैं। सामान्यतः ग्रेनाइट में मिलने वाले खनिज पेग्माटाईट में भी मिलते हैं। पर इसके कण बहुत बड़े आकार में होते हैं। क्वाटर्ज, फेल्सपार एवं अभ्रक मुख्य घटक खनिज होते हैं। टूमेलिन, पुखराज, बेरिल, एपाटाइट, फ्लोरस्पार, आदि खनिज मिलते हैं।

यह अत्यधिक रूप से दीर्घ कणी एवं अनियमित आकार के खनिज कणों से बनी होती है। खनिज कण सामान्यतः 3 सेमी या उससे भी बड़े होते हैं।

अवसादी शैल (Sedimentary Rocks)

बालुकाश्म (Sandstone)

यह अवसादी शैल है जिसमें बालू श्रेणी के खण्डज होते हैं। इनका रंग भूरा, सफेद, हल्का पीला, लाल आदि होता हैं।

क्वाट्र्ज इसका मुख्य खनिज घटक होता है। क्वाट्र्ज कण सिलिकामय, मृदामय, लोहमय या कैल्शियम युक्त सीमेंट से आबद्ध रहते हैं। कुछ बालुकाश्मों में ऊपरीशाही पदार्थों के दबाव के कारण वेल्डिंग होने से भी आबद्ध रहते हैं।

यह मध्यम से सूक्ष्म कणों से बनी शैल होती है। खनिज कणों का आकार 2 से 1/16 मिमी के बीच होता है। कणों का आकार कोणीय या गोलाकार होता है। इसमें स्तरण, वेगप्रवाही संस्तरण एवं तरंग चिह्न आदि संरचनाएं विद्यमान होती हैं।

चूनाश्म (Limestone)

कैल्शियम कार्बोनेट के अवक्षेपण से होने वाले निक्षेपण द्वारा चूनाश्म बनता है। कैल्शियम कार्बोनेट का अवक्षेपण भौतिक – रासायनिक परिस्थितियों में परिवर्तन से या जैव कारकों के कारण भी हो सकता है तथा इसमें जीवाश्म भी मिल सकते हैं।

यह मुख्यतः कैल्साइट से बनी होती है। कुछ मात्रा में डोलोमाइट भी पाया जाता है। चर्ट, गाद एवं मृण्मय भी अशुद्धि के तौर पर पाई जाती हैं। इसके अलावा क्वॉर्ट्ज फेल्सपार एवं लोह ऑक्साइड का मिलना भी सामान्य गुण है।

कायान्तरित शैल (Metamorphic Rocks)

संगमरमर (Marble)

संगमरमर क्रिस्टलीय कैल्केरियश कायान्तरित शैल है। जिसमें कणिकामय गठन होता है। संगमरमर सामान्यतः सफेद रंग का

होता है पर विभिन्न अशुद्धियों की वजह से गुलाबी, पीला, भूरा, हरा, एवं काला रंग भी हो सकता हैं । इसका निर्माण चूनाश्म के कायान्तरण से होता है।

संगमरमर मुख्य रूप से कैलसाइट के खनिज कणों से बना होता है कदाचित थोड़ा बहुत डोलोमाइट भी हो सकता है। ऑल्विन, गार्नेट एवं एफीबॉल आदि खनिज भी गौण मात्रा में उपस्थित हो सकते हैं।

संगमरमर में कणिकामय पुनः क्रिस्टलित कैल्साइट से बनी संरचना पाई जाती है। सामान्यतः कणों का आकार शक्कर के दानों से छोटे से लेकर बड़े आकार में होते हैं।

क्वार्ट्जाइट (Quartzite)

यह शैल बालूकाश्म के कायान्तरण से निर्मित होती है। इनमें कणिकामय गठन पाया जाता है तथा रंग प्राय हल्का होता है।

क्वार्ट्जाइट आवश्यक रूप से क्वार्ट्ज का बना होता है इसमें थोड़ी बहुत मात्रा अभ्रक, टूर्मेलिन, गार्नेट, ग्रेफाइट एवं लोह खनिज एवं अन्य खनिज भी हो सकते हैं।

क्वार्ट्जाइट एक ठोस शैल है जिसमें क्वार्ट्ज कणों का इंटरलॉकिंग मिलता है। यह प्रायः समान आकार के कणों से बनी शैल होती है।